चिदाकाश गीता

(आत्म प्रभाव)

‘आनंद मठ’, मन्ना गुडे, मेंगलोर

दक्षिण कानडा (केरल)

हिन्दी आवृति

‘आनंद मठ’, मेंगलोर

(महाशिवरात्रि)

ते माघ कृष्ण १४ (चतुर्दशी) गुरुवार, शके १८६१

दिनांक ७ माहे मार्च सन १९४०

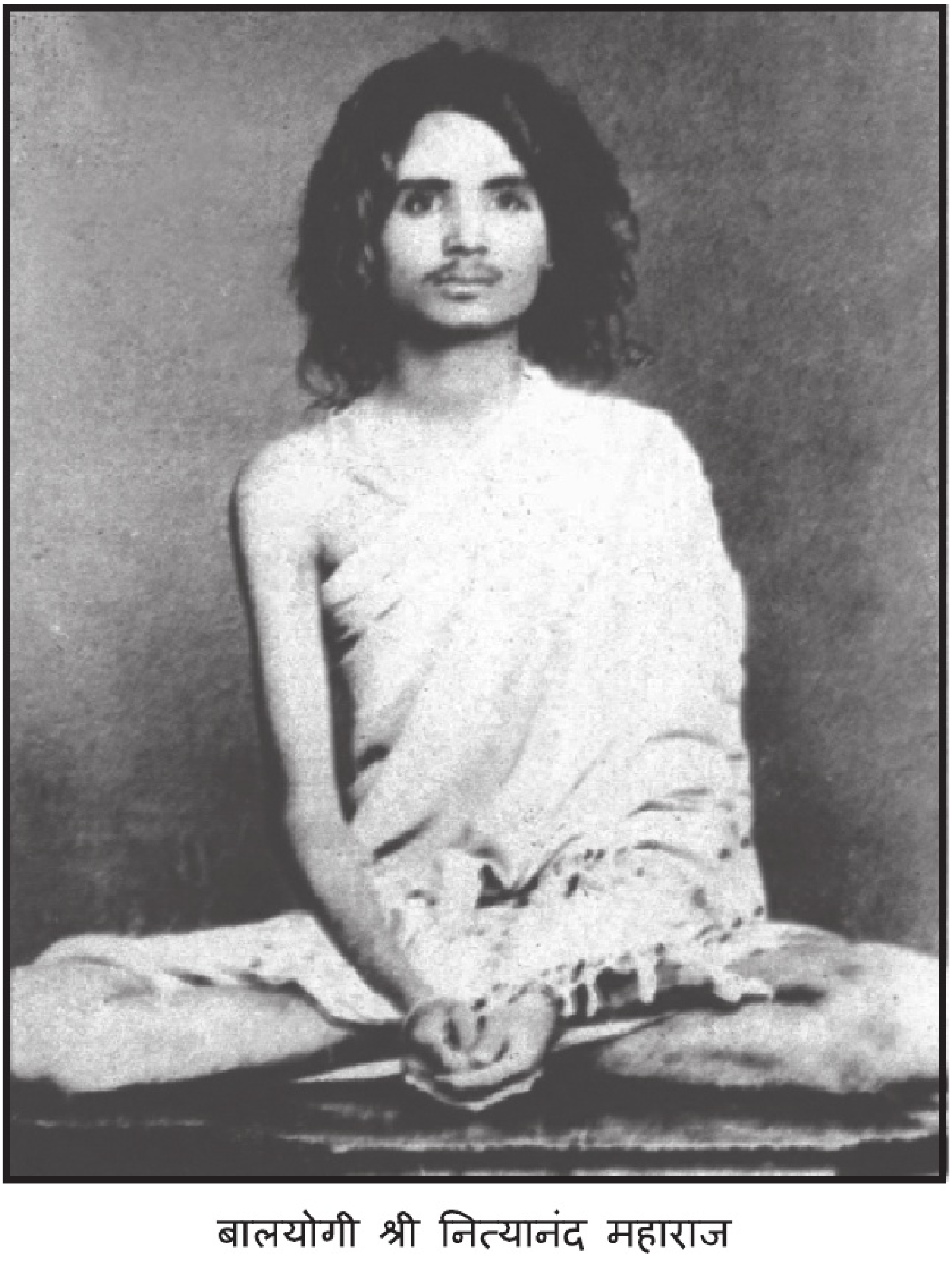

बालयोगी श्री नित्यानंद महाराज

जय नित्यानंद

पौराणिक काल में शक्ति स्वयं विकसित होती थी और अपनी निष्ठा और सदगुरु के प्रति प्रेम एवम अनुराग कायम रखती थी। उनके मुताबिक शुरु के दिनोमें नित्यानंद की पहचान स्वामी या तो अवधूत के रूप में होती थी।

तुलसी अम्मा या आनंदीने अपनी भक्ति की उच्चतम अभिव्यक्ति की जिससे पूरी दुनिया को पता चले की वे अंतिम अवतार थे। शास्त्रो में भी इस बात का स्वीकार किया गया है की वे अंतिम अवतार है।

लोग पूर्णरुप से यह समजने का प्रयास करें की वे क्या है और पौराणिक काल में वे क्या थे। ऐसा कहा जाता है की वे अंतिम और पूर्ण अवतार थे। वे एक महान आत्मा थे और उन्होंने जो अभिव्यक्त किया वही ह्दय में स्थापित किया, इसी तरह ब्रह्मांड और उन्हें सही तरीके से समजना ही उनकी असली पहचान होगी।

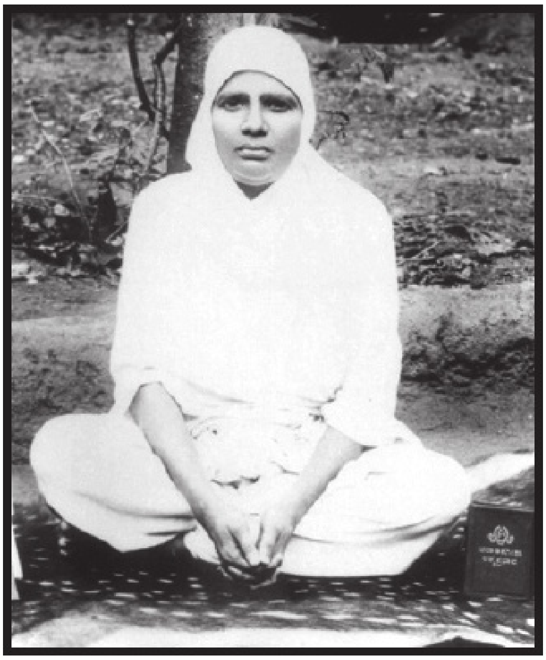

तुलसी अम्मा

तुलसी अम्मा नित्यानंद बाबा की शिष्या थी। गुरुदेव नित्यानंदने 1920 से 1927 तक दक्षिणी कर्णाटक में गहन ध्यान में जो अमुल्य ज्ञान दिया उसीको तुलसी अम्माने कन्नड भाषा में लिखकर यह ज्ञान सदा के लिए बाबा के अनुयायीओ को हरदम मिलता रहे ऐसे लक्ष्य के साथ बाबा के आशिर्वादसह प्रकाशित किया। इसके लिए बाबा के सभी भक्तगण उनके ऋणी है।

Publisher : Swami Nityananda Ashram Public Trust

Kanhangad-671315, Dist. Kasaragod, Kerala State (India)

Phone : +91 0467 2208986

Distributor : Shree Bhimeshwar Sadguru Nityanand Sanstha

Ganeshpuri, Taluka : Bhiwandi, Dist. Thane-401206 (Maharashtra)

Phone : (O) 09833995591, 09823522126

E-mail : bhagawan@nityananda.org

Printed by : Print Vision Pvt. Ltd.

आंबावाडी बजार, अमदावाद-३८० ००६ (गुजरात)

फोन : ०७९-२६४०३३२० २६४०५२०० **ई-मेईल :** print_2453@yahoo.co.in

प्रस्तावना

‘‘भगवान नित्यानंद उच्च प्रकार के अवधूत थे। ज्यादातर समय वे मौन रहते थे। वे कभी भाषण करते नहि अथवा उन्हीने कभी पुस्तके लिखे नहि। वे कभी थोड़ा सा बोलते और वह भी एकदम कम!

वीसमी शताब्दी की वीसवे दशक में श्री गुरुदेव का भारत के मेंगलोर में निवास था। इस समय वे उच्च ध्यानावस्था में रहते थे और उस पवित्र अवस्था में वे उनके शिष्यों को आध्यात्मिक शिक्षण देते थे। इस समय साध्वी तुलसी अम्मा भक्ति भाव से उनके उच्चारण कन्नड भाषा में उतारते थे। भगवान नित्यानंदजी के आशीर्वाद और उनकी अनुमति से उन्होंने १९२७ साल में पुस्तक रूप से यह शिखामण प्रसिद्ध किये और उसका नाम ‘‘चिदाकाश गीता’’ ऐसा रखा। उसके बाद अनेक लोगों ने श्री गुरुदेव की शिक्षा वाली ‘‘चिदाकाश गीता’’ के उपर खुद के अभिप्रायों अलग अलग भाषाओं में प्रसिद्ध किये। वह मूल में ‘‘चिदाकाश गीता’’ श्री सद्गुरु भगवान नित्यानंदजी की महासमाधि के स्वर्णजयंती के अवसर पर हमारे आश्रम की ओर से अलग अलग भाषाओं में से पुनः प्रकाशित कर रहे है। जिसका दुनियाभर में फेले हुए उनके शिष्यों के कल्याणार्थ उपयोग होगा।’’

स्वामी नित्यानंद आश्रम पब्लिक ट्रस्ट कान्हनगड, केराला राज्य (भारत)

– जय नित्यानंद

स्वामी श्री नित्यानंद

मंगलाचरण
‘पुस्तक का उद्देश्य’

मनुष्यजीव शांतिपूर्ण तरीके से सच-जूठ, स्थुल-सूक्ष्म, गुण-अवगुण की समझ पाएं वही ईस पुस्तक का उद्देश्य है। यह उद्देश्य उनके तंत्रिका तंत्र में हरदम फैला रहे। मानवजन्म मिलने के बाद हमारा फर्ज क्या है? पूर्ण को समझने के बाद ही शांति प्राप्त होती है। ईश्वर की कृपा से यह मानवजन्म में “मैं” की समझ प्राप्त करें, निरंतर शांति प्राप्त करें, चंचल मन शांत हो वही चित्त की शांति है। चिंता और परेशानीओ से दूर रहें। निराकार ब्रह्म में हम विलिन हो जाएं, मन की शुद्धता प्राप्त हो, जीससे यह जन्म और नये जन्म में सुख की प्राप्ति हो सके।

ओम सर्व है। ओम निरंतर है, ओम माया है, ओम सर्वोपरी है ओम आत्मा में निरंतर निवास करता है। ओम के पदकमलो में सर्वार्पण हो। ओम मन की एकाग्रता से सिद्ध होत है। यही बात का स्वीकार माया में लिप्त हर एक व्यक्ति को करना चाहिए। जीन लोगो नें ईस सत्य का साक्षात्कार किया है वे अपनी सिद्धि भूल जायें, क्युंकी उनके स्तर पर ज्ञानी-अज्ञानी के बीच का फर्क समाप्त हो जाता है। ईस पुस्तक का तत्व ईसके शब्दो में है।

ईस पस्तक का उदेश्य मानवी की प्रतिपादित मान्यताएं बदलने का नहीं हे साथ ही मानवी के आंतरिक जीवन को बदलने का भी नहीं है।

सिर्फ ईस पुस्तक का उदेश्य समझने से ही व्यक्ति की महानता में ईझाफा नहीं होगा साथ ही न समझने से उसकी महानता में कमी भी नहीं आयेगी।

ज्ञात या अज्ञात दोनो स्थितिओं में कोई फर्क नहीं है। आत्मचिंतन से ईन शब्दो पर विचार करना चाहिए। ये शब्द निरंतर हमारे मनोआकाश में घुमते रहें।

ये शब्द किसी खास व्यक्ति को संबोधित करके नहीं लिखे गये है।

ओम परब्रह्म है, ओम निरंतर सत्य है, ओम पूर्ण ज्ञान है। ओम विश्वनियंता है। ओम ब्रह्मांड संरक्षक है, ओम सृष्टिविनाशक है, ओम में सर्जनकर्ता के सृजन विलिन हो जाते है।

चिदाकाश गीता

‘आत्मा की परम शक्ति’

प्रथम भाग

1. ज्ञानी चित्त शून्य होते है ईसलिए ज्ञानी भेदरहित होते है। वे तंद्रारहित, स्वप्न या निद्रारहित होते है। वे आत्मानंद में होते है। सूर्य या चंद्रमा का फर्क उनको होता नहीं है। उनके लिए हरदम प्रकाश होता है। मानवमन एक मलिनतायुक्त काच की चिमनी जैसा है, जीस तरह चिमनी पर दाग होता है तब तक वह पारदर्शी नही हो सकती उसी तरह मानवमन जब तक मन का मैल दूर न हो तब तक शुद्ध नही हो सकता। इसलिए चित्त शक्ति के विकास के लिए यह जरूरी है की मन का मैल दूर हो।

स्पष्टीकरणः ज्ञानी का मन पूर्णरूप से शांत होता है। ज्ञानी के भेद पूर्णतः विलिन हो जाते है। ज्ञानी जागरूक, स्वप्न और सुषुप्त अवस्था से पर रहता है। ज्ञानी लोग आत्मा से जागरूक होते है लेकिन आदिभौतिक विश्व की ओर उदासीन रहते है। वे समाधि के परम सुख में मग्न होते है। सूर्य और चंद्रमा उनके लिए एकसमान है। द्वैत का भाव उनमें पूर्णतः नष्ट हो जाता है। उनको प्रकाश की प्राप्ति हौती है। वें अपने तंत्रिका तंत्र के गगन में आत्मा की भव्यता का अनंत अनुभव करते है, जैसे की शीशे की चिमनी पर काला दाग लगा हुआ होता है तब वह प्रकाश नहि दे सकती

लेकिन काला दाग निकालकर साफ कर देने के बाद पूर्णरूप से वह प्रकाश देती है। उसी तरह आत्मा की अशुद्धियां ध्यान के माध्यम से दूर हो सकती है। साफ़ मन ईसके बाद ही दैवी ज्योति फैलाता है।

2. मानव शरीर में तीन नाड़ीयां होती है। 1. सूर्य या सुषुम्ना, 2. चंद्र या ईडा, 3. तारा या पिंगला. प्रथम नाड़ी का रंग लाल है, दूसरी का भूरा है, तीसरी का हरा रंग है।

स्पष्टीकरणः मानव शरीर की तीन अति महत्वपूर्ण नाड़ीयां अर्थात तंत्रिकाएं है। जीनके नाम सूर्य या सुषुम्ना, चंद्र या ईडा और पिंगला अर्थात तारा है। ईडा रीढ़ की हड्डी यानी की स्पाईनल कोर्ड में बायीं ओर है। पिंगला दायीं ओर रीढ़ की हड्डी में होती है। सुषुम्ना रीढ़ की हड्डी में मध्यभाग की जगह में से नीकलती है। सुषुम्ना का रंग लाल है। ईडा भूरे रंग की है और पिंगला का रंग हरा है।

3. ईन तीनो नाड़ियो का मिलन हृद्याकाश में होता है। जैसे जैसे योगाभ्यास बढता जाता है वैसे वैसे मस्तिष्क में दस स्वरवालें वाद्य जैसे की हार्मोनियम, ड्रम, फिडल (मुरली) के जैसे बिंदु नाद पैदा होते है। नाद (ध्वनि) एक और अभाज्य है।

स्पष्टीकरणः तीनो नाड़ियो का मिलन स्थान हृदय है, जीसे हृदयाकाश कहा जाता है। ईस हृदयाकाश में तन का छठा कमल अर्थात “अज्ञ” होता है। ईडा, पिंगला, सुषुम्ना का “अज्ञ” में मिलन होता है। योगाभ्यास के दौरान जो नाद सुनाई देता है वह बिंदु नाद है। ये नाद दस प्रकार के होते है और यह नाद हार्मोनियम, ड्रम और मुरली (फिडल) के

ध्वनि जैसा होता है। ईसतरह, दस प्रकार के नाद होन पर भी वह एक और अभाज्य है।

4. जीस तरह कपूर अग्नि की ज्वाला में विलीन हो जाता है उसी तरह मानवमन (चित्त) आत्मा की अग्नि में विलीन हो जाना चाहिए।

स्पष्टीकरणः जीस तरह कपूर की गोली को माचिस की तीली से जलाने पर वायुमंडल में धुएं के रूप में अदृश्य हो जाती है उसी तरह योगाभ्या हरदम चलता रहे तो शुरू में आत्मा से अलग लगता मन आत्मा में विलीन होने लगता है। आखिर में वह आत्म तेज में एकरूप हो जाता है।

5. नारियल जब अपनी खोल से अलग होता है तब उसे हिलाने पर निस्तेज आवाझ आती है उसी तरह मानव शरीर और आत्मा को अलग समझते हुए आत्मा एक प्रकाशपूंज है, जीसके द्वारा सभी दोषो की रोकथाम हो जाती है।

स्पष्टीकरणः नारियल जब ताजा होता है तब गर्भ के साथ मजबूती से जुडा होता है लेकिन जैसे जैसे नारियल सुखने लगता है वैसे वैसे अपनी खोल से अलग होने लगता है। अलग हो जाने के बाद वह सुस्त आवाझ पैदा करता है और उसी तरह आत्मा को शरीर से अलग माने तो आत्मा के प्रकाश का अनुभव होता है। चित्त बाद में अग्नि से शुद्ध हुए सोने जैसा हो जाता है।

6. हम कूएं में से बाल्टी से जीस तरह पानी खींचते है उसी तरह सांस लेनी चाहिए और कूएं में बाल्टी डालते है उसी तरह से सांस निकलनी चाहिए। जब हम सांस निकालें तब कार्बन यानी की दूषित वायु निकलता

है। जब सांस अंदर भरते है तब शुद्ध प्राण (ओझोन) अंदर जाता है, जीसे ओमकार कह सकते है। ओमकार श्वसन में हो उसे मानस (मन-चित्त) कहते है।

स्पष्टीकरणः प्राणायाम (श्वसन) विज्ञान पद्धति से हौना चाहिए। जब हम सांस अंदर की ओर खींचे तब कूएं में से पानी खींच रहे हो ऐसा महेसूस होना चाहिए। जब सांस निकाले तब कूए में बाल्टी से पानी डाल रहे है ऐसा अनुभव होना चाहिए। सांस जब निकालें तब तन की बहुत सी अशुद्धियां बाहर निकलती है, जब सांस अंदर लेते है तब शुद्ध प्राण शरीर में प्रवेश करता है। शुद्ध प्राण शरीर में नासिका के माध्यम से प्रवेश होता है तब उसके साथ अगर ओमकार का नाद मिल जाये तो दिव्य शक्ति पैदा होती है। ओमकार नाद के साथ प्राणायम ही “सत्य मनस” है।

7. मनस जीव है लेकिन उनके स्थान अलग है। जीवात्मा ही परमात्मा है।

स्पष्टीकरणः मन जब शुद्ध हो तभी वह जीव के साथ एकरूप होता है। मनुष्य के शरीर में उनके स्थान अलग होते है। मन का स्थान जीवात्मा के नीचे होता है। जीव पूरे शरीर में फैला है। परमात्मा पूरे ब्रहमांड में फैला हुआ है।

8. पुरुष और स्त्री को शिक्षा देनी चाहिए। शिक्षा का अर्थ क्या है? जीव को उस रहस्य का पता होना चाहिए की वह परमात्मा है।

स्पष्टीकरणः पाठशाला और कालेज में दी जाती शिक्षा सच्ची शिक्षा नहीं है। जीस ज्ञान से जीवात्मा और परमात्मा का ऐक्य समझ में आये वही सच्ची शिक्षा है। हमें लौकिक जीवन का ज्ञान सामान्य तौर पर जो

मिलता है उसे 'अपरा विद्‌या' (निम्न शिक्षा) कहते है। आद्‌यात्मिक गुरू से प्राप्त होती शिक्षा को पराविद्‌या कहा जाता है। पुरुष और स्त्रीओं को पराविद्‌या का ज्ञान देना चाहिए मतलब जीव और शिव के ऐक्य की सही शिक्षा देनी चाहिए।

9. परमात्मा जीवात्मा है, सच्ची मुक्ति स्थूल में सूक्ष्म को जानने में है।

स्पष्टीकरणः स्थूल शरीर के साथ रहेने से जीवात्मा भी स्थूल लगता है। निरतंर योगाभ्यास से जीवन स्थूल से अलग होता है और उसे सूक्ष्म की अनुभूति होती है और वह परमात्मा के साथ समत्व का अनुभव है। सही मुक्ति स्थुल में सूक्ष्म की अनुभूति प्राप्त करने में है। मुक्ति प्राप्त करने में प्रथम चरण व्याप्त का पूर्णरूप से नाश का है। अंधकार में प्रकाश देखना, असत्य में सत्य को देखना और अज्ञानता में ज्ञान का दर्शन वहीं मुक्त है।

10. हमे स्थूल निद्रा का त्याग करना चाहिए और सूक्ष्म निद्रा करनी चाहिए। प्राणायम के अभ्यास से प्राप्त होती सूक्ष्म निद्रा का आनंद करना चाहिए।

स्पष्टीकरणः निद्रा दो तरह की होती है। आम आदमी जी रहा है वह प्रथम तरह की और स्थूल निद्रा है। दुसरी तरह की निद्रा सूक्ष्म निद्रा है जो की योगीओ की निद्रा है। जीसे योगनिद्रा कहते है। उसे अज्ञात निद्रा और ज्ञान निद्रा भी कहते है। मनुष्य को आध्यात्मिक निद्रा जीसे समाधि भी

कहा जाता है, उसका भी आनंद प्राप्त करना चाहिए। जीवन का अंतिम लक्ष्य वही है।

11. जब हम उर्ध्वगामी सांस लेते है तब घड़ी के अंदरुनी चक्रो की तरह प्राण अंदर गति करता है। प्राण जब शरीर में गति करता है तब शरीर के अंदरुनी विश्व का होता है।

स्पष्टीकरणः घड़ी के चक्री की तरह जीस तरह अंदर ही अंदर चलते है ओर नंगी आंखो से देख नहीं देख सकते उसी तरह प्राण की शरीर में जो गति होती है उसका अनुभव प्राप्त हो सकता है। बाहरी सांस जब अंतर की ओर गति करता है तब व्यक्ति विश्वनियंत्रक की शक्ति का अनुभव करता है। साधक को लगता है की सारा विश्व उसके अंदर है। वह साधक शाश्वत सत्य का अनुभव करता है। जैसे की सारा ब्रह्मांड उसी में हो।

12. जब हम पानी के घडे मे भरां हुआ पानी में देखे तब उसमें आसमान का प्रतिबिंब दिखाई देता है। उसी तरह जब अंदर द्रष्टि करें तो तब अंदरुनी चेतना का विशाल आसमान दिखाई देता है।

स्पष्टीकरणः नंगी आंखो से दिखाई देता आसमान स्थूल आसमान है लेकिन अंर्तद्रष्टि करने से दिखाई देता आकाश सूक्ष्म अर्थात चिदाकाश है। पानी के घडे में दिखाई देता विश्व अनत है फिर भी स्थूल है। मनुष्य का ह्रद्‌य स्थूल होता है फिर भी अंर्तद्रष्टि करने से अनंत ईश्वर का अनुभव प्राप्त होता है।

13. सुवर्णपात्र में या मिट्टी के बरतन में बनाया गया आहार हो फिर भी कुत्ता कोई भेद किये बिना वह खा लेता है।

स्पष्टीकरणः कुत्ता जब खाता है तब वह आहार सुवर्णपात्र में बना है या मिट्टी के बरतन में बना उसका भैद नहीं करता। वह यह भी नही सोचता की सुवर्णपात्र में बनाया गया आहार अच्छा है। ज्ञानी के लिए भी सुवर्ण और मिट्टी एकसमान है। उसे द्वैत का भाव न होने से अच्छे-बुरे का भेद होता नहीं है।

14. समुद्र के लवणयुक्त पानी में सूर्य का प्रतिबिंब पडता है ठीक वैसा ही प्रतिबिंब पहाडों पर तालाबों में पडती है। हम यह बात नंगी आंखों से देखे वही काफी नहीं है सेकिन उसका अनुभव भी प्राप्त होना चाहिए।

स्पष्टीकरणः सूर्य समुद्र के लवणयुक्त पानी और तालाब के स्वच्छ पानी के बीच में कोई भेद नही करता है। दोनो में सूर्य का प्रतिबिंब एकसमान दिखाई देता है। उसी तरह ज्ञानी के लिए गरीब-अमीर, महान या तुच्छ के बीच कोई फर्क नहीं होता। उसे द्वैत का कोई भाव नहीं होता। यह बात अनुभूति की है। किसी का कहा सुनने की नहीं है।

15. पैड़ पर बहुत सारे फुल खीलते है। फुल गीर जाते है लेकिन पैड़ लंबे अरसे तक नष्ट नही होता उसी तरह द्रश्य चीजें फुल की तरह है, जो अद्रश्य है वह पैड़ जैसा है।

स्पष्टीकरणः फुल पैड़ पर खीलता है लेकिन पैड़ फुल पर नही खीलता। पैड पर खीले फुल की तरह द्रश्यमान विश्व अद्रश्य ईश्वर में से पैदा हुआ है। द्रश्यमान विश्व फुल की तरह नष्ट होनेवाला है। अद्रश्य ईश्वर नष्टप्राय नहीं होता, वह पैड जैसा है।

16. माचिस की डिब्बी में तीलियां होती है, लेकिन वह अग्नि तभी पैदा कर सकती है, जब उसे माचिस की डिब्बी के साथ घीसा जाये उसी

तरह चित्त (मानस) भी तीलि जैसा है, बुद्धि माचिस की डिब्बी की बाजुएं है। वहां पर चित्त (मानस) और बुद्धि एकदूसरे के साथ घीसते है तब आत्मा का प्रकाश पैदा होता है, उसका तेज जन्म-मृत्यु के चक्र में से मुकित जैसा है।

स्पष्टीकरणः तीलि से प्रकाश तभी पैदा होता है जब माचिस की बाजुओ पर वह घीसी जाती है उसी तरह ज्ञान का अग्नि तभी प्रकाशित होता है। जब मानव (मानस) चित्त को बुद्धि के साथ घीसा जाता है। मानस माचिस की तीलि जैसा है और बुद्धि माचिस की बाजुओ की तरह है। जब मानस और बुद्धि एकदूसरे के साथ घीसते है तब मनुष्य में एक सूक्ष्म परिवर्तन होता है। उसे अर्थात मनुष्य को आत्मा के साक्षात्कार की अनुभूति हौती है। आत्मा के साक्षात्कार का मूलतः लक्ष्य तो जन्म-मृत्यु के चक्रो में से मुक्त होने का है। आत्मा का साक्षात्कार ही मनुष्यजीवन का उदेश्य और अंतिम लक्ष्य है।

17. मनुष्य को मान-अपमान की ओर लक्ष्य नहीं देना चाहिए। अपने शरीर के लिए कम से कम प्यार होना चाहिए। ऐसा मनुष्य ही सर्वशक्तिमान को अत्र तत्र सर्वत्र देख सकेगा।

स्पष्टीकरणः मनुष्य जब तक खुद को नष्टप्राय समझता है तब तक मान-अपमान के युद्ध के लिए समान रहता है लेकिन खुद एक नष्टप्राय शरीर है वह खयाल उसके मानस में से चला जाता है तब वह मुक्त हो जाता है मतलब मुक्तात्मा बन जाता है। ईस स्थिति में पहोंचने के बाद उसे ईश्वर के दर्शन सर्वत्र होते है और सर्व में होते है। वह सर्व है और सर्व वही है।

18. सर्वोत्तम प्रकाश और ब्रह्मतेज दोनो एकसमान है।

स्पष्टीकरणः ब्रह्मतेज ही सर्वोत्तम प्रकाश है, जो एकसाथ प्रकाशित होते करोडो सूर्य से भी तेजस्वी है।

19. लकडी एक मूल तत्व है, जीसमें से बैठने के लिए टेबल-कुर्सी बनाई जाती है उसी तरह ब्रह्म मूल तत्व है, जीसमें से अगणित विश्व का उदभव होता है।

स्पष्टीकरणः ब्रह्म ब्रह्मांड का मूल है, जीस तरह टेबल-कुर्सी लकडी के मूल तत्व में से बनती है उसी तरह ईश्वर सर्जन का मूल कारण है वह मूल तत्व है, जीसमें से सर्व का उद्‌गम होता है और अनगिनत विश्व का उदभव होता है।

20. मानस और आत्मा लोगो के हिसाब से समान है। ब्रह्मांड के अंतिम चरण में यह बात सही है लेकिन उसके पहले के चरण में दोनो की सांसे, सोचने और मनोभावो में फर्क है।

स्पष्टीकरणः मन और आत्मा आम लोगो के समान है, सृजन की प्रारंभ और अंत में यह बात सच्ची है लेकिन मध्य चरण में उसे फर्क दिखाई देता है, जीसे माया कहा जाता है। सभी मनुष्यों कभी ना कभी ईश्वर तक पहुंचते है। सवाल सिर्फ समय का होता है। सृजन के अंत में सब परब्रह्म में विलीन हो जाता है।

21. अग्नि, वायु, जल और पृथ्वी सब के लिए आम है, उसका उपयोग पूरा जनसमाज करता है। कुएं का पानी कोस से खींचे जाने के बाद ब्राह्मिन, शूद्र, बच्चे, नातजात, उम्र के फर्क को सोचे बिना करते है।

स्पष्टीकरणः अग्नि, वायु, जल और पृथ्वी का उपयोग सब करते है उसी तरह ईश्वर भी सब के लिए है। वह विश्व पिता है, जीसे जात-पात, उम्र के फर्क बिना प्राप्त कर सकते है। जीस तरह कुएं में से नीकलता कोस का पानी ब्राह्मिन, शूद्र जात-पात के भेद बिना उपयोग कर सकते है उसी तरह ईश्वर की अनुभूति सब के लिए एकसमान है।

22. मानस तिल के जैसा है। बुद्धि तैल की चक्की जैसा है और अमृत उसमें से नीकलता तैल है।

स्पष्टीकरणः मनुष्य के मन को बुद्धि की शक्ति से नियंत्रित किया जाता है तो एक ईच्छाशक्ति पैदा होती है, जो मुक्ति के अमृतत्व स्थान तक ले जाती है। मनुष्य तिल को जीस तरह चक्की में पीसता है उसी तरह मानस को बुद्धिस्वरुप चक्की में पीसने से मुक्ति का अमृत नीकलता है।

23. बुद्धि राजा है और मन प्रधान है, प्रधान को हरदम राजा के अधीन रहना चाहिए।

स्पष्टीकरणः बुद्धि का स्थान मनुष्य के जीवन में मन से ऊंचा है। राजा जीस तरह उसके प्रधान का मालिक होता है उसी तरह बुद्धि को मानवमन का मालिक बने रहना है और मन बुद्धि के अधीन रहना चाहिए। मनुष्य अगर मन के हिसाब से चले तो वह अज्ञानी है लेकिन अगर वह बुद्धि के अंकुश में रहता है तो वह ज्ञानी है। यही विचार वेदांत का है।

24. कीसी मार्ग पर पांच-छः हजार लोग एकसाथ जा रहे है तब बग्गी चलाना ज्यादा मुश्किल होता है। बग्गीवाले को बग्गी चलाने में सावधानी बरतनी पडती है। साईकिल चलानेवाले को आसपास के पदयात्री को खयाल रखना पडता है, उसे अपना खयाल रखना जरूरी नही है।

स्पष्टीकरणः जीस तरह 5-6 हजार लोगो की भीड़ में से बग्गी को आसानी से नीकाली नही जा सकती उसी तरह दुन्यवी जीवन की वासना में अटका मनुष्य आसानी से ईश्वरप्राप्ति के मार्ग की ओर आगे बढ नहीं सकता। ऐसे मनुष्य को खुद के लिए ज्यादा जागरुक रहना चाहिए। उसे साईकिल चलानेवाले की तरह अपना खयाल नही रखना है बल्कि कीसी ओर का खयाल रखना चाहिए। दुन्यवी जीवन में रहना और उसमें से मुक्त रहना कठिन है। जो मनुष्य ईच्छाओ की जाल मे फंसा है उसके लिए यह जाल में से नीकलना बहुत मुश्किल होता है।

25. ठंडे पानी में गले तक डूबे मनुष्य को ठंडे पानी से कुछ भी फर्क पडता उसी तरह पूर्ण व्यक्ति को क्रोध प्रभावित नहीं करता है।

स्पष्टीकरणः जब मनुष्य अनुभूति के उच्चतम स्तर पर पहुंचा हो तब ईश्वर उसे अंदर-बाह और हर तरफ दिखाई देता है। वह सारे विश्व में ईश्वर और ईश्वर में पूरे जग को देखता है। ऐसा आदमी दुन्यवी जीवन की निर्बलताओ से परें होता है। वह पूर्णरुप से शांत होता है, उसकी चित्तवृतियां खतम हो गई है।

26. एकबार तैल मे तुले जाने के बाद बीज अंकुरित नहि होता, दीपक में तैल खतम हो जाने के बाद हम उसे दीपक नहि कहते है। जब आदिनारायण सूर्य तप रहा है तब वायुदीपक ज्यादातर धूंधला लगता है। सूर्य दुनिया को प्रकाश देता है। मानस को राजा माने तो बुद्धि को प्रधानमंत्री कहा जाता है। पैडो पर फुल न खीले तो वें सुंदर नहि लगते। बीना कारण कोई परिणाम नहि होता। अंधकार में भी प्रकाश उपस्थित रहता है। अज्ञान अंधेरा है। ज्ञान प्रकाश है। मनुष्य को अपना

आत्मनिरीक्षण करना चाहिए। हमने जहां से यात्रा शुरु की वहां वापिस जाना चाहिए। हमने उधार ली हुई चीजें वापिस करनी चाहिए।

स्पष्टीकरणः पूर्ण ज्ञानी को जगत की ईच्छाएं छूती नहि है। वह अपनी ईच्छाएं खतम कर देता है। ईसलिए ही तले हुए बीज को जमीं में लगा देने के बाद उसे पानी दिया जाये तो भी अंकुरित नहि होता उसी तह ज्ञानी की मृत हुई ईच्छाओं फिर से जिवीत नहि होती और उसका मन अचल रहता है। वह जिवीत होने के बावजूद दुन्यवी जीवन में वापिस आ नहि सकता। दीये में तैल न हो तो उसे दीया नहि कहा जाता और ईच्छारहित मनुष्य को मनुष्य नहिं कहा जाता। ईच्छारहित मनवाला ज्ञानी ईश्वर में एकरुप हो जाता है। सूर्यप्रकाश के सामने जैसे गैस का दीया धूंधला लगता है ठीक वैसे ही बुद्धि के सामने मन धुंधला लगता है। मनुष्य को बुद्धि से मन को वश में करना चाहिए। मन बुद्धि के नियंत्रण में रहना चाहिए। बुद्धि को मन को सही दिशा दिखानी है और मन है की जीसे उसकी सलाह अनुसार चलना है। बुद्धि को प्रधानमंत्री की भूमिका निभानी है। मानस राजा है ओर प्रधानमंत्री के तौर पर बुद्धि को उसे सलाह देनी है। बिना फल का पैड़ निरुपयोगी है उसी तरह शाश्वत सत्य के ज्ञान बिना मनुष्य निरर्थक है। ईस दुनिया में बिना कीसी वजह से परिणाम मिलता नहि है। ईश्वर भी सृजन की वजह है और उसका परिणाम दुनिया है, उसी तरह गुरु भी कारण है और ज्ञान वह परिणाम है। गुरु के बिना ज्ञान संभव नहिं। अंधकार में प्रकाश की उपस्थिति होती है। माया के अंधकार में रत हुआ विश्व ईश्वर का सृजन है। ईस तरह, पूरे विश्व के सृजन के बारे में कहें तो उसका मूल ईश्वर है। सत्य की अनुभूति होनी मतलब अंधकार में प्रकाश का दर्शन करना। अज्ञानता अंधकार है और ज्ञान प्रकाश है। खुद

को पहचाननेवाला ज्ञानी है। जहां से हमने जन्म लिया है उसी जगह में वापिस जाना वहीं हमारा मूल फर्झ है। हमारा जन्म स्थान ईश्वर है और ईस मनुष्य जन्म में ईश्वर के सांनिध्य में वापिस जाना वह हमारा फर्झ है। आत्मा हमें ईश्वर की ओर से मिला अमूल्य तोहफ़ा है, जीसे शुद्ध ईश्वरभाव से वापिस करना हमारा फर्झ है।

27. गुरु अपने शिष्य को कंटिले मार्ग से राजमार्ग की ओर ले जाते है। ऐसे ज्ञानी गुरु दो तरह के होते है - एक गुरु प्रारंभिक - मूल ज्ञाता है, दूसरे आनुषांगिक है। मानवमन जो की प्रारंभिक मूल गुरु है। दूसरे आनुषांगिक है। लेकिन दोनो स्वतंत्र है मतलब की एक दूसरे का गुरु नहि है। आनुषांगिक है वह आनुषांगिक गुरु है। कुए में पानी दिखाए वह आनुषांगिक गुरु है लेकिन जगत के सभी जीवो के हृदय में बसे गुरु ही जगद्‌गुरु है।

स्पष्टीकरणः सदगुरु वही है जो मनुष्य को जगत के कंटिले मार्ग पर से अध्यात्म के राजमार्ग पर ले जाते है। ऐसे सदगुरु दो तरह के होते है, एक प्रारंभिक-मूल और दूसरे आनुषांगिक. मानवमन मूल गुरु है जो की मनुष्य के अच्छे-बूरे दोनो के लिए जिम्मेवार है। आनुषांगिक गुरु या गुरु मनुष्य को सही मार्ग की ओर ले जाता है वही आनुषांगिक गुरु है। ईश्वर जो की सृष्टि का सृजनकर्ता है वह सभी जीवो में बसता है और वह जगद्‌गुरु है।

28. लोग गुरु का शरीर देखकर कर उन्हें गुरुभाव से पूजते रहते है। माला के मोती गिनने से या पादुकाओ पहन के घुमने से गुरु नही बना जा सकता। गुरु ब्रह्मज्ञाननी बातें करें अनेकविध प्रकार के पत्थर शिष्यो

को दे तो भी वह सच्चा गुरु नहिं। गुरु अपने शब्दो को कार्यो से चरितार्थ करें तो ही वे सच्चे गुरु है। प्रथम अनुभव करे और अनुभूति करने के बाद दूसरे को ज्ञान देना शुरु करें।

स्पष्टीकरणः लोग आम तौर पर सोचते है की गुरु का बाह्य देह गुरु है। मनुष्य अच्छी पादुका पहनकर घूमे या माला के मोती गिने तो वह अच्छा गुरु नहि कहा जा सकता। सदगुरु बनने के लिए मनुष्य को अपने आत्मतत्व को पहचानना चाहिए। मानवमन के साथ बाह्य आवरण को संबंध नहि। गुरु बनने के लिए वचन और कर्म का ऐक्य आवश्यक है मतलब की जो बोले वही करे और जो करते है वही बोले। ब्रह्मज्ञान की बातें करें और शिष्यो को अनेकविध प्रकार के रत्न दें तो वे सदगुरु नहीं है। सदगुरु वही है जो उन्होंने सिद्ध किया हुआ ज्ञान अपने शिष्य को दे और वह शीखाना तब शुरु करे जब उन्होने ज्ञान को अनुभवसिद्ध किया हो।

29. जीस गुरुने अपना देहभाव मीटा दिया है वही सच्चे गुरु है और गुरु कहलाने लायक है और ऐसे गुरु से उपर कोई गुरु नहि है। ऐसे गुरु ईश्वर का स्वरूप है और ईश्वर ही ऐसे गुरु है।

स्पष्टीकरणः देहभाव को पूर्णरुप से मिटा देनेवाले ही गुरु बनने के योग्य है। ऐसे गुरु ईश्वर के समीप होते हो। अज्ञानी लोग ईश्वर और गुरु के बीच में फर्क देखते है। शक्कर दूध में घूल जाती है या नमक पानी में पीघल जाता है उसी तरह ऐसे गुरु ईश्वर में विलीन हो जाते है, आसलिए ऐसे गुरु और ईश्वर के बीच कोई भेद नहिं रहता।

30. शक्कर का स्वाद जीह्वा पर रखने पर ही प्राप्त होता है। शक्कर को जीह्वा से अलग रखें तो उसकी मिठास का अनुभव नहि होता

है। हजारो साल तक रामकृष्ण गोविंद का जाप करने से मुक्त मिलती नहि है। जो मनुष्य ह्रदय की समझ से जाप करता है तो ही मुक्ति प्राप्त होती है।

स्पष्टीकरणः हम कीसी दुन्यवी चीज का अनुभव करते है तो ही उसके स्वाद का पता चलता है। उसके बारे में सुनने से या देखने से उसके सच्चे स्वरुप का ज्ञान मिलता नहि है। शक्कर का स्वाद उसे जिह्वा पर रखने से ही आता है उसी तरह ईश्वर का नामजाप हजारो साल तक सिर्फ मुंह से करने से मुक्ति मिलती नहीं है। ईश्वर की प्राप्ति और मुक्ति के लिए यह जरूरी है की ह्रदयपूर्वक सच्ची समझ से ईश्वर का नामस्मरण किया जाये।

31. गाय का दूध कभी कड़वा नहि होता है। मनुष्य को मुक्ति प्राप्त करने के लिए रामेश्वरम, बनारस जैसे तीर्थधामो पर जाने की जरुरत नहि है। मुक्ति के लिए आवश्यकता यह है की आंतरमुख से, मन को थोडी पलो के लिए स्थिर किया जाएं। पत्थर की प्रतिमाओ के दर्शन करने से ईश्वर के दर्शन होते नहि है। पत्थर में मूर्ति का दर्शन करना सिर्फ एक भ्रमणा है। सही ज्ञान के बिना मुक्ति संभव नहि। हमे मिला हुआ मनुष्यजन्म परिणाम है। ईश्वरप्राप्ति के लिए फिर से प्रयास करना वह कारण है। हमे कारण और परिणामकी शुद्ध समझ प्राप्त करनी होगी। हमे अच्छे-बूरे या बूरे या जुट्ठे की समझ प्राप्त करनी होगी। यह सब समझने के बाद शांति प्राप्त करनी चाहिए।

स्पष्टीकरणः ईश्वरप्राप्ति गाय के दूध की तरह हरदम अमृततुल्य है। वह सत्चित्त आनंद है। गुरु हमें ईश्वर के प्राप्ति के मार्ग की ओर ले जा सकते है। पत्थर की प्रतिमा के आकार वे नहि कर सकते। तीर्थयात्रा

करने से ज्ञान प्राप्त नहि होता लेकिन उसके लिए गुरु की प्रेरणा आवश्यक है। मनुष्य के मनरूपी मर्कट का खेल दूर करना चाहिए। विवेकशक्ति बढानी चाहिए। मिट्टी-पत्थर की प्रतिमाओ के दर्शन ईश्वर के दर्शन नहीं है। मन को निरंतर आंतरमुख रखना चाहिए। पत्थर की प्रतिमाओ को ईश्वर समझना वह मन की भ्रमणा है। सही ज्ञान के बिना मुक्ति संभव नहीं है। हमने मनुष्य जन्म लिया वह परिणाम है, वजह है फिर से ईश्वर की प्राप्ति। हमें कारण परिणाम की समझ मनुष्य के जन्म के उदेश्य और उसके अंत की समझ से पानी चाहिए। जीवन का उद्देश आत्मा की प्राप्ति से हो सकता है। हमे शुभ-अशुभ-सच्चे-जुठ्ठे का विवेक पाना होगा। ईन सभी बातो का ज्ञान पाकर शांति प्राप्त करनी चाहिए जो की जीवन का लक्ष्य है।

32. घर की दीवारो को दरवाजें न हो तो उसे घर नहीं कहा जाता। पानी को गरम करने के लिए अग्नि अनिवार्य है। वायु के बिना अग्नि प्रज्जवलित नहि होता, आहार और नींद के बिना मनुष्य थोडे दिन जी सकता है लेकिन प्राणवायु के बगैर थोडे पल जीना भी संभव नहीं।

स्पष्टीकरणः घर के लिए दरवाजा जरूरी है। अग्नि गर्मी के लिए जरूरी है। हवा से आग प्रज्जवलित होती है। जीस तरह मानव के भौतिक शरीर के लिए आहार और निद्रा आवश्यक है उसी तरह प्राण शरीर के लिए अनिवार्य है। प्राण के बिना जीवन संभव नहीं।

33. जगत का नाश मतलब उसे वायु में परिवर्तित करना। राजयोग ऐसे सिद्धांत का मूल है, जीसमे सभी योनियां एकसमान मानी जाती है। एकात्मवाद के सिद्धांत का अनुसरण करें तो विभिन्न भेदबुद्धि मिट जाती है।

स्पष्टीकरणः जगत का नाश हो तो वह वायु में परिवर्तित हो जाता है अर्थात भूरे आकाश में परिवर्तित हो जाता है। राजयोग से एक ईश्वर का अनुभव होगा ईसलिए विभिन्न की भेदबुद्धि मिट जायेगी। ऐसा मानव ईश्वर के साथ एकरूप हो जाता है। दुनिया और उसके आकर्षणो से मुक्त हो जाता है। वह बाद में पूर्णरूप से एकात्मवाद का रहस्य समझ जायेगा।

34. अनंत (ईश्वर)में कोई अंतिम व्यक्ति या चीज नही है। ज्ञानी के लिए कोई अज्ञानी नही है। अज्ञानी के लिए कोई ज्ञानी नही है। बच्चें माता पर हाथ उठाएं तो भी माता उनको फेंक नहीं देती।

स्पष्टीकरणः ईश्वर अनंत है और उनकी अनुभूति होने के बाद कोई भी अंतवाली चीज या व्यक्ति नहि हो सक्ता। एकबार ईश्वर का साक्षात्कार होता है बाद में दुनिया का अस्तित्व रहता नहि है। ज्ञानी के लिए सब समान है अर्थात उसे किसी प्रकार का फर्क नही होता। अज्ञानी मतलब जिसे ईश्वर का अनुभव नही हुआ उसे ही सब फर्क दिखायी देते है। द्वैतभाव से मुक्त नही हो सकता। माता के लिए अच्छे-बूरे दोनो बच्चे समान होते है। वह दोनो समान तरीके से चाहती है। जिसे ईश्वर का अनुभव हुआ है उसके लिए अच्छे-बूरे सभी लोग समान है। वह सबको समानरूप से ही प्यार करता है।

35. मनुष्य को गुरु के शरण में जाने के बाद उनका त्याग नही करना चाहिए. मनुष्य का मन हिलते पानी में गीरते सूर्य के प्रतिबिंब की तरह हिलना नही चाहिए।

स्पष्टीकरणः एकबार गुरु के पास जाने के बाद उनमे चट्टान की तरह हमारी श्रद्धा रखनी आवश्यक है और वह सदा रहनी चाहिए। हिलते पानी में जैसे सूर्य का प्रतिबिंब भी हिलता है उसी तरह हमारा मन हिलना नहि चाहिए। हमारे मन में गुरु के प्रति अतूट श्रद्धा होनी चाहिए।

36. समुद्र का पानी अनंत है, तालाब का पानी एक सीमा में बंध है। हमारा मन तालाब के पानी जैसा है। हमारा मन अच्छे-बूरे की वजह है। मनुष्य अपनी अच्छी-बूरी सोच से अच्छा या बूरा बनता है। ईश्वर कभी मनुष्य के साथ अच्छा या बूरा करते नहि है। ईसकी वजह यह है की बुद्धि और ज्ञान ऐसी दो दैवी शक्तियां मनुष्य को मिली है। अच्छी सोचवाले मनुष्य को छडी से पीटा जाय तो भी उसे कोई नुकसान नही होता। योग के बिना कर्म से मुक्ति पाना असंभव है।

स्पष्टीकरणः मनुष्य को अपना मन तालाब के पानी की तरह अंकुशित करना चाहिए। समुद्र के पानी की तरह उसे अंकुशरहित न करना चाहिए। जिसने ईश्वर का अनुभव किया है उसे अच्छे-बूरे का भेद नहीं होता। कुछ भी अच्छा या बूरा सब मनुष्य के मन में सृजित होता है। अच्छी सोच सदपुरुष बनाता है और बूरी सोच दुर्जन बनाता है। ईश्वर वही है जो की अच्छे या बूरे के प्रति पुर्णरूप से निष्पक्ष रहते है। वे अच्छे-बूरे की वजह नहि बनते। बुद्धि और ज्ञान मनुष्य को मिली दैवी संपति है। ईश्वरने सभी मानवो को समानरुप से दैवी संपति दी है। जिसके पास सदविचार की पूंजी है वह अजेय है। मनुष्य को कर्म के बंधनो से मुक्ति पानी हो तो एक ही रास्ता योग का है।

37. बाह्याचार से सजकर मूल सत्य को समझे बिना या तो अगर समझा जाये तो कर्मो से मुक्ति मिलती नही है। व्यक्ति अंदरुनी तौर पर दंभी हो और बाहरी श्रृंगार से श्रृंगारित होता है तो वह सच्चा सन्यासी नही बन सकता। व्यक्ति जो सोचता है वही बोलना चाहिए। जो भी बोले वह उसके कर्मो में अभिव्यक्त होना चाहिए। आप जो कहते वो करो और कहो वही जो आप व्यवहार में भी अपनाते हो। ऐसा व्यक्ति ज्ञानी है। ऐसा व्यक्ति परमहंस है। वह योगी है। वही सच्चा संन्यासी है। जिसने ईच्छाओ को जीता है वही सच्चा संन्यासी है। ऐसा ईच्छारहित मनुष्य सच्चा आध्यात्मिक गुरु बन सकता है।

स्पष्टीकरणः ईश्वर का साक्षात्कार किये बिना कर्म के बंधन छूटते नही है। संन्यासी वही है जो अंदरुनी तौर पर शुद्ध है। संन्यासी के बाहरी व्यवहार प्राप्त करके गलत मार्ग दिखानेवाले बहुत सारे दंभी ईस दुनिया में है। उन्हें शाश्वत सत्य का ज्ञान नही होता. वे सिर्फ दूसरो को ही अपने आप से भी छल करते है। सच्चा संन्यासी अपने शब्दो के हिसाब से शुद्ध होता है। अपनी सोच और कर्मोमें शुद्ध होता है। उसमें तीन तरह की शुद्धता होती है। शास्त्रो में उन लोगो को योगी कहा गया है। वें ही परमहंस कहलाये और वें ही सच्चे संन्यासी है। ऐसा व्यक्ति सच्चा आध्यात्मिक गुरु होने के योग्य है।

38. दूसरो की थाली में परोसा गया भोजन नहीं हमें नहीं खाना चाहिए। हमें अपना पात्र रखना चाहिए और भोजन करना चाहिए।

स्पष्टीकरणः बहूत से लोग ईश्वर के बारे में दूसरो ने जो कहा है या लिखा उसी से संतुष्ट हो जाते है लेकिन वह पर्याप्त नही है। जिस तरह

मनुष्य का अपनी क्षुधा तृप्त करने के लिए खाना चाहिए उसी तरह ईश्वर के साक्षात्कार करने के लिए स्वयं प्रयास करना चाहिए।

39. ईश्वरने सब लोगो को शक्ति दी है। कीसी को ज्यादा और कीसी को कम दीया है ऐसा नहीं है। ईश्वरने सभी लोगो को निष्पक्ष रहकर शक्तियां दी है। सोचना, सुनना, सूंघना, देखना और स्पर्श की शक्ति सभी को समानरुप से दी है।

स्पष्टीकरणः ईश्वरने सभी लोगो को शक्ति दी है। कीसी को ज्यादा और कीसी को कम दीया है ऐसा नहीं है। ईश्वरने सभी लोगो को निष्पक्ष रहकर शक्तियां दी है। सोचना, सुनना, सूंघना, देखना और स्पर्श की शक्ति सभी को समानरुप से दी है।

40. जहां पर नाक है वहां पर आंख नही है। चलने के लिए पांव चाहिए ही। हाथ से जो कार्य होते है वह दिमाग से नहीं होते।

स्पष्टीकरणः नाक, नाक की जगह पर है। आंख की जगह पर नहीं है मतलब नाक आंख का काम नही कर सकती है। चलने के लिए पग का होना अनिवार्य है। हाथ का कार्य हाथ ही कर सकता है मन नही, उसी तरह मानस, बुद्धि, जिवात्मा, परमात्मा सब अलग अलग है। एक का कार्य दूसरे से नहीं हो सकता।

41. मनुष्य का मन विशाल आनंद का महासमुद्र है। जिसके अंदर प्राणलिंग है, जो की मुक्ति का स्थान है। यह बात अनुभव से समझी जाती है। किताबो में उसका ज्ञान प्राप्त नही हो सकता। यह चीज मानवमन (चित्त)में गुप्त है। कीसी भी पुस्तक अनेक अध्यायो से बना हो ऐसा हो सकता है। उसमे जो ज्ञान वह अविभाज्य है। पुस्तक अध्यायो में

विभाजित है किन्तु ज्ञान एक अध्यायवाली पुस्तक है। जिन्हें साक्षात्कार नहीं हुआ उन्हें ज्ञान की किताबो का आधार आवश्यक है लेकिन सिद्ध पुरुषो के लिए एक अविभाज्य की अनुभूति पर्याप्त है। मनुष्य जन्म के समय अपने हाथमें किताब लेकर जन्म नही लेता और अंतकाल में वह पुस्तक साथ में रखकर पैदा नही होता या मरता नहीं है। ईस दोनो समयकाल में उसे पुस्तक का आधार चाहिए।

स्पष्टीकरणः मानवमन आनंद की अनुभूति का केन्द्र है। योगीओ का सहस्त्र कमल उनके मस्तिष्क में होता है और वही उनके आनंद की वजह है। मूलाधार जो की कुंडलिनी शक्ति का आधार है वहीं से शुरु हो कर कुंडलिनी शक्ति सहस्त्रार तक पहुंचती है और आध्यात्म की उच्चत्तम स्थिति पर पहुंचती है। जिसे प्राणलिंग कहा जाता है वह चित्त (मस्तिष्क)

में होता है। चित्त आकाश वह मुक्ति का महास्थान है। मुक्ति क्या है वह पुस्तक से नहीं सीखा जाता। वह अनुभूति का विषय है। पुस्तक शायद अध्यायो में विभाज्य हो सकता है लेकिन उसमे जो ज्ञान वह अविभाज्य है। ज्ञान एक अध्यायवाला पुस्तक है। ईश्वर का साक्षात्कार न हुआ हो ऐसे लोगो के लिए पुस्तक का आधार आवश्यक है। जिसने साक्षात्कार किया है वह सर्व में एक है और एक में ही सब कुछ है। जन्म के समय मनुष्य अपने हाथ में पुस्तकें (ज्ञान की) लेकर पैदा नहीं होता ठीक वैसे ही अंतकाल में भी वह अपने साथ पुस्तकें नहीं ले जाता है। जन्म के समय भी व्यक्ति चित्त (मन) और उसकी शक्ति के साथ पैदा होता है। मनुष्य जीवन के दौरान चित्तशक्ति के विकास से ही आध्यात्म की उच्चत्तम स्थिति प्राप्त हो सकती है, जिसे मुक्ति कहा जाता है।

42. मानव जन्म के समय पूर्ण होता है और अंतकाल में भी पूर्ण होता है। मध्य समय में सर्वत्र रही माया की वजह से वह अशुद्ध होता है। सर्वव्यापक ईश्वर एक और अविभाज्य है, जो सीमित है। उसका विभाजन संभव नहीं है।

स्पष्टीकरणः जन्म के समय पर अच्छे-बूरे का ज्ञान नहीं होने की वजह से बच्चा निर्दोष होता है और ईसलिए वे पूर्ण है उसी तरह वृद्ध अवस्था में भी बच्चे जैसी निर्दोषता मनुष्य में आ जाती है, ईसलिए ही वृद्धावस्था को दूसरा बचपन कहा जाता है। ईन दोनो ध्रुवो के बीच मनुष्य अज्ञान या माया में अटका होता है। परमात्मा सर्वव्यापक है। वह एक और अविभाज्य है। प्रकृति जीसकी सीमा है वह वैविध्यपूर्ण और विभाज्य है।

43. जहां से पानी बहता है वहां पर कीचड नही होता। वह जगह शुद्ध होती है। अज्ञान कीचड है। ज्ञान और भक्ति पानी की बहती धारा है।

स्पष्टीकरणः मानवमन को व्यक्ति और ज्ञान से शुद्ध किया जा सक्ता है। बहता पानी होता है वहां पर जीसतरह कीचड नही होता उसीतरह जहां ज्ञान और भक्ति की धारा मन में बहती है वह शुद्ध होता है। ऐसा मनुष्य भक्ति या ज्ञान है और वह पापरहित और पूर्ण होता है। भक्ति और ज्ञान का जलप्रवाह जहां पर बहता है वहां अज्ञान से कीचड जमा नही होता।

44. कीसी को भी पैसो की भिक्षा देना या अन्नदान करना भक्ति नही है। भक्ति अलौकिक प्रेम का रुप है। सभी मनुष्यो में ईश्वरदर्शन करना और वह भी बिना द्वैतभाव से वह भक्ति है।

स्पष्टीकरणः भक्ति बाहरी नही होती। वह मन का भाव है। भक्ति की अभिव्यक्ति शब्दो में नहीं हो सकती। वह अनुभूति का विषय है। भक्ति को बाह्य कर्मो का साथ रिश्ता नही होता। थोडे पैसो का दान करना या अन्न का दान करना वह भक्ति नही है। वह “चेरिटी” दान है। भक्ति अनहद प्रेम है। ईश्वर दर्शन सर्व मनुष्यो में करना और ईश्वर में सर्व का दर्शन करना वही भक्ति है।

45. सांसो को नियंत्रित (प्राणायम) किये बिना मनुष्य योगी नही बन सकता। वह संत या संन्यासी भी नही कहा जाता। बिना पतवार नौका या जहाज चलाया नही जा सकता।

स्पष्टीकरणः जिस तरह पतवार नौका को आसानी से चलाने के लिए आवश्यक है उसीतरह सांसो का नियंत्रण मन के अंकुश के लिए आवश्यक है। सांसो के नियंत्रण के बिना मानवी अपना नियंत्रण नही कर सकता। ऐसा मनुष्य योगी के संन्यासी नही कहलाता।

46. सज्जन के लिए हरकोई सज्जन है। वह हरतरफ अच्छा देखता है। मनुष्य अपनी करनी से अच्छा बनता है।

स्पष्टीकरणः मनुष्य लाल रंग के ऐनक पहने तो उसे दुनिया लाल दिखती है। दूर्जन हर बात में खराब या बूरा देखते है। अच्छा-बूरा तो व्यक्ति का अपना कर्म होता है। हम अच्छे बनने के प्रयास करेंगे तो अच्छे बनेंगे। व्यक्ति खुद को जैसा बनाना चाहता है वैसा बना सकता है।

47. हमे गन्ने का रस पीकर गन्ने का कूड़ा फेंक देते है उसीतरह शरीर आत्मा का घर है, जब वह वृद्ध हो जाता है तब हम नया बनाते है।

स्पष्टीकरणः ज्ञान गन्ने के रस जैसा मीठा है। अज्ञान गन्ने केकूडे जैसा होता है। ज्ञान सत चित्त आनंद है। हम जिस तरह गन्ने का कूड़ा फेंक देते है उसी तरह अज्ञान फेंक देना चाहिए। हम जिस तरह गन्ने का रस पीते है उसी तरह ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। मकान जिस तरह पुराना होता है तो मनुष्य उसका त्याग करता है या फिर उसका पुर्ननिर्माण करता है, उसी तरह शरीर वृद्ध होता है तब उसका त्याग करके आत्मा नया शरीर प्राप्त करता है।

48. मानवशरीर पंछी के घोंसले की तरह है। आत्मा मानव शरीर में रहता पंछी नही है। घोंसला नष्ट हो सकता है लेकिन घोंसले में रहता पंछी यानी आत्मा नष्ट नहीं होता मानव नाडीयां एवं मज्जातंतु भी मिट्टी के बने है। मनुष्य की नाडीयों में बहता खून, वीर्य और मांस नश्वर है और उनका मृत्यु से नाश होता है। एक दिन भी स्नान न होने से बदबू आने लगती है। नश्वर होने की वजह से मानवशरीर का विश्वास किया नही जा सकता।

स्पष्टीकरणः आत्मा मानवशरीर स्वरुप घोंसले में रहेता पंछी है। जिस तरह घास-पंखो का बना घोंसला नष्ट हो जाता है उसी तरह मानवशरीर भी नष्ट हो जाता है। मानवशरीर स्वरूप घोंसला नष्ट हो सकता है लेकिन आत्मास्वरुप पंछी नष्ट नही होता। मानवशरीर में रहता रक्त और वीर्य महाशक्तियां है लेकिन सब नष्ट हो जाता है। एक दिन शरीर बाहर से स्नान न करें तो वह बदबूदार बनता है। मानवशरीर नष्ट हो ऐसा है ईसलिए उसका साक्षात्कार करना ही हमारा फर्ज़ है।

49. मानवमन विचारो का सृजन करता है। स्थूल विचारो को नियंत्रित करने के बाद सूक्ष्म विचारो में मग्न रहें उस स्थिति को निर्विकल्प समाधि कहा जाता है या विचारशून्य स्थिति कहा जाता है। हम तोते (पंछीओ) को बोलना सीखाते है तब उसे पिंजरे में बंध करके ररखते है और पांव बांध देते है। हमे उसी तरह बुद्धि के बंधनो में मन को बांधना है। मनुष्य को अपने आत्मविकास के लिए ज्ञान प्राप्त करना है।

स्पष्टीकरणः मानवमन नये नये विचारो का रचयिता है किन्तु याह मानवमन सूक्ष्म विचारो में मग्न रहें और स्थूल विचारो का त्याग करे तो उसे समाधि स्थिति कहा जाता है। जिस तरह पंछी को हम पिंजरे में बंध रखते है उसी तरह मनुष्य को उसकी बुद्धि से मन को नियंत्रित करना चाहिए। बुद्धि को हमें आत्मसाक्षात्कार का अभ्यास करवाना चाहिए। हम पंछी को बोलना सीखाते है तब उसे पिंजरे में बंध रखते है। आत्मसाक्षात्कार के लिए मनुष्य को अपना ज्ञान बढाना चाहिए।

50. नासिका को हाथ से पकडकर और नेत्रो को ऊर्ध्वगामी करके एवं सांस को घड़ी की स्प्रिंग की तरह पकड के रखना. सरकस में होते खेल, सिनेमा के खेल “समाधि” नहीं कहलाते।

स्पष्टीकरणः समाधि अर्थात दैवी चेतना की जागरूकता, जिसमे मनुष्य ईश्वर को साक्षात देख सकता है। समाधि मतलब सांस को रोकना नही, आंखे उपर उठाना भी नही है, समाधि मतलब सिर्फ नासिका को हाथ से दबाना सांस को रोकना. साक्षात्कार मतलब सरकस का खेल नही है या सिनेमा का खेल नही है। समाधि अर्थात ईश्वर के साथ एकत्वभाव से जुडना। जहां जगत के द्वैतभाव नष्ट हो जाते है। जगत के सभी जीवो में

ईश्वर को देखना और ईश्वर में जगत के जीवो को देखना वही समाधि की सही स्थिति है।

51. दुनिया मे समता का ज्ञान होना उत्तम है। मनुष्य परछाई के पीछे दोडता है और उसके पीछे दीवाने बनते है। जगत के लोगो में से ईश्वर के लिए दीवानगी दिखानेवाले बहूत कम ही होते है। ईश्वर के प्रति सच्ची दीवानगी लाख में एक या दो होती है। दूसरे लोग चीजो के पीछे भागते है। "मुझे यह चाहिए", "मुझे वह चाहिए" यह उससे अलग है। यह उससे ज्यादा अच्छा है। ईसतरह चीजो के लिए पागलपन चलता रहता है। एक से ज्यादा लक्ष्यो के पीछे भागना वह पागलपन या उन्मत्तता है। मन की चंचलता, पागलपन है। महानता भी एक तरह से पागलपन ही हौ तो दूसरी ओर ईश्वर की हकीकत समझना अन्य प्रकार की उन्मत्तता है। जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त होना एकतरह की उन्मत्तता है, जो दैवीस्वरुप की है। जिसने सत्य का साक्षात्कार नही किया है और चीजों के पीछे भागते है वे पागल है। हरएक व्यक्ति को एक या दूसरी तरह का पागलपन (उन्मत्तता) होती है। हजारो लोगो के पास घर (मकान) होता है, हिरे-झवेरात होते है, सुवर्ण और संपति होते है। मनुष्य पैदा होता है तब ईन चीजो को साथ में रखता नही है और अंतकाल में साथ में नहीं ले जाता।

स्पष्टीकरणः समत्व यानी ईश्वर की उपस्थिति को सर्व में देखना वह दुनिया की उत्कृष्ट बात है। बहुत से लोग सांसारिक जीवन की चीजो के पीछे पागल बनकर दोडते है, लेकिन बहुत कम लोग "सूक्ष्म" यानी "आत्मा की वास्तविक्ता" के पीछे दोडते है। मनुष्य सांसारिक जीवन की क्षणबंगुर चीजो के पीछे दोडते है लेकिन दैवी चीजो के पीछे शायद ही दोडते है। लाखो लोगो में एक-दो लोगो में ईश्वर के प्रति दीवानगी होती हौ।

बहुत से लोग स्थूल चीजो के पीछे भागते है। ऐसे लोग एक पल में बहुत सारी चीजो के पीछे भागते है। मानवमन मरकट की तरह है। “मुझे यह चाहिए।”, “मुझे वह चाहिए”, यह चीज उससे अलग है, वो चीज ईससे अच्छी है। ईसतरह ऐसी सांसारिक जीवन की बाते ही उनकी बातो का विषय होता है। दुनिया के वैविध्य में ईश्वर की एक्ता वे देख नही सकते। अलग अलग लक्ष्यो के लिए एक पागलपन है। दुनिया में बडेपन के लिए दोडना वह भी पागलपन है लेकिन सही दीवानगी (पागलपन) तो अपनी हकिकतो को पहचानने में ही है। जो लोग शाश्वत सत्यो को समझ नही सकते वह स्थूल चीजो के पीछे पागल होते है। मुक्ति अर्थात बंधनो में से मुक्ति और वही दैवी पागलपन है। हर एक व्यक्ति को एक या दूसरी तरह का पागलपन होता है। हकिकत यह है की सांसारिक जीवन में - मकानो, झवेरात, अलंकार हम दूसरी दुनिया में साथ नही ले जा सकते। हम पैदा होते है तब ईन चीजो को साथ लाते नहीं है और अंतकाल में ये सब साथ में ले नहीं जाते। यह स्थूल विश्व छोडते है तब एक आत्मा ही हम साथ लेकर जाते है, जो की शाश्वत है। ईस जगत में आत्मा का साक्षात्कार हो और परम सुख की प्राप्ति हो।

52. मानव का शरीर रहे या नष्य हो जाये लेकिन हर एक चीज का एक ही कर्ता (करनेवाला) है। मनुष्य पैदा होता है तब सांस लेता है और सांस बंध हो तब दुनिया छोडता है, संपति और किर्ती ईस दुनिया में ही रहते है लेकिन ईश्वर के जगत में सब समान है। द्वैत ईस गजत में है। ईश्वर क जगत में भेदभाव (द्वैतभाव) नहीं है। अवधूत जगत का महान पूर्ण पुरुष है। योगी और संन्यासीओ को कुछ योगसिद्धि का अपेक्षा होती है। अवधूत को कीसी भी चीज की ईच्छा नहीं होती।

स्पष्टीकरणः आत्मा शरीर नहीं है। शरीर आत्मा का पिंजरा है। आत्मा जीवन के दौरान उपस्थित रहता है और अंतकाल में विलीन होता है लेकिन शरीर नहीं। ईश्वर जगत का कर्ता है। वह समयातीत, स्थानातीत और कारणो से पर है। जन्म के समय मनुष्य सांस साथ में बांधता है और अंतकाल में सांस वापिस ले जाता है ! प्राण ही मनुष्य के लिए सर्वस्व है। जर-जमीं, संपति और कीर्ति जागतिक है। मृत्यु के बाद की दुनिया में सब समान ही है। कुछ द्वैतभाव नही है। उस विश्व में गरीब-अमीर, महान-शूद्र का भेद नहीं होता। मानवो में श्रेष्ठ वह है जीसने दुन्यवी जीवन के सब राग (पेशन) त्याग दिये हौ। उस महामानव को अवधूत कहा जाता है। योगी और संन्यासीओ को सिद्धि की अपेक्षा रहती है लेकिन अवधूत को ईसमें से कुछ नही चाहिए और कीसी सिद्धि की ईच्छा भी नही होती.

53. जब सत और चित्त एक हो तब आनंद की अनुभूति होती है। यह आनंद ही परमानंद है। सत-चित्त-आनंद अनुभव मस्तिष्क में होता है। मनुष्य के दिमाग में ब्रहम नाडी है। ब्रहमानंद ब्रहमनाडी में है। ब्रहमानंद वही परमानंद। जीव को इस परमसुख का आनंद शिव (परमात्मा) साथ में हो तब करता हौ। ईस परमसुख को शिवानंद कहते है। परमानंद की अनुभूति मस्तिष्क में होती है। यह स्थिति शाश्वत आनंद की होती है। यह स्थिति जीवनमुक्ति की है।

स्पष्टीकरणः जब अस्तित्व के ज्ञान के साथ मतलब सत का चित्त के साथ मिलन होता है मतलब तब जीव का शिव के साथ एकत्व (मिलन) होता है तभी आनंद की अनुभूति होती है। ईस परमसुख जो की आत्मा के परमात्मा के साथ मिलन से उत्पन्न होता है वह परमानंद है। परमानंद की अनुभूति ब्रहमनाडी में होती है। ब्रहमनाडी अर्थात सुषुम्ना नाडी जो की

मनुष्य के दिमाग में है। ईसे ब्रह्मानंद भी कहते है और परमानंद कहते है दोनो में कुछ फर्क नही है। जीव जो आनंद का अनुभव करता है। वह शिवानंद है वह परमात्मा के साथ एकात्मक्ता से उत्पन्न होता है। यह स्थिति जीवनमुक्ति की है। जन्ममृत्यु के चक्र में से मनुष्य मुक्त हो जाता है। ईस शाश्वत आनंद की स्थिति है। ईश्वर परमसुख है और परमसुख वह ईश्वर है।

54. ज्ञानी वह है की जीसने सांसारिक आनंद का त्याग किया है और योगाभ्यास से ईश्वर का साक्षात्कार किया है। आनंद जो सुनते है उसमें नहीं है। आनंद अनुभूति का विषय है। ऐसा व्यक्ति महात्मा कहलाता है। मिट्टी और पत्थर की प्रतिमाओ के दर्शन करनेवाले महात्मा नही कहलाते। जीसने साक्षात्कार किया है वही महात्मा है।

स्पष्टीकरणः मनुष्य को ज्ञानी होने के लिए सांसारिक आनंद का त्याग करना चाहिए और योगाभ्यास से ईश्वर का साक्षात्कार करना चाहिए. ईश्वर के बारे में प्रवचन सुनने से आनंद का अनुभव नही होता। आतमानंद का अनुभव खुद प्रयास करके करना चाहिए। वह व्यक्ति महान आत्मा है, जीसने आत्मसुख का अनुभव किया है, पत्थर और मिट्टी की प्रतिमाओ के विविध तीर्थस्थआनो में दर्शन करने से महात्मा नही बना जा सकता। महात्मा वही है जो ईश्वर के साक्षात्कार से खुद को पहचानता है।

55. “अवधूत” वह है जीसने जन्म और मृत्यु का जाप किया है। वह शरीर से जागरुक नही होता। अवधूत गुणातीत होता है। उसने ईश्वर की सर्वत्र प्रकाशित ज्योत का अनुभव किया होता है। उसे कीसी तरह का “अहम” नहीं होता। वह राजयोगी होता है, हठयोगी नहीं। कीसी गांव या

शहर में प्रवेश करता है तो जीस जीस के वह दर्शन करता है उसे देखकर आनंदित होता है। वह अत्र-तत्र घूमता है फिर भी उसे द्वैतभाव नही होता। उसे क्षुधा नही होती। उसे पर्याप्त भोजन मिले तो आनंद से खाता है। उसे कुछ भी खाने को न मिले तो किसी से मागता भी नही है। उसे जहर देनेवाले और दूध देनेवाले दोनो समान होते है। उसे मारनेवाले और उसे प्यार करनेवाले दोनो समान होते है। अवधूत के लिए ब्रह्मांड (चिदाकाश) पिता, माता और सगे-संबंधी है। वह खुद ब्रह्मांड बन जाता है और ब्रह्मांड उसमे समा जाता है।

स्पष्टीकरणः अवधूत वह है जीसने मृत्यु ऐर जन्म का जप किया हुआ है। वह चाहै तब देह त्याग सकता है। अवधूत को देहभान नही हौता। अहंभाव उसमे से सदा के लिए अद्रश्य हो जाता है। वह गुणातीत मतलब त्रिगुण रजस, तमस और सत्व से पर हो जाता है। उसने ईश्वर की सर्वत्र प्रकाशित ज्योत का अनुभव किया होता है। उसने ईश्वर का साक्षात्कार किया है और ईश्वर के साथ एकरूप हो जाता है। वह राजयोगी है, वह हठयोगी नहीं है। राजयोगी होने की वजह से वह जीस गांव में या शहर में जाता है वहां जो भी मिलता है उसे देखकर आनंदित हो जाता है। वह खुद की तरह सभी को सम्मान देता है। उसे कोई द्वैतभाव होता नही है। भूख-प्यास और शरीर की अन्य क्रियाओ पर उसका नियंत्रण होता है। उसे जो भी मिलता है वह आनंद से जीतनी मात्रा में मिला हो उसी के हिसाब से ग्रहण करता है लेकिन अगर कुछ भी भोजन न मिले तो वह कीसी के पास मांगता नही है। उसे जहर देनेवाले और दूध देनेवाले में कोई फर्क नही होता। उसे मारनेवाले और प्यार करनेववाले दोनो समान होते है। ब्रह्मांड उसके माता-पिता और स्नेहीसंबंधी है। ब्रह्मांड अवधूत के लिए “ईश्वर” सर्व

है। वह ब्रह्मांड बनता है और ब्रह्मांड उसमे एकरुप हो जाता है। उसने खुद में उच्चतम शक्तिओ का विकास किया होता है, जीससे समस्त ब्रह्मांड गतिशील रहता है। ईसलिए वह ब्रह्मांड में एकरुप हो जाता है और ब्रह्मांड उसमे समा जाता है। वह ब्रह्मांड के साथ एकरुप होता है, क्योंकी वह तेजोमय शक्ति है और कोई स्थूल पदार्थ नही है।

56. प्राणायम करते वक्त सांस अंदर लेना उसे पूरक कहते है। कुंभक मतलब सांस रोकना। रेचक मतलब सांस बाहर निकालना। सांस के तीन प्रकार नैसर्गिक होते है। यहां बाहर से कुछ लेना नहीं है। ईस तरह सतत अभ्यास चलता हो तब प्राण एक ही नाडी में जाता है तब हमे अंदरुनी आनंद की अनुभूति होती है। ईस ब्रह्मानंद का विवरण कौन कर सकता है? बाहरी दुनिया तब भूली जाती है। हम पराविश्व (ब्रह्मांड) में लीन हो जाते है।

स्पष्टीकरणः प्राणायम तीन स्तरो से होता है। प्रथम स्तर में जब हम सांस अंदर लेते है तब उसे “पूरक” कहते है। अंदर ली हुई सांस रोकी जाये ततब उसे कुंभक कहते है और रोकी हुई सांस बाहर निकाली जाये तब उसे रेचक कहते है। ईन तीनो सांसो की प्रक्रिया प्राकृतिक अर्थात अंदरुनी तरीके से होती है। बाहरी वायु की मदद के सिवा प्राण खुद उर्ध्वगति करता है, जीसे ब्रह्मानंद कहते है। ब्रह्मानंद विवरणातीत है। बाहरी विश्व भूला दिया जाता है। हम पराविश्व में पहुंच जाते है। हम ब्रह्मानंद का अनुभव करते है, क्योंकी हम ब्रह्ममय हो जाते है।

57. जीवात्मा मतलब अभी का (सांसारिक) जगत। अभी के "सांसारिक" जगत के बाद का विश्व मतलब जीवात्मा का परमात्मा के साथ मिलन।

स्पष्टीकरणः मनुष्य संसार में हो तब तक वह खुद को परमात्मा से अलग समझता है लेकिन जैसे ही उसे अनुभूति होती की वह परमात्मा के साथ जूडा हुआ है तब वह सांसारिक दुनिया से पर हो जाता है। उसे मुक्ति कहा जाता है।

58. जीस तरह छोटी छोटी नदियां सागर से मिलती है तब समस्त ध्यान सागर की ओर रहता है उसी तरह हमे सांस की अंदर की गति पर लक्ष देना चाहिए।

स्पष्टीकरणः छोटी छोटी नदियां जीस तरह सागर की ओर गति करती है तब सागर में एकरुप हो जाती है उसी तरह हम सांस को अंदर की ओर खींचे तब मन आत्मा के साथ एकरुप हो जाता है। ईसे ईश्वर का साक्षात्कार कहा जाता है।

59. जो निरा आंखो से देख सकते है वह अल्पजीवी है और नष्ट होने योग्य है। मानवमन जब "बिंदु" और "नाद" में एकाकार हो जाता है तब निर्विकल्प समाधि सिद्ध होती है। हमारा ध्यान सिर्फ आनंद के प्रति रहता हौ। दो आंखो की भ्रमरो (भृकुटी) पर ध्यान केन्द्रीत करके प्राण ब्रह्मरंध्र में दाखिल होता है। यही परम ज्योत के दिव्य चक्षुओ से दर्शन होते है। यह मुक्ति की स्थिति है। यह शाश्वत आनंद की स्थिति है। ईस जगह पर ही "मानस" का स्थिर रहना पडता है। वेदो की उत्पति जहां से

हुई वह शाश्वत शक्ति यही है। यही सर्वमां परमात्मा के दर्शन होते है और वही जीवात्मा का सच्चा स्थान है।

स्पष्टीकरणः दिखाई देता विश्व अल्पजीवी है। वह नाशवंत है। ईश्वर एक और अद्धितिय है जो की नाशवंत नही है। व्यक्ति योगाभ्यास में जैसे जैसे आगे बढता वैसे वैसे उसे जीसको "नाद" कहा जाता है वह सुनाई देता है। "नाद" कुल दस तरह के होते है, जीसे "दस नाद" कहते है। उसी तरह आंतरज्योत को बिन्दु कहा जाता है, जीसे दिव्य द्रष्टि से देखा जाता है। जब यह आविर्भाव शरीर में होता है तब मन को बिन्दु और नाद पर केन्द्रीत करना चाहिए. ईस स्थिति पर जब मनुष्य पहुंचता है तब मन अपना अलग अस्तित्व खो देता है और परमात्मा के साथ एक हो जाता है। ईस स्थिति के निर्विकल्प समाधि कहते है। निर्विकल्प समाधि में ईश्वर सर्व में और सर्व ईश्वररुप लगते है। आध्यात्म की यह उच्चतम दशा है। निर्विकल्प समाधि की स्थिति में हमारा ध्यान ईश्वर के परमसुख (आनंद) पर होता है। सांसारिक जीवन के आनंद की ईच्छारहित स्थिति में सभी आनंद खुद हमे मिलते है। निर्विकल्प समाधि तभी सिद्ध होती है जब कुंडलीनी मूलाधार मे से ब्रह्मरंध्र में पहुंच जाती है। ईस स्थिति मे जाने के लिए आंखो के मध्य में रहे स्थान जीसे भ्रूमध्या कहा जाता है और वह त्रिकोणीय होता है, उस पर ध्यान केन्द्रीत करके प्राण का प्रवेश ब्रह्मरंध्र में होना चाहिए। यही दिव्य चक्षु से परम ज्योत का प्रकाश दिखाई देता है। यह मुक्ति की स्थिति है। यह परम आनंद है। यही वो स्थान है जहां "मानस" का वास होना चाहिए। यहीं ईश्वर का वास है। जहां से वेदो की उत्पत्ति होती है। जब मुक्ति की स्थिति पर पहुंचते है तभी हम परमात्मा के दर्शन सर्व में करते है। चिदाकाश ही जीवात्मा का सही स्थान है।

जीवात्मा शिव के साथ एकरुप हो जाता है और चिदाकाश या हृदयाकाश मे मोक्ष की स्थिति प्राप्त करता है।

60. जीव का सही स्थान स्वरुपहीन और अविभाज्य है। ईश्वर चल और अचल सक्षी चीजो मे मोजूद है। वह एक है और अद्बितिय है। ईश्वर वेदो का उत्पत्ति स्थान है। वह शरीर के अधिष्ठाता है। वह जीवनमुक्ति के देव है। मनुष्य को मनुष्य बनने के लिए ईश्वर का चिंतन करना चाहिए।

स्पष्टीकरणः जीव का मूल स्थान स्वरुपविहिन और अविभाज्य है। ईश्वर स्थुल-जंगम सभी चीजो मे शामिल है। वह एक और अद्बितिय है। वेदो का उदगमस्थान ईश्वर है। वह शरीर का अधिष्ठाता है। वह जीवनमुक्ति के देव है। वह ज्ञानदायी है और सर्वशक्तिमान है। मनुष्य को मनुष्य बनने के लिए ईश्वर का चिंतन करना चाहिए।

61. जो व्यक्ति हकिकतो पर चिंतन/मनन करता रहता है वह संन्यासी है और वह योगी है। बाहरी विश्व में जातपात/काले-गोरे का फर्क होता है। आंतरिक जगत मे सभी लोगो में कोई फर्क नही है। जो फर्क है वह मृत्यु के बाद मे नही है। रागद्वेष से भरा व्यक्ति वह है जीसमें ईर्ष्या और घमंड होता है। धर्म के बारे में व्यर्थ विचारविमर्श करते है1 सिलाई का मतलब सिर्फ धागा और वस्त्र को टांके लगाना नहीं है लेकिन वस्त्र और धागे के साथ से वस्त्र तैयार करना वह है। ईसी तरह मानस और बुद्धि का मिलन करना है। अब स्त्री-पुरुष के फर्क की बात करते है। ऐसी स्त्री वह है जो बाहरी दुनिया में व्याप्त रहता है और सही पुरुष वही है जो अंदरुनी जगत में लीन हो जाता है। जीसकी बुद्धि स्थिर है वह मर्द है, जीसकी बुद्धि

चंचल है वह स्त्री है। स्त्री-पुरुष का भेद सिर्फ बाहरी है। अंदरुनी जगत में ऐसा कोई फर्क रहता नहीं है। मानस और बुद्धि जब आत्मा में एकरूप होते है तब स्त्री भी आध्यात्मिक तौर पर पुरुष बन जाती है।

स्पष्टीकरणः सच्चा संन्यासी वह है जो ईश्वर की हकिकत के बारे में चिंतन करता रहता है। ऐसी व्यक्ति ही सही मायने में योगी है। जातपात का फर्क सिर्फ बाहरी कार्यो में ही दिखते है। अंदरुनी जगत के सभी भेद मिट जाते है। शूद्र वह है, जिसे ईर्ष्या और मान होता है। धर्म के बारे मे अर्थविहिन चर्चा करता है। दूसरो की निंदा में सदा मग्न रहता है। जातपात का फर्क मौत के बाद रहता नहीं है। जातपात का फर्क यह सांसारिक जीवन मे होता है। शूद्र वह है जीसमें जंगली वृतियां होती है। ऐसा जंगलीपन की वृति रखनेवाला मनुष्य ईस जगत में शूद्र है। मैला उठानेवाला हकिकत में ईस जगत में शूद्र नही है। क्योंकी वह अपना सफाईकाम निष्ठा से करता है। सिलाई मतलब कपडा और धागे के टांके लगाना ही नही होता। सिलाई अर्थात मानस और बुद्धि का आत्मा के साथ होना वह है। स्त्री-पुरुष का फर्क बाहरी शरीर में नहीं होता स्त्री-पुरुष का फर्क है वह मनुष्य के अंदरुनी गुणो में होना चाहिए। स्त्री का स्वरुप वह है जो बाहरी विश्व में एकरुप हो जायें। सच्चा पुरुष वह है जो अंदरुनी जगत में एकरूप हो जायें। सच्चा मर्द वह है जीसकी बुद्धि स्थिर है, जीसकी बुद्धि चंचल है वह स्त्री है। आत्मा के महाराज्य में ऐसा कोई फर्क नहही होता जब मानस और बुद्धि आत्मा में एकरुप होते है तब जो भौतिक तौर पर तो स्त्री है पर आध्यात्मिक तौर पर मनुष्य है।

62. मानवशरीर एक गुफा जैसा है। ईस गुफा में आत्मा का वास है। शरीर की गुफा मे रहनेवाले आत्मा को मोक्ष की सिद्धि प्राप्त करनी

चाहिए। मानवशरीर अनेक भागो में बटा है लेकिन आत्मा के सूक्ष्म स्तर पर सब अविभाज्य है। ॐ प्रणव है। प्रणव शरीर में व्याप्त है। ॐ देह और स्वरूपविहीन दशा का नाम है।

स्पष्टीकरणः शरीर आत्मा को बसने के लिए बनी गुफा है। मानव शरीर में रहते आत्मा को मोक्ष के स्तर पर पहुंचना है। आत्मा शरीर में हो तभी मोक्ष प्राप्त करना चाहिए। बाहरी शरीर के कईं हिस्से होते है लेकिन सूक्ष्म स्तर पर सब एक ही होता है। जब जीवात्मा की अनुभूति होती है तब द्वैतभाव नष्ट होता है। ब्रह्मांड में ईश्वर सर्वशक्तिमान रहता है और समग्र ब्रह्मांड ईश्वररुप हो जाता है। ॐ प्रणव है। प्रणव है वह समग्र शरीर में व्याप्त है। ॐ उस स्वरुप की अने शरीर के अलावा की दशा है। ॐ जब निष्क्रिय हो तब पूर्ण हो ता है। ॐ की शक्ति जब जागृत होती है तब कहा जाता है।

63. भक्ति शुरु में स्वार्थरुप होती है, लेकिन धीरे धीरे उसमे स्वार्थ का तत्व कम होता रहता है। जब मनुष्य पूर्णत्व सिद्ध करते है तब समग्र ब्रह्मांड के अधिपति उनके गुरु बन जाते है।

स्पष्टीकरणः व्यक्ति शुरु के स्तर में स्वार्थमय होता है। मोक्षमार्ग के प्रारंभ में आध्यात्मिक सिद्धिओ प्राप्त करने की महत्वाकांक्षा होती है लेकिन साधना में जैसे जैसे प्रगति होती है वैसे वैसे सिद्धइ प्राप्ति की ईच्छा कम हो जाती है और भक्ति निःस्वार्थ होने लगती है। मनुष्य जैसे जैसे मोक्षप्राप्ति की सिद्धि प्राप्त करता है वैसे वैसे ईश्वर उसे उसके कर्म मे दिखने लगता है। ससमग्र विश्वना अधिपति उसके गुरु का स्थान लेता है।

64. हठयोग में स्वार्थभाव होता है। हठयोगी हरदम अपना कल्याण ईच्छता है। उसे प्रसिद्धि की ईच्छा होती है। हठयोग की सिद्धि से सूर्योदय को रोक सकते है । वह चाहे तो सुवर्ण का पहाड़ बना सकता है। "अहं ब्रह्मास्मि" कहना पर्याप्त नहीं। हे ईश्वर! आप ही सब कुछ हो और सर्व आप ही हो। सच्चा योगी वह है की जो समग्र ब्रह्मांड को योगी समझते है। समग्र सृष्टि को उसे अपने समतुल्य समझनी चाहिए।

स्पष्टीकरणः हठयोग में स्वार्थभाव होता है लेकिन राजयोग पूर्णरुप से निःस्वार्थ होता है। हठयोगी अपनी सिद्धियों के द्वारा कीर्ति की ईच्छा रखता है। वह योग सिद्धियों से सूर्योदय का रोक सकता है। हठयोग की सिद्धि से मिट्टि को सुवर्ण में परिवर्तित करके सुवर्ण का पहाड बनाना चाहते है। लेकिन राजयोगी उससे अलग होता है। राजयोगी को किसी शक्तियों की ईच्छा नही होती। वह संपूर्णरुप से ईश्वर को समर्पित हो जाता है। "मैं ब्रह्म हु" उतना कहने से "ब्रह्म" का स्तर प्राप्त नही होता। इस तरह के भाव से अपनी शक्तियो के लिए अहोभाव पैदा होता है। जो मनुष्य (योगी) में गर्व का अर्थात अहंकार भाव आता है। सच्चा योगी ऐसे मनुष्य को ईश्वर की सर्वोपरिता स्वीकार कर सारे विश्व में उसकी और उसमें सारे विश्व की अनुभूति करनी चाहिए। यही सच्चे योगी का भाव है।

65. मनुष्य वन में जाता है और गुफा में रहता है तो उस में और गुफा में रहते प्राणी में कोई फर्क नही है। उसके बजाय मार्ग पर अंतर दिखाते पत्थर अच्छे है जीससे हमे दूरी अंदाझ माईल में लगाने में मदद मिलती है। गुफा में रहते मनुष्य पूर्णरुप से निकम्मे है। सच्चे विचार से बहुत ही सोचसमझकर धीरे धीरे जगत का त्याग करना चाहिए। मनुष्य अगर भोजन ग्रहण करता है तो वह अपने लाभ के लिए खाता है। जगत

को उससे कोई लाभ नही है। हमे हरदम ज्ञान के प्रकाश में रहना चाहिए। अंधकारवाले मार्ग पर रोशनी हो तो हमे डर नहीं लगता। अज्ञान के अंधकार में जीता मनुष्य हरदम डर में जीता है।

स्पष्टीकरणः जंगल में जाकर गुफा में बैठकर साधना कर रहे लोग गुफा में रहनेवाले पशु समान है। उनका जगत में कोई उपयोग नहीं है। मन से जगत का त्याग करने में ही सच्चा त्याग है। ऐसे लोगो से दूरी दिखानेवाले पत्थर ज्यादा अच्छे है क्योंकी कम से कम उसकी मदद से कीतनी दूरी हमने तय की वह पता लग जाता है। विचारशील मनुष्य को धीरे धीरे जगत का त्याग करना चाहिए। उसको जनक विदेही की तरह जगत में रहता है फिर भी जगत का त्याग करना चाहिए। जिस तरह मनुष्य अपनी क्षुधातृप्ति से खुद के लिए लाभ और आनंद प्राप्त कर सकता है उसी तरह खुद ईश्वर साधना करने से ही मोक्ष सिद्धि प्राप्त हो सकती है। अज्ञान अंधकार है और ज्ञान प्रकाश है। ज्ञानी का ज्ञान उनका शस्त्र है, ईसलिए कंटिले पथ पर चलते वक्त उसे डरने की जररुरत नहीं। अगर मनुष्य के अंधकारभरे पथ पर ज्ञान की रोशनी छाई हो तो उसे डर नही लगता।

66. अगर व्यक्ति फलप्राप्ति की ईच्छा से हजारो साल तपश्चर्या तो भी कुछ काम का नही है लेकिन एक घटिका (24 मिनट) के लिए भी फल की ईच्छा के बिना तप करे तो उसे सर्व में ईश्वर और ईश्वर में सर्व की अनुभूति होती है।

स्पष्टीकरणः फलप्राप्ति की ईच्छा के बिना हजारो साल किये गये तप का कोई मूल्य नही लेकिन एक पल के लिए भी निष्कामभावना से ईश्वरप्राप्ति के लिए तप करनेवाले को सर्व में ईश्वर और ईश्वर में सर्व की

अनुभूति होती है। हमारे शास्त्रो में निष्काम कर्मयोग का ज्ञान दिया गया है। जब व्यक्ति अपनी ईच्छाओ को मार देता है वह ईच्छारहित दशा ही “मुक्ति” है।

67. हठयोग द्वैतभाव को पैदा करता है। राजयोग उत्तम है। मनुष्य को खुद “कर्ता” है ऐसा विचार नही करना चाहिए। सारी घटनाएं ईश्वर की महाशक्ति से होता है। सागर के पानी से पैदा होता नमक जब पानी में मिलता है तब वह उसके साथ एकरुप हो जाता है उसी तरह ही माया है जो परमात्मा में से पैदा होती है और परमात्मा में विलीन होती है।

स्पष्टीकरणः हठयोगी में द्वैतभाव नष्ट नहीं होता लेकिन राजयोग की स्थिति में द्वैत अतीत की बात बन जाती है। योग के सभी स्वरुपो में राजयोग श्रेष्ठ है। मनुष्य को कर्ताभाव का त्याग करना चाहिए। कर्ताभाव की वजह से उसमें अहंकार आता है। उसको ऐसा सोचना चाहिए की जगत में जो भी कुछ बन रहा है वह ईश्वर की करनी है। सागर के जल में से पैदा होता नमक फिर से पानी में गीरता है तो वह उसमे एकरुप हो जाता है उसी तरह माया का उदभव परमात्मा से होता है और योग की सिद्धि के आखरी स्तर में माया ईश्वर में विलीन होती है। माया का उदभव जहां से हु वहीं पर वह वापिस जाती है।

68. वेदांत मतलब प्राण। प्राण में समग्ररुप से विलीन होना मतलब ही वेदांत। वेदांत अविभाज्य है। उसका नाश नही होता। जीह्वा से वेदो का ज्ञान वह वेदांत नही है। वेदो का ज्ञान गले में होना चाहिए। ईस रहस्य तो समझनेवाले ब्राह्मिन है। वेद एकाक्षरी ब्रह्म है, वह प्रेरणास्त्रोत है। वेदांत

स्वरुपरहित और अपरिवर्तनीय है, अविभाज्य है। वेद से रोशनी पैदा होती है। योग में जीसको धारणा रहा जाता है वही सच्चा वेदज्ञान है।

स्पष्टीकरणः वेदांत अर्थात प्राण। प्राण मे विलीन हो जाना उसे ही वेदांत कहा जाता है। वेदांत एक, अद्धितिय अविनाशी और अविभाज्य है। वेदज्ञान जीह्वा से नही होता, वह गले से करना होता है ईसलिए हमें गहराई तक प्राण के शरीर में उतारकर वेदो का गान करना चाहिए। ईस रहस्य को जाननेवाले सच्चे ब्राह्मिन है। 'वेद' एकाक्षर 'ॐ' है। ओमकार की सिद्धि से ही वेद का उदेश्य और पराकाष्टा सिद्ध होती है। वेद का लक्ष्य मतलब एमकार सिद्ध होने से तृतिय नेत्र से हम दैवी ज्योति का अनुभव करेंगे। योग में जीसे धारणा कहा जाता है वह वेदगान है। वेदगान मतलब ही प्राणायम।

69. जीस तरह से साईकिल के टायर को हवा से बर दिया जाता है उसी तरह हमे नाडीयों को वेदांत अभ्यास से प्राप्त हुई उच्चतम स्थिति से भर देनी चाहिए। प्राण के ब्रह्मरंध्र तक ले जाना चाहिए। जो की मस्तिष्क में सबसे ऊंचा बिंदु है। नाडीयों को धीरे धीरे शुद्ध करनी चाहिए। बुद्धि और मानस को परमात्मा के साथ एकाकार कर देना चाहिए। बुद्धि और मानस परमात्मा के साथ एकाकार हो जाये तब उसके साथ लीलामय हो जाना चाहिए। योगी को उच्चस्थान पर पहुंच कर नीचे उपर द्रष्टि घुमाते रहना चाहिए। बुद्धि का ज्ञान उपर है। बुद्धि को ज्ञान के साथ एकाकार हो जाना चाहिए। शाश्वत आनंद के अमृतजल का पान करते रहना चाहिए। हमे योग का शाश्वत आनंद पानेवाले को पहचानना चाहिए। आनंद का मूल रहस्य समझना चाहिए। हकिकत में कुंडलिनी जागृत होनी चाहिए। हमे जैसे बच्चे को पालने में जुलाते है उसी तरह हमारा ध्यान दीमाग में केन्द्रीत करके

वहां क्या क्या हो रहा है उसका अनुभव करना चाहिए। मस्तिष्क में परमानंद (श्रेष्ठ-उच्चतम) आनंद दसानंद (शाश्वत आनंद) होता है। शिवलिंग भी मनोसृष्टि में है और वह एक ही है।

स्पष्टीकरणः जीस तरह साइकिल के टायर में हवा भरते है उसी तरह नाडीयों को वेदांत के अभ्यास द्वारा प्राप्त उच्चतम स्थिति से भर देनी चाहिए। प्राण को ब्रह्मरंध्र मे ले जाना चाहिए। ब्रह्मरंध्र मस्तिष्क में स्थित उच्चतम बिंदु है। जहां आत्मा के साथ उसका मिलन होता है। नाडीयों को धीरे धीरे शुद्ध होना चाहिए। बुद्धि और मानस को परमात्मा के साथ एकाकार हो जाना चाहिए और ईश्वर के साथ एकाकार रहना चाहिए। उसके साथ लीन (मस्त) हो जाना चाहिए। मनुष्य के लिए सिद्धि का उच्चतम स्थान है। हमारे मानस को जनक विदेही की तरह साक्षीभाव से देखने की आदत डालनी चाहिए। हमे उपर की मंजिल पर बैठा व्यक्ति आसपास एवं नीचे की चीजो को जीस तरह साक्षीभाव से देखता है उसतरह देखना चाहिए। हमारे मन को जगत का त्याग करना है। मानस बुद्धि के वश में रहना चाहिए। मनुष्य के मन में बुद्धि का स्थान मन के उपर है। बुद्धि और ज्ञान एक हो जाने चाहिए और एकरुप हुए बुद्धि और ज्ञान को परब्रह्म में एकरुप हो जाना चाहिए। बुद्धि और ज्ञान परमात्मा मे मिल जाते है बाद में हमे शाश्वत आनंद के अमृत का पान करना चाहिए। हमे आनंद के मूल रहस्य का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। हमे आनंद के उच्चतम स्तर पर पहुंचे साधको का अनुभव करना चाहिए। कुंडलिनी सही अर्थ में जागृत करनी चाहिए और उसकी गति सहस्त्रार अर्थात योगी जिसको सहस्त्र पत्तीवाला कमल कहते है उस ओर उसके मन को गतिमान करना चाहिए। जीस तरह हम बच्चे को पालने में झुलाते है तब हरदम हम उस पर ध्यान देते है

उसी तरह हमे मनोसृष्टि में क्या हो रहा है उस पर ध्यान देना चाहिए। परमानंद और सदानंद दोनो मनुष्य की मनोसृष्टि में है। शिवलिंग भी मनोसृष्टि में है, जो एक ही है। ईस स्थिति को मोक्ष की स्थिति कहते है।

70. तीली को माचिस की डिब्बी की बाजु पर घिसने से अग्नि प्रकट होती है और उस अग्नि से हररोझ खाना बनता है। अगर ज्ञान प्राप्त करने के लिए योग्य व्यक्ति हो तो उसे हररोझ आत्मज्ञान प्राप्ति के लिए उत्साहित करना चाहिए।

स्पष्टीकरणः जीस तरह तीली को माचिस की बाजु पर घिसकर अग्नि प्रज्जवलित कि जाती है उसी तरह निरंतर योगाभ्यास और प्राणायाम से कुंडलिनी जागृत करने का प्रयास करना चाहिए। मानस और बुद्धि अंकुश में रखकर सूक्ष्म विवेक का विकास करना चाहिए। मानस तिली जैसा है। बुद्धि माचिस की डिब्बी जैसा है। ज्ञान का अग्नि मानस की माचिस की बाजु पर घिसने से प्रज्जवलित होगी। जब मुक्ति की प्राप्ति हो तब अपने पास वह सिमीत न रखकर अन्य को प्रदान करना चाहिए। ज्ञानप्राप्ति के लिए योग्य व्यक्ति हो तो ही उसे ज्ञान देना चाहिए। जीसके पास सूक्ष्म विवेकबुद्धि हो उसे ही ज्ञान देना चाहिए।

71. जीसे भूख न हो उसे ज्यादा खाना देने से उसे बदहझमी होती है, जीसका पेट खाली न हो उसे भूख नहीं होती। जीसके पास पहनने के लिए वस्त्र ज्यादा हो उसे ठंड ज्यादा लगती है।

स्पष्टीकरणः जीस तरह भूख न हो उसे ज्यादा खिलाने से बदहझमी होती है उसी तरह बिना जिज्ञासा के व्यक्ति को आध्यात्मिक ज्ञान देने से

उसे आध्यात्मिक बदहझमी होती है। जीस तरह जीनके पेट भरे हुए हो उसे भूख नही लगती उसी तरह सांसारिक आनंदो मे मग्न मनुष्य को आध्यात्मिक ज्ञान की ईच्छा नही होती, उसी तरह ज्यादा से ज्यादा वस्त्र पहननेवाले को ठंड के समय ठंड ज्यादा लगती है उसी तरह ईन्द्रियो के आनंद में ज्यादा से ज्यादा व्यस्त रहनेवाले को ईन्द्रियां ज्यादा परेशान करती है। ईन्द्रिय पर संयम उस की ओर दुर्लक्ष देकर आ सकता है। आध्यात्मिक ज्ञान सिर्फ योग्य व्यक्ति को ही देना चाहिए।

72. मनुष्य को काशी जाना हो तो रेलवे से जाना चाहिए। मनुष्य को रेलवे से शिवानंदपुरी पहुंचना चाहिए। व्यक्ति को शांतिधाम पहुंचना चाहिए और सफर ब्रह्मानंद पुरी में खतम करना चाहिए।

स्पष्टीकरणः कुंडलिनी को हृदयाकाश (चिदाकाश) की ओर अंदरुनी तौर पर गति करनी चाहिए। यह यात्रा मनुष्य को मुक्ति प्राप्त करने के लिए अवश्य करनी चाहिए। जो काशी, ब्रहमानंदपुरी-शिवानंदपुरी सभी मनोसृष्टि में है वह चिदाकाश है और मस्तिष्क में है। हर एक व्यक्ति को काशी जाना है। शिवानंदपुरी पहुंचना है और ब्रहमानंदपुरी रुकना है। यह सब मतलब चिदाकाश या चेतना का आकाश है। चिदाकाश के साथ एक हो जाने के बाद हमे उच्चतम आनंद की अनुभूति करनी है।

73. मनुष्य को अपना ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। जिसने चित्त (मन) पर विजय प्राप्त किया है वही मानव है। वह संयमी है वही योगी है और वह सब में एक आत्मा को देखता है। सूर्य की रोशनी में से अंधकार से भरे कमरे में आते है तब क्या दिखता है? सूर्य की ओर निरंतर पांच मिनट

देखने के बाद अंधकार से भरे कमरे में आते है तो कुछ दिखे नहीं वह स्वाभाविक है। व्यक्ति को अंदरुनी द्रष्टि से देखना चाहिए।

स्पष्टीकरणः मनुष्य को खुद को पहचानना चाहिए. आत्मा की अनुबूति लक्ष्य है। वही सच्चा मनुष्य है, जीसने मन को जीता है। वही सच्चा संयमी है और वही योगी है। सच्चा योगी सब में आत्मा का दर्शन करता है। ईश्वर के संपूर्ण सृजन में सिर्फ ईस्वर का दर्शन करना चाहिए। सूर्य की रोशनी में घूमने के बाद अंधकार से भरे कमरे में प्रवेश करते है तब क्या दिखता है? कुछ नहीं। यह एकदम स्वाभाविक है। दिखता विश्व निर्विकल्प समाधि की उच्चतम दशा की ईच्छा रखनेवाले के लिए एकदम सूना हो जाना चाहिए। यह स्थिति शून्यता की स्थिति है। मनुष्य की सही द्रष्टि आंतरद्रष्टि है। ईस स्थिति दैवी चक्षु से दिखने को मिलती है। यही मनुष्य का जीनवलक्ष्य है।

74. पक्का केला स्वाद में बहूत मधुर होता है। वही फल जब कच्चा होता है तब तूरा लगता है। एक ही पैड़ पर पैदा होने के बावजूद स्वाद में फर्क समय की वजह से आता है। नारियल को जमीन में रखने से शीघ्र ही उसका पौधा उगता नहीं है। सर्वप्रथम वह अंकुरित होता है बाद में वह पौधा बनता है और अंत में नारियल का पैड बनता है। कोमल नारियल तुरंत पैड पर से ले सकते है लेकिन पक्का नारियल आसानी से नही ले सकते। उसी तरह हमारे मन पर लोग हमारे बारे में कैसी बी बातें करें और कहें उसके पर कोई प्रभाव नही होना चाहिए। मन हमारे अंकुश में रहना चाहिए। यही बात मनुष्य को अपने जीवन में सिद्ध करनी होती है। शायद मानवजीवन का यही उद्देश होना चाहिए। मनुष्य को अपने सर की किंमत पर भी यही लक्ष्य प्राप्त करना है। यही लक्ष्य की सिद्धि के लिए मन से ही उसे

नियंत्रित करना होगा। यह चाबुक, हाथ या दूसरी कोई चीज से नही हो सकता। हमे मनुष्य को बिना रस्सी के बांधना शिखाना है। यही बात मनुष्य को अपने जीवनकाल में सिद्ध करनी है।

स्पष्टीकरणः पक्का केला स्वाद में बहूत मीठा होता है लेकिन वही फल जब कच्चा हो तब स्वाद में तूरा लगता है। दोनो एक ही पैड पर उगते है उसके बावजूद दोनो के बीच समय का अंतर होने की वजह से फर्क मालूम पडता है। उसी तरह सृष्टि का नाश होता है तब आध्यात्म की उच्च दशा में पहुंचे लोग ईश्वर के साथ एकाकार हो जाते है उसी तरह सृष्टि के सृजन के वक्त भी वें एकसमान थे। फर्क सिर्फ अभी है। सभी लोग एक या दूसरे समय में जल्दी या देरी से ईश्वर के प्राप्त करते है। फर्क सिर्फ समय का है। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से ज्यादा ऊंचा या अच्छा नही है। सभी एक तरह के ही है। नारियल को जमीन में लगाया जाये तब वह तत्काल नारियल नहीं बनता। प्रथम मन की चंचलता का नाश करना है, बाद में मन को ईश्वर के प्रति केन्द्रीत करना है और अच्छी-बूरी वृतियों का नाश कर के पूर्णत्व मतलब मोक्ष के स्तर तक पहुंचता है। कोमल नारियल आसानी से पैड से तोडा जा सकता है लेकिन पक्का नारियल आसानी से नही तोडा जा सकता उसी तरह हमारे मन को पक्के नारियल की तरह आत्मा में जोड के रखना है। हमारे मन को लोग क्या कहते है या क्या कहेंगे उससे प्रभावित नही होना चाहिए। मन (चित्त) हमारे अंकुश में हो तो आत्मा से एक कदम भी वह दूर नहीं होना चाहिए। मनुष्य को अपने जीवन में यही सिद्ध करना है। जीवन का यह एक लक्ष्य है। अपने सर की किंमत पर भी यह सिद्ध करना चाहिए। गुरु को (हमे) जो प्रहार करने है वह बाहरी अर्थात मोक्ष या कीसी चीज से नहीं लेकिन “अंदर

के मनुष्य” को मन से मारने के लिए है। हमे मनुष्य को बिना रस्सी से बांधना सिखाना है। हमे अपने चित्त में बसी दैवी शक्तियो से मनुष्य को आकर्षित करना है, जीससे वह रस्सी से भी मजबूत तरीके से हाथ-पग-मन से बाँधनेवाला है। यही जीवन का लक्ष और मानवजीवन का ईतिश्री (अंत) है।

75. मनुष्य का मन पाप का उद्गमस्थान है। वह अच्छे-बुरी सभी वजहो का मूल है। मानवमन ही ईन सभी चीजो की वजह है। मन न हो तो वाणी नही होती, मन न हो तो कुछ आयेगा नही और कुछ जा नही सकेगा। बिना मन कोई चीज प्राप्त नही होती। किसी व्यक्ति को ईंग्लिश बोलना आता है लेकिन लिखना नहीं होता तो हम वह ईंग्लिश पूर्णरुप से जानता है ऐसा नही कह सकते। उसे लिखना और पढना आता हो तो ही ईंग्लिश में पास होता है।

स्पष्टीकरणः मानवमन बंधनो की वजह है। मनुष्य का मन मुक्ति की वजह है। मानवमन अच्छे-बूरे गुण-अवगुणो, पाप-पुण्य सभी की वजह है। मनुष्य की वाणी भी मन से पैदा होती है ईसलिए मन का नाश होता है तो मनुष्य बोलने की शक्ति खो देता है। मनुष्य का मन ही आवागमन की वजह है। मन न हो तो कुछ भी सिद्ध नही होता। मन पूरे घटनाचक्र की वजह है। सृष्टि चित्तशक्ति के ब्रहम में से होता सृजन है। सृष्टि का मतलब ही मन का राग है। ईंग्लिश पूरी जानने के लिए लिखना-पढना दोनो ही आता हो वह जरुरी है। अगर पढना आता है लेकिन लिखना न आता हो तो उस व्यक्ति को ईंग्लिश की पूरी जानकारी है ऐसा नही कह सकते। उसी तरह ईश्वर का ज्ञानामृत का ज्ञान ईश्वर को जाने बिना आधा

माना जायेगा। ईश्वर को पूर्ण रुप से पहचानने के लिए मतलब साक्षात्कार के लिए ईश्वर के ज्ञानामृत का पूर्ण अनुभव करना चाहिए। यही पूर्णत्व है।

76. पांच साल के बच्चे को भी पता है की ईश्वर है लेकिन उसे यह मालूम नहीं की ईश्वर कहां है। सूर्य के दर्शन जगत में सब करते है लेकिन लाख में एक या दो लोग सूर्य के सामने देखने की हिंमत दिखाते है। ईस जगत में तीन चौथाई लोग पशु जैसे काम आनंद में लीन होते है। जो लोग मध्य स्थिति पर पहुंचे है ऐसे एक चौथाई से भी ककम है। सतकर्मो की संख्या ईस जगत में बहूत ही कम है। दुष्कर्मो की संख्या बहूत ज्यादा है।

स्पष्टीकरणः हमे ईश्वर के अस्तित्व का ज्ञान हो उतना ही पर्याप्त नहीं है। हमे उनका साक्षात्कार करना चाहिए और उसके परम सुख का अनुभव करना चाहिए। पांच साल के बच्चे को ईश्वर का अस्तित्व मालूम है लेकिन उसे यह पता नही है की वह कहां है और उसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है। ईश्वर मनुष्य के चिदाकाश (हार्टप्लेस) में है। वह निःस्वार्थ भक्ति से ही प्राप्त हो सकता है। सूर्य के दर्शन लाखो लोग करते है लेकिन लाखो लोगो में एक या दो लोग सूर्य के सामने देख सकते है। ईस जगत के तीन चौथाई लोग पशु समान कामानंद में लीन है। बाकी के एक चौथाई लोग निष्ठावान भक्त नहीं है। जगत में सतकर्मो की संख्या बहूत ही कम है, लेकिन दुष्कर्मो की संख्या ज्यादा है।

77. “स्वामी” वह है जीसने चित्त को सत में लगाया है। “उपाधि” मतलब शांति का पैड । हमे ईस शांति के पैड के नीचे आश्रय लेना चाहिए।

स्पष्टीकरणः सच्चे स्वामीने चित्त को सत के साथ जोडा है, जीसने जीव को शील के साथ जोडा है, वही मानस के साथ बुद्धि को जोडता है, वही सच्चा “स्वामी” है जीसका द्वैतभाव नष्ट हुआ है और उसने “ऐक्य” सिद्ध किया है। “उपाधि” मतलब शांति का पैड। व्यक्ति को स्वामी के संन्यासी बनने के लिए ईस शांति के पैड के नीचे आश्रय लेना चाहिए। स्वामी या संन्यासी को सर्वोत्तम शांति प्राप्त करनी चाहिए।

78. जो लोग हर दम ब्रह्म के साथ रहते है वे ब्रह्मचारी है। शूद्र भी ईस अर्थ से ब्रह्मचारी बन सकता है। सिर्फ दंड प्राप्त करने से या हाथ में भगवद् गीता पकडने से स्वामी नही बना जा सकता। जो भी मिले उसके साथ ईश्वर की चर्चा करने से या लाल रंग के वस्त्र पहनने से स्वामी नही बना जा सकता।

स्पष्टीकरणः ब्रह्म के साथ सदैव जूडा रहे वह ब्रह्मचारी है। ईस तरह से शूद्र भी ब्रह्मचारी बन सकता है। मनुष्य शूद्र हो तो भी शाश्वत तौर पर पूर्णब्रह्म मे जूडा हो तो वह सच्चा ब्राह्मिन ही कहा जाता है। सच्चा “स्वामी” वह है जीसने शाश्वत सत्य का साक्षात्कार किया है। हाथ में ब्रह्मचारी का दंड रखने से या भगवद् गीता का पुस्तक रखने से व्यक्ति संन्यासी नही बनता। जो भी मिले उसके साथ ईश्वर की चर्चा करने से या लाल रंग के वस्त्र पहनने से संन्यासी नही बना जा सकता। बाहरी अलंकार मनुष्य को स्वामी नहीं बनाते। सच्चा संन्यासी बनने के लिए आंतरशुद्धि पूर्णरुप से जरूरी है।

79. अग्नि में गर्म हो कर पीघला हआ सुवर्ण कांतिमय हो जाता है। उसी तरह आत्मशुद्धि से शुद्ध होने के लिए ईच्छाओ का नाश करना और

क्रोध को अंकुशित करना जरूरी है। मनुष्य का मन कभी स्थिर नही होता आत्मनिरीक्षण से मनुष्य को अंदरुनी गति करनी है।

स्पष्टीकरणः जिस तरह अग्नि से गर्म हुआ और पिघला हुआ सुवर्ण अदभूत कांति से प्रकाशित होता है उसी तरह मानवमन की अशुद्धियां दूर होने से मनुष्य का मन आत्मतेज से प्रकाशित होने लगता है। जब आत्मशुद्धि का स्तर सिद्ध होता है तब बाहरी विश्व व्यक्ति के आंतरविश्व में दिखता है। अखिल ब्रह्मांड उसमें और वह अखिल ब्रह्मांड में व्याप्त दिखेगा। व्यक्ति को अपने कट्टर दुश्मनो क्रोध, ईच्छा, ईर्ष्या, वासना और धनलालसा आदि का त्याग करना चाहिए। ईस स्थिति में ही वह ईश्वर के दर्शन कर सकेगा। मनुष्य को आत्मनिरीक्षण से अंदरुनी गति करनी है। मनुष्य का मन कदापि स्थिर होता नहीं है। मन की चंचलता आत्मा के साथ मन (चित्त) को एकाकार करने से नष्ट होती है।

80. ॐ शांति का स्तंभ है। ॐ शांति का स्वरुप है। ॐकार को वंदन। ॐ की अनुभूति चाहे कैसा भी जंगली मनुष्य हो उसकी जंगलियत पांच मिनट में शांत हो जाती है और वह सज्जन बन जाता है। बादल होते है तब तक सूर्य की किरनें दिखती नहीं है। जैसे ही बादल हटते है तब सूर्य के दर्शन होते है। ॐ की शक्ति से मनुष्य की बूराई दूर होने लगती है और आत्मा के दर्शन संभव होते है।

स्पष्टीकरणः मनुष्य में दुष्टता-जंगलियत उसके सच्चे स्वरुप को छोड देता है। वासनाओ की वजह से खुद सही में क्या है वह पहचान नही सकता। सूर्य की किरनें बादलो की वजह से दिखती नही है। उसी तरह वासना के बादलो की वजह से मनुष्य अपनी सही पहचान प्राप्त नही कर

सकता। वासना के बादल हट जाते है की तुरंत आत्मा का भव्य प्रकाश बाहर आता है। ॐ शांति का स्तंभ है। ॐ शांति का स्वरुप है। ॐ को नमस्कार !

81. आहार कितना लेना उसका कोई नियम नहीं है। ऐसा भी नही कहा जाता की आहार नही लेना चाहिए। योग्य आहार वही नियम है। आहार आधा एक चौथाई पानी और नींद के लिए ज्यादा चाहत नही रखनी चाहिए।

स्पष्टीकरणः ईश्वर का साक्षात्कार चाहते अभ्यासीओ के लिए योगाभ्यास के प्रारंभ में आहार के लिए कोई नियम नही है। उनको भूखा रहना ऐसा नही है। उनको आहार मर्यादा के साथ लेना है। योग्य आहार वही नियम है। अपने आध्यात्मिक अभ्यास को चोट न पहंचे ईसलिए पेट आधा भरना चाहिए। आधा पानी से भरना चाहिए। अगर संभव हो तो एक ही शर्त पूरी करनी है की नींद की चाहत ज्यादा नही रखनी चाहिए।

82. अग्नि में कुछ भी डाला जाये तो वह भस्म हो जाता है। अग्नि अच्छे-बूरे का फर्क नही करती। जो लोग कर्म करते है वे कुछ भी खा सकते है। जीन लोगो को कर्म क्या है उसका ज्ञान नही है उनको क्या करना है उसका ज्ञान नही होता। ऐसा व्यक्ति बदहझमी से परेशान होता है। जीनका पाचन ठीक है वह कुछ भी खाता है उसका पाचन हो जाता है। नींद आवश्यक है लेकिन वह संयमित मात्रा में होनी चाहिए। पेट भर कर न खाएं और आहार में नियमित रहें।

स्पष्टीकरणः कर्म वह है जो किसी भी तरह के स्वार्थ के बिना किया जाता है। हमे सच्चा करम क्या है वह मालूम हो तो कुछ भी कितना भी

खाते है तो उसका पाचन हो जाता है। जिस तरह अग्नि अच्छे-बूरे का फर्क जाने बिना सब स्वाहा करती है ठीक वैसे ही सच्चा कर्म क्या है वह हम जानते हो तो हम जो भी खा सकते है और पचा सकते है। हमारे बाहरी कर्म पर कोई नियंत्रण नही होता, लेकिन जब 'कर्म' क्या है वह हम सही तरीके से समझ नही सकते तब हमारे लिए सच्चा और जूठ्ठा, अच्छे-बूरे का विवेक नही रहता। एसी स्थिति में हमे हमारे बाहरी कर्म के लिए सतर्क रहना है। अगर पाचन अच्छा होगा तो मनुष्य कुछ भी कर सकता है। बाह्य कर्म अंदरुनी कर्म को प्रभावित नही करेगा। हमे योग्य नींद और आहार नियमित तौर पर लेने है।

83. गले और कान के सुवर्ण अलंकार या अंगुली पर पहनी हुई अंगूठी हो यह सब शरीर पर हो तब वे लूट जाये ऐसे भय की वजह होती है। धन भी डर की वजह होता है। मनुष्य के तन पर एक भी सुवर्ण अलंकार न हो तो उसे डर लगने की कोई वजह नही होती।

स्पष्टीकरणः गले में सुवर्ण की चेईन, कान में बालि या अंगुलि पर सुवर्ण की अंगूठी हो तो वे लूट जाने का डर रहता है। उसी तरह मनुष्य को भौतिक ईच्छाएं मन में जागृत हो तब मौत का भय रहता है। व्यक्ति जब ईच्छारहित दशा में होता है तब उसे कोई डर रखने की जरुरत नही है। अहं भय की वजह है। जब तक हम में अभिमान होता है तब तक हम भयमुक्त नही हो सकते।

84. डर मनुष्य के मन का सृजन है। आत्मद्रष्टि के लिए कोई भय नही होता। भय उन लोगो को लगता है, जीनके पास अंदरुनी द्रष्टि नही है। अंध व्यक्ति के लिए गाडी कैसी है उसका विवरण देना संभव नही है, उसी

तरह जीस व्यक्ति के गुरु नही होते उसका जगत में कोई स्थान नही होता।

स्पष्टीकरणः डर भ्रमणा की वजह है। हम माया से पर होते है तब शाश्वत सत्य क्या है वह समझ सकते है। तभी हमे कीसी प्रकार का डर नही होता। डर मानवमन का सृजन है। हम जब दैवी द्रष्टि से देखते है तब ईश्वर सर्वत्र दिखाई देते है। आंतरद्रष्टि जीसकी जागृत है उसके लिए डर का अस्तित्व नही होता। अंध व्यक्ति जीस तरह गाडी का विवरण नही दे सकता उसी तरह बिना गुरु के व्यक्ति का जगत में स्थान नहीं है। बिना गुरु के ज्ञान नही मिलता। ईसलिए सद्‌गुरु के चरनकमलों में दंडवत्त करना रही ईश्वर के साक्षात्कार के लिए बहुत ही आवश्यक है।

85. प्राण आत्मा का आहार है। आहारतृप्ति मतलब प्राणततृप्ति। हम पैसो को कुछ सोचे बिना पेटी में डालते है तो उसका संग्रह होता है लेकिन उसमे से थोडे थोडे खर्च करते है तो पैसे कम होने लगते है। जीवन संपति है और बुद्धि एक पेटी की तरह है। जीस तरह पेटी को कुछ नही चाहिए उसी तरह बुद्धि को कुछ नही चाहिए। मनुष्य जो खुद को पहचान सके ततो उसे किसी चीज की जरुरत नही रहती। हमे योगसाधना का अभ्यास करते रहना चाहिए। हम प्राण के ब्रह्मरंध्र अर्थात सुषुम्ना नाडी के अंतभीग ततक ले जाएं और वहां प्राण और शिव का मिलन हो तो हमे किसी चीज की आवश्यक्ता नही रहेगी। मानस का अधःपतन होता रोककर उसे 'मध्य' का राजमार्ग बताना वही आहार (प्राण) कहा जाता है।

स्पष्टीकरणः आहारतृप्ति मतलब प्राणतृप्ति। आहार मतलब प्राण। योगी प्राण से भरा होता है। जीस तरह हम धन का संग्रह लकडी की पेटी मे करें तो वह सग्रहीत रहता है लेकिन हम उसमे से थोडा थोडा खर्च करते

है तो वह घटता जाता है। उसी तरह प्राणशक्ति का योग्य उपयोग नही होता तो उसका व्यय होता रहता है। होशियार व्यक्ति जीस तरह पेटी में धन का संग्रह करता है वैसे ही हमे प्राणशक्ति का ज्यादा से ज्यादा योग्य उपयोग कर के उसे बचाए रखनी चाहिए। धनसंग्रह की पेटी को कोई स्वार्थ नही होता उसी तरह हम प्राण के ब्रह्मरंध्र की ओर ले जायेंगे और साधना से देव का शिव के साथ मिलन हो जाये तो पेटी की तरह हमे किसी टीज की जरुरत नही रहेगी। पूर्ण त्याग की भावना हमारे अंदर स्वयं पैदा होती है। आहार मतलब मानस को नीचे स्तर पर जाते रोकना और आध्यात्म का राजमार्ग जो की मध्यम मार्ग है उस पर ले जाना। भौतिक बातो में से मन को वापिस लाकर आत्मसाक्षात्कार के मार्ग पर ले जाना उसे ही आहार कहते है।

86. राम नाम का जप वही सच्चा आनंद है। वह आत्मानंद है। वह शाश्वत प्रकाश है। वित्तिय प्रकाश है। कुंडलिनी भव्यता का प्रकाश है। चिद् (मन) के अधिष्ठाता देव राम है। राम अर्थात आत्मा। पांच ईन्द्रिया, कर्मेन्द्रियां और पांच ज्ञानेन्द्रियां ऐसे कुल दसो ईन्द्रियों के अधिष्ठाता राम है। रावण मतलब हम में बसी असद् वृतियां। सीता मतलब हमारा चित्त, लक्ष्मण मतलब विचार अंकुश। कृष्ण मतलब आंतरमंथन। यह आंतरमंथन मतलब शाश्वत आत्मप्रकाश।

स्पष्टीकरणः राम नाम का निष्ठा से जप करने से हमारे अंदर सच्चे आनंद का आविर्भाव होता है ईसलिए राम के नाम को सत्य कहा जाता है। वही सच्चा आनंद-शाश्वत आत्मा आनंद-शाश्वत अंतरात्मानंद-कुंडलिनी जागरुकता की भव्यता का आनंद है। मन के मतलब चित्त के अधिष्ठाता देव राम है, जो उनका नियंत्रण करते है। राम ब्रह्मांड के महादेव है। रावण

मतलब अपने अंदर बसी असदवृतियां। जीस तरह रामने रावण का नाश किया उसी तरह हमे हमारे अंदर बसी असद्वृतियों का नाश करना है। सीता मतलब हमारा चित्त। जीस तरह सीताने राम के साथ विवाह किया था उसी तरह हमारे चित्त को हमारे अंतरात्मा (राम) के साथ विवाह करना होगा। सीता जीस तरह पूर्णरुप सेराममय हो गये थे उसी तरह चित्त को भी आत्मा में लीन होना होगा। लक्ष्मण मतलब विचारो का अंकुश। लक्ष्मण जीस तरह परछाई की तरह राम के साथ चलते थे उसी तरह हमारा विचारनियंत्रण आत्मा के साथ जूडा रहना चाहिए। कृष्ण मतलब अपने आप को पहचानना। (आत्मा) की अनुभूति मतलब कृष्ण। आत्मा की अनुभूति से शाश्वत आत्मप्रकाश प्रकट होता है।

87. सभी मानव है लेकिन मानव से ज्यादा अच्छी योनि कोई भी नही है। सभी प्राणीओ में मानवी श्रेष्ठ प्राणी है। मनुष्यो में वे श्रेष्ठ है, जो की 'सूक्ष्म' का हरदम चिंतन करते रहते है।

स्पष्टीकरणः मनुष्य ईश्वर के सृजनो में उत्कृष्ट सृजन है। मानवजन्म से अच्छा अन्य कोई जन्म नही है। प्राणीओ में मानव श्रेष्ठ है। मनुष्यो में वे श्रेष्ठ है जो की हरदम 'सूक्ष्म' (आत्मा) का चिंतन करते है। आत्मा का साक्षात्कार करनेवाले ही मनुष्यो में पुरुषोत्तम है।

88. "एकादशी" मतलब एक ही देव की भक्ति। ऐसे मनुष्य के लिए हर एक दिन एकादशी है। ऐसे मानव "मानव" कहे जाते है। जो ऐसी एकादशी करते है। मनुष्य को स्थुल चीजो का ज्यादा चिंतन नहीं करना चाहिए। उसे "सूक्ष्म" के ध्यान में ज्यादातर समय व्यतीत करना चाहिए।

स्पष्टीकरणः एकादशी मतलब आम राय के मुताबिक अनशन करना है लेकिन सही मायने में एकादशी मतलब अनशन नहीं लेकिन 'एक भक्ति' है। मनुष्य को मानव बनने के लिए हर एक दिन को एकादशी मानकर हर दिन सूक्ष्म आत्मा का निरंतर चिंतन करना चाहिए और सांसारिक नाशवंत चीजो का चिंतन कम करना चाहिए। मनुष्य को आत्मा के साक्षात्कार के लिए ईसी प्रकार का अभिगम रखना चाहिए।

89. मनुष्य किसी के मृतदेह को जलता हुआ देखे तब ईच्छारहित दशा में आ जाता है। यह स्थिति क्षणजीवी है। यही शरीर का रहस्य है। गुरुने जो सिखाई है वह ईच्छारहित दशा का त्याग नही करना चाहिए। गुरु ने जो सिखाई है वह ईच्छारहित दशा की स्थिति में से बंधनमुक्ति की स्थिति में पहुंचा जा सकता है। यह ईच्छारहित दशा ही श्रेष्ठ है। गुरु आनुषांगिक है। गुरु मिलना आनुषांगिक है। शिष्य को आत्ममार्ग पर जाने के लिए प्रेरित करना वह भी तृतिय (गौण) है। अभ्यास से खुद के लिए अनुभव प्राप्त करना और ईच्छारहित दशा में पहुंचना वही मानवजीवन का लक्ष्य है। जब मनुष्य खुद अभ्यास करे और खुद को अभ्यास से मिला ज्ञान दूसरो को दे तब उसे 'योगानंद ईच्छारहित' दशा कहते है। यह अविनाशी और अविभाज्य स्थिति है। शांति का वृक्ष है। यह शांति का वृक्ष जो हमारे चित्त में है उस पर चडना और उसमे समां जाना वही अविनाशी ईच्छारहित दशा है। क्रोधी और वासना के मूल का नाश करना वह अविनाशी ईच्छारहित दशा है। संसार में रहकर संसार के आनंद कम से कम भोगना और अंत में उनका त्याग करना वह दूसरी ईच्छारहित दशा है।

ईच्छारहित होना वह ईसी मनुष्यजीवन में बंधन से मुक्ति की दशा है।

स्पष्टीकरणः ईस जगत में अनेकविध ईच्छारहित दशाएं होती है। मनुष्य जब मृतशरीर को जलता हुआ देखता है तब उसे क्षणिक ईच्छारहित दशा जीसे स्मशान वैराग्य कहते है वह पैदा होता है। ईस प्रकार का वैराग्य कुछ काम का नही होता। गुरुने ज्ञान से जो ईच्छारहित दशा दी है उसका त्याग नही करना चाहिए। ईस ईच्छारहित दशा से मनुष्य बंधन में से मुक्ति प्राप्त करता है। पूर्ण ईच्छारहित दशा के बिना ईश्वर का साक्षात्कार संभव नही है। (आत्मा “स्व”) की अनुभूति के लिए ईच्छारहित होना सबसे पहले आवश्यक है। दूसरा गुरु का होना जरुरी है। तीसरा गुरु के साथ से ईश्वर मार्ग में प्रेरित होना वह है। लंबे अभ्यास के बाद स्वप्रयास से ईच्छारहित दशा की सिद्धि ही मनुष्य जीवन का लक्ष्य है। आत्मा की शोध के लिए ईच्छारहित होना सबसे ज्यादा जरूरी है। व्यक्ति खुद ईच्छारहित दशा प्राप्त करने के बाद दूसरो को भी अपना ज्ञान दे उसे योगानंद-ईच्छारहित दशा कहा जाता है। जब व्यक्ति ईच्छारहित दशा में पहुचता है तब उसने अविनाशी और अविभाज्य दशा सिद्ध की है ऐसा कहा जाता है। यह शांति का वृक्ष है। हमे शांतिवृक्ष पर चड जाना है और उसमे लीन हो जाना है। ईस वृक्ष पर चडने के बाद हमे शाश्वत ईच्छारहित दशा को प्राप्त करते है। वासना और क्रोध की जडें काट कर हमे ईच्छारहित दशा प्राप्त कर सकते है। संसार में रहकर संसार के आनंद कम से कम भोगकर और अंत में उसका त्याग करके हम अल्पगुणोवाली ईच्छारहित दशा सिद्ध कर सकते है। सच्ची ईच्छारहित दशा तो ईस जीवन में ही बंधनमुक्ति प्राप्त करना वही है।

90. बिना आत्मश्रद्धा का मनुष्य ईच्छारहित दशा प्राप्त नही कर सकता। उसी तरह मन को जीतनेवाले को ही वासना नही होती। उसी तरह

जीसे आत्मश्रद्धा न हो उनको कोई फल प्राप्त नही होता। हम रू. 5000/6000 खर्च करके हीरा खरीदते है वह एक भ्रमणा है। हमे हीरा खरीदने की ईच्छा ही न हो तो उसका मूल्य हमे मिट्टी से ज्यादा नही लगेगा।

स्पष्टीकरणः आत्मश्रद्धा एक ऐसा बीज है, जिसमें से आत्मविकास का वृक्ष पैदा होता है। श्रद्धाविहिन व्यक्ति ईच्छारहित दशा सिद्ध नही कर सकता। उसी तरह मन को जीतनेवाले व्यक्ति में वासनाएं नही होती। मन ही वासना की वजह है। बिना श्रद्धा के व्यक्ति को कोई फल प्राप्त नही होता। मनुष्य के चित्त की भ्रमणा है की रू. 5000/6000 खर्च कर के हीरा खरीदने जाता है लेकिन मनुष्य को चित्तवृति से हीरा खरीदने की ईच्छा न हो तो हीरे का मूल्य मिट्टी से ज्यादा नही है। उसी तरह ईश्वरप्राप्ति की अपेक्षा हो तो ईश्वर के परम सुख का कोई मूल्य भी रहता नही है और उसको प्राप्त करने के लिए चिंता भी नही रहती।

91. पांच तत्व नहीं है लेकिन चार तत्व है। पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु। आकाश तत्व नही है, वह एक और अविभाज्य है। पृथ्वी को विभाजीत किया गया है। वायु जल उपर है। आकाश वायु उपर है। सागर सीमा है। पृथ्वी शय्या है। आसमान आवास (घर) है। वायु उपर है। पृवी नीचे है। पृथ्वी रक्त रंगी (लाल) है। वायु सफेद है। पृथ्वी चार तत्वो की बनी है लेकिन गोल नही है। पृथ्वी त्रिभुजाकार है। चंद्र नाडी और सूर्य नाडी के बिच सुषुम्ना (तारा) नाडी है। पृथ्वी हमारे चहेरे जैसी है।

स्पष्टीकरणः तत्वो पांच नहीं है - पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु। आसमान तत्व नही है, वह एक और अविभाज्य है। पृथ्वी विभाजीत है। वायु जल उपर है। आसमान वायु उपर है। सागर पृथ्वी की सीमा है। पृथ्वी

शय्या है। आसमान घर (आवास) है। वायु उपर है, पृथ्वी नीचे है। पृथ्वी लाल रंग की है। वायु फेद रंग का है। चार तत्वो की बनी पृथ्वी गोल नही है। वह त्रिभूजाकार है। अग्निचक्र में पृथ्वीग्नि त्रिभुजाकार है। उसे भ्रुमध्या कहा जाता है। ईडा और पींगला के बिच की नाडी सुषुम्ना है। सुषुम्ना एक और अविभाज्य है। वह एक ब्रह्म की बैठक है।

92. वायु अविनाशी है। वह एक और अविभाज्य है। वह सार्वत्रिक है। जब दीये के उपर रखा शीशे के गोले को खुल्ला किया जाता है तो रोशनी फैलती है। हमे मिट्टी (पृथ्वी) लेते है तब अगर सोचे की वह "चीनी" है तो चीनी कल्पना ही है। हाथ में तो मिट्टी ही है अर्थात उसका स्वरुप बदलता नही। उसी तरह मनुष्य योगी बनता है तो या तो ज्ञानी बने तो शरीर का स्वभाव बदलता नही है। मानस ब्रह्म के साथ एक हो जाता है लेकिन शरीर नही। ज्ञानीओ भी तन की मर्यादाओ के अधिन है लेकिन उनके मानस संयमित किये होते है ईसलिए वे तन की स्थिति से वाकिफ नही होते। नीद्राधीन व्यक्ति को काला नाग काटे तो उसे मालूम नही होता और उसका प्रभाव भी उस पर पडता नही है। ईंग्लिश या कोई भी भाषा में लिखा गया पत्र 5-6 महिने के बच्चे को दिया जैये तो वह फेंक देता है। उसे उसमे लिखी बातो से कोई निस्बत नही है। 5/6 महिने का बच्चा हीरा और पत्थर का फर्क नही समझता। ऐसे बच्चो को तन का ज्ञान नही होता। वे सिर्फ आत्मा के विचारो में खोये होते है। बच्चो को द्धैत का कोई खयाल या विचार नही आता। जब उनके दीमाग का विकास होता है तब उनके प्राण सुषुम्ना नाडी में होते है।

स्पष्टीकरणः वायु सार्वत्रिक है, वह अविनाशी है। वह एक और अविभाज्य है। वह सर्व में है। जब फानुस के शीशे को ढक दिया जाये तब

कोई रोशनी मिलती नही है लेकिन फानुस के शीशे को खुल्ला किया जाता है तो उसकी ज्योत ज्यादा प्रकाशित होती है। मन (चित्त) वासनाओ की अशुद्धि से घिरा हुआ है, चित्त (मन) की अशुद्धिओ दूर की जाये तो मन (चित्त) की रोशनी उज्जवल होती है। हम हाथ में मिट्टी लेते है और मन से उसे चीनी माने तो वह सिर्फ कल्पना ही है लेकिन मिट्टी का स्वरुप बदलता नही है। उसी तरह आत्मा के साथ एकरुप हुए जीव की शारीरिक मर्यादाएं कायम रहती है। तन का अधूरापन कायम रहता है और उसका आत्मा पूर्णरुप से शुद्ध होता है। मिट्टी, मिट्टी रहती है और शरीर, शरीर रहता है। ईसलिए ही ज्ञानीलोग शरीर की मर्यादाओ के अधीन रहते है। सोये हुए मनुष्य को नाग काटता है तो नाग का काटना उसे मालूम नही होता उसी तरह ज्ञानी को उनके शरीर और उसकी अपूर्णता का प्रभाव नही होता। ईंग्लिश या किसी भी भाषा में लिखा गया पत्र पांच-छः महिने के बच्चे को दिया जाये तो उसे पत्र में लिखी बातो से कोई निस्बत नही है। उसी तरह ज्ञानी भी सांसारिक बातो पर लक्ष नही देते। ज्ञानी के लिए पत्थर और हीरे के बीच कोई फर्क नही होता। उनमें द्वैतभाव पूर्णरुप से नष्ट हो जाता है। बच्चो की तरह उनमें शरीर का ज्ञान नही होता। ज्ञानीओ के प्राण सुषुम्ना में रहता है और वे परब्रह्म का शाश्वत आनंद प्राप्त करते है।

93. बच्चा उम्र बढने के साथ जैसे जैसे सभी चीजो का ज्ञान प्राप्त करता रहता है वैसे वैसे पहले के ज्ञान का मूल्य रहता नही। मनुष्य सर्वज्ञ हो ईसलिए बच्चे जैसा हो जाना चाहिए। सच्चा ज्ञानी 6 महिने के बच्चे जैसा होता है। जीस तरह छोटे बच्चे को कुदरती हाजतो के बारे ज्ञान नही होता। उसे दो तरह की कुदरती हाजतो में कोई फर्क नही लगता। ज्ञानी भी छोटे बच्चे जैसा है, उसे चाहत या नारजगी नही होती। उनके लिए झहर या

अमृत दोनो ही समान होते है। वे दोनो में से कुछ भी मिले उसकी परवा नही करते। ज्ञानीओ को अन्न-वस्त्र या कीसी भी चीज की ईच्छा नही होती। वे आत्मा में मग्न बन जाते है।

स्पष्टीकरणः मनुष्य को आत्मशुद्धि के सर्वोच्च शिखर पर पहुंचना है तो उसे ज्ञान-अज्ञान सब भूल जाना चाहिए। उसे छः महिने के बच्चे जैसा बन जाना चाहिए। जिस तरह छः महिने का बच्चा जगत के बारे में जानता नही है। अज्ञान और निःस्पृही भाव छोटे बच्चे की प्राकृतिक अवस्था है उसके लिए कोई प्रयास नही करना पडता। सच्चा ज्ञानी छः महिने के बच्चे जैसा हैष जीस तरह छोटा बच्चा अपनी दो प्रकार की प्राकृतिक हाजतो के बिच का फर्क नही समझता उसी तरह ज्ञानी को अच्छे-बूरे के बिच का फर्क मालूम नही पडता। भोजन और झहर दोनो उसके लिए समान है। ज्ञानी को झहर देने का प्रयास करनेवाले को यह सत्य समझ लेना चाहिए। ज्ञानी जगत के द्वैतभाव और रागद्वैष से पर होता है। ज्ञानी को अच्छा भोजन या जगत की चीजो की ईच्छा नही होती। वह हरदम आत्मा की मस्ती में होता है और परब्रह्म में एकाकार रहकर परम सुख का आनंद ले रहा होता है।

94. हमारा दीमाग नारियल के फल की माफिक हौता है। नारियल में जीस तरह पानी और गर्भ (मावा) होता है उसी तरह हमारे दीमाग में चिदाकाश है। हृदयाकाश का कूआं है। हमे हृदयाकाश के कूएं का जल पीना है। धरती पर कूआं गाढना और उसका पानी पीना उसका कोई मतलब नही है।

स्पष्टीकरणः हमारे मस्तिष्क की तुलना नारियल से की जा सकती है। नारियल में जीस तरह पानी और गर्भ होता है उसी तरह हमारा दीमाग भी वैसा ही है। दीमाग चिदाकाश के बैठक है वह ह्रदयाकाश का कूआं है। मन में सहस्त्र पत्तीयोंवाला ज्ञानरूपी कमल है। सुषुम्ना-ब्रह्मरंध्र हमारे मस्तिष्क में है जब कुंडलिनी जागृत होती है और वह सहस्त्रार तक पहुंचती है तब हमे परमात्मा के परम सुख का अनुभव प्राप्त होता है। हमारा दीमाग चिदाकाश की बैठक है। उसकी तुलना ह्रदयाकाश के साथ भी की जाती है। हमे चिदाकाशरूपी कूएं में से आत्मा के आनंद का अमृत पीना चाहिए। पृथ्वी में कूआं गाढकर उसका पानी पीने का कोई मतलब नहीं।

95. हमारे हाथ में जो चीज है वह हम अन्य स्थान पर ढूंढे तो वह हमे नहीं मिलेगी। हमे उपर की मंझिल पर बैठकर दीया जलाएं, दरवाजा बंध करे तो उससे नीचे खडे व्यक्ति को दीपक की रोशनी नही दिखाई देगी। नाटक-बायोस्कोप सब हमारे चित्त में देखा जा सकता है। हमे एक ही स्थान पर बैठकर ईन सभी का निरीक्षण करना चाहिए। हर तरफ घूमने की आवश्यकता नहीं है। मद्रास शहर वहां पर जाकर भी देख सकते है और चिदाकाश में भी देख सकते है लेकिन हरबार एक ही स्थान से सब देखें वह बहुत ही आनंदप्रद है। हमे दीमाग के अंदर देखने के लिए कोशिश करनी चाहिए। हम जिसे ह्रदय कहते है वह नीचे मतलब सीने में नही लेकिन गले के उपर के स्थान में है। हर खाना पकाते है तब चूल्हे की ज्योत उपर की ओर जाती है उसी तरह हमारा ह्रदय भी उपर है। ईस ह्रदय में रोशनी है, अंधकार नहीं है। मनुष्य का सिर तन से अलग हो गया हो तब सिर्फ तन देखने से मनुष्य की पहचान नही हो सकती। मनुष्य का ह्रदय आख से देखता है। आंख मतलब आंतरिक चक्षु। जीसे ह्रदयाकाश

ककहा जाता है। वह चहेरा है और वह त्रिभूजाकार है। मनुष्य को उसका चहेरा देखकर पहचान सकते है। मनुष्य को अपना रहस्य समझना चाहिए। मनुष्य को खुद की पहचान करनी चाहिए।

स्पष्टीकरणः ईश्वर के साक्षात्कार के लिए हमे आत्मनिरीक्षण करना चाहिए। हम उन्हें अन्य स्थान पर नही ढूंढ सकते। हाथ में जो चीज है वह अन्य स्थान पर ढूंढे तो वह नही मिलेगी वैसे ही ह्रदयाकाश में बसे ईश्वर के हमे ह्रदयाकाश में ही ढूंढना पडता है। वह कहीं ओर नही मिलेगा। हम उपर की मंझिल पर बैठकर दीपक जलाएं और खिड़कीयां बंध करे देते है तो नीचे खडे व्यक्ति को रोशनी दिखाई नही देती। उसी तरह ज्ञान जो की हजारो सूर्य से भी ज्यादा प्रकाशित है वह वासना और सांसारिक बातो से घेरा जाता है। फलस्वरुप हमे ईश्वर के दर्शन नही होते। हमे आत्मविवेक से यह वासना और सांसारिक जीवन की लालचो के बादल बिखेर देने चाहिए और तभी हम ईश्वर का दर्शन कर पायेंगे। दरवाजा खोलने से दीपक की रोशनी नीचे खडे व्यक्ति को दिखाई देती है उसी तरह हमे अपने मन को शुद्ध करना चाहिए। जीससे ईश्वर के दर्शन हो सके। हमारे चित्त में ही नाटक, बायोस्कोप दिखाई देता है। उसके लिए बाहर जाने की कतई जरुरत नहीं है। कुंडलिनी को मूलाधार से जागत करके सहस्त्रार-दीमाग में बसे हजारो पत्तीयोंवाले कमल की ओर ले जाना है। ऐसा करने से खुद में ऐसी उच्चतम शक्तियां विकसित होती है, जीससे ब्रह्मांड चल रहा है। ऐसे व्यक्ति को ससब कुछ अपने ह्रदयाकाश में ही दिखाई देता है और वहीं पर वह सब देख सकता है, उसे कहीं भटकने की जरुरत नहीं। मद्रास शहर, वहां पर गये बिना अपने चिदाकाश में देख सकते है। हम खाना पकाते है तो चूल्हे की ज्योत उपर की ओर जाती है उसीतरह ह्रदय सही में सीने में

नही लेकिन गले के उपर है। वह अग्नि ज्योत जैसा है, जो की दीमाग में है। उसे चिदाकाश कहा जाता है। यह चिदाकाश की रोशनी ज्ञान की रोशनी है। उस के अंदर माया का अंधकार नही रहता। मनुष्य का सिरच्छेद हुआ हो तो सिर्फ तन से उसकी पहचान नही हो सकती। उसका मुख देखना जरूरी है। उसे देखने के लिए हृदय के चक्षुओं की आवश्यकता होती है। देखने की शक्ति है। वह हृदय से आंखो को मिलती है। आंखे हृदय के प्रतिनिधि की तरह काम करती है। आंतरिक चक्षुओ से देखना मनुष्य को सिखना चाहिए। हृदयाकाश जीसे मुख (चहेरा) कहा जाता है वह त्रिभूजाकार है, उसे भ्रमध्या कहा जाता है। भ्रूमध्या आज्ञाचक्र में है। जो ईडा और पींगला नाडीयों के बिच में है। भ्रुमध्या मतलब हृदयाकाश। जब कुंडलिनी जागृत हो और (त्रिभुजाकार) भ्रुमध्या में से पसार हो तब मनुष्य को परम सुख का आनंद मिलता है और तभी उसे सत-चित्त-आनंद क्या है वह समझ में आता है। मनुष्य को अपना रहस्य साक्षात्कार से जानना वह उसका पवित्र फर्ज़ है। मनुष्य को मानव बनने के लिए अपनेआप को पहचानना चाहिए।

96. मुक्ति व्यक्ति की भक्ति के स्वरुप के हिसाब से होती होती है। व्यक्ति जीतनी ज्यादा कोशिश करे उतना ही उसे अच्छा फल मिलता है। अगर प्रयास कम होता है तो परिणाम भी कम मिलता है।

स्पष्टीकरणः मुक्ति हमारी भक्ति का परिणाम है, जो उसके स्वरुप अनुसार होता है। ईश्वर पुर्णरुप से तटस्थ है। वह कीसी का पक्ष नही लेता और कीसी का तिरस्कार भी नही करता। उसके लिए सभी लोग समान है। वह जगत के द्वैतभाव से पर है। हम जैसे बोते है वैसा पाते है। मोक्ष के लिए हम कठिन प्रयास करें तो अवश्य ही लाभ प्राप्त होगा, जो लाभ हमारे

प्रयासो के अनुसार हौता है। अगर हम हमारी कोशिशें कम रहती है तो परिणाम भी कम मिलता है।

97. हम नन्हें बच्चे होते है तब हम हमारे मा-बाप को पहचानते नहीं है। हमारी उम्र जैसे बढती है वैसे हम हमारे मा-बाप को पहचानते है। मुर्गा जब दाने चुनता है तब अपने पांव से दाने अपनी ओर खींचता है उसी तरह मनुष्य की बुद्धि का विकास होता जाता है वैसे वैसे वह स्वार्थी बन जाता है। हररोझ मनुष्य पैदा होता है और मरता है लेकिन अपनी स्वार्थवृति का त्याग नही कर सकता। स्वार्थवृति तभी नष्ट होती है जब विभाज्य (जगत की) चीजें अविभाज्य में एकाकार हो जाये। चावल में से “आंबडा”, “हलवा” ऐसे अनेक व्यंजन बनते है लेकिन उसे “चावल” कहा नही जाता।

स्पष्टीकरणः हमारी विवेकबुद्धि का विकास न हुआ हो तब ईश्वर क्या है वह हम समझ नही पाते। छोटे बच्चे छोटे होते है तब अपने मा-बाप को पहचानते नही है। जैसे जैसे बुद्धि का विकास होता है वैसे वैसे ईश्वर की पहचान होने लगती है। मुर्गा दाने चुगता है तब अपने पांव से ससब अपनी ओर खींचता है वैसे बुद्धि का विकास होता जाता है वैसे वैसे मानवी स्वार्थी होने लगता है। मनुष्य हररोझ पैदा होता और मरते मनुष्यो को देखता है लेकिन अपनी स्वार्थवृति का त्याग कर नही सकता। मौत अपने सामने हररोझ घूरती है फिर भी वह खुद को अमर मानता है। यह स्वार्थववृति जब विभाज्य का अविभाज्य में मिलन होता है तब अद्रश्य होती है और जीव तब शिव के साथ एक बन जाता है। मनुष्य, सांसारिक वृतियों में खोया हुआ होता है लेकिन जब वह दैवीवृतियों में खो जाता तब एकदम अलग तरह का हो जाता है। चावल में से अनेकविध व्यंजन जैसे

की “आंबडा”, “हलवा” बनाये जाते है। हम उसे चावल नही कहते है। ईसी तरह ईश्वर में एकाकार हो जानेवाले मनुष्य को वही शरीर होने के बावजूद बदली हुई वृतियों की वजह से उसे अवधूत कहा जाता है। बाद में वह मनुष्य नही रहता।

98. पानी के बिना घडा कुछ भी काम का नही। भक्ति वह पानी है और बुद्धि घडा है। सूक्ष्म भक्ति के बिना मनुष्य मनुष्य नही है। मनुष्य रस्सी पे नृत्य करता हेहै तब वह शक्ति की वजह से नही लेकिन वह तो एक युक्ति होती है। उसे कलाबाज कहा जाता है। (कलाबाज) युक्तिबाज का मार्ग नीचे की ओर होता है लेकिन शक्ति मध्यमार्ग का अनुसरण करता है। युक्तियां शरीर की होती है। शक्ति आत्मिक होती है। युक्तियां सक्ति के आगे शक्तिविहिन हो जाती है।

स्पष्टीकरणः बिना भक्तिवाला मनुष्य पानी बिना घडे जैसा है, जीसका कोई उपयोग नही है। प्यासे मनुष्य को जल से बरे घडे का उपयोग होता है उसी तरह बिना भक्ति का मनुष्य जगत को कुछ खास उपयोगी नही होता। बुद्धि घडा है और भक्ति उसके लिए पानी है। बुद्धि वह शक्ति के विकास का साधन है, जीसे सूक्ष्म बक्ति नही होती वह मनुष्य कहने लायक नही है। जब मनुष्य रस्सी पे नृत्य करता है तब वह शक्ति (शील) का कृत्य नही है लेकिन कलाबाझ की बाहरी प्रवृति है। (कलाबाझ) नट का नृत्य निम्न प्रकार की प्रवृति है। शक्ति का मार्ग मध्यमार्ग है। नट का नृत्य नाशवंत है लेकिन शक्ति अविनाशी है। नट का नृत्य शरीर की प्रवृति है लेकिन शक्ति आत्मा की होती है। शक्ति की अग्नि के सामने नट का नृत्य कौशल शक्तिहीन हो जाता है। ऐसी युक्तियों की कला आत्मा की शक्ति से बहुत नीचे होती है।

99. जगत में काजू के सिवा सभी फलों के बीज भूमि में होते है। काजू के बीज वृक्ष पर होते है। हमारा मन काजू के बीज जैसा होता है, जिसे संसार से पर रहना है। हमे अपने लिए सक्कर रखकर दूसरो को मिट्टी नही देनी है। जो राजमार्ग पर चलता हो उस व्यक्ति को अन्य लोगो को जंगल में भटकने नही देना है। मनुष्य का यह पवित्र फर्झ है की मार्ग भूलनेवाले सभी को राजमार्ग पर लाये। यह तुरंत ही करना है। भविष्य का हम विश्वास नही कर सकते।

स्पष्टीकरणः जगत के अधिकतम सभी फलो के बीज भूमि में होते है लेकिन काजू का फल नित्य ही बाहर होता है। हम संसार में रहे लेकिन संसार से पर रहना है। हमे संसार में रहना है लेकिन उसका बंधन हमे नही होना चाहिए। हमने जो प्राप्त किया है वह ज्ञान दूसरो को देना चाहिए। हम अपने लिए सक्कर और दूसरो के लिए मिट्टी नही रख सकते। हम खुद राजमार्ग पर चले और दूसरो को जगल की भूलभूलैया में भटकने दे ऐसे नही हो सकता। हम जीस तरह आत्मा के राजमार्ग पर चल कर परमसुख प्राप्त करते है उसी तरह अन्य को भी वही आनंद का लाभ मिले उसके लिए मदद करना हमारा फर्ज है। यह फर्ज हमे तुरंत ही निभाना है क्योंकी कोई मनुष्य अपने भविष्य के लिए निश्चिंत नही हो सकता।

100. जब रेलगाडी छोडती है तब नजदीक के स्टेशन पर वायरलेस (तार) से सूचित किया जाता है और घंटी बजाई जाती है। ईस प्रकार के घंटनाद को बिंदुनाद कहा जाता है। हमे कुएं में पत्थर फेंकते है तब जो आवाझ होती है वह बिंदुनाद है। ऐसी ही आवाझ हमारे मस्तक में होती है।

स्पष्टीकरणः जब ट्रेन नजदिक के स्टेशन से आती है तब उसकी सुचना वायरलेस से दि जाती है और घंटनाद किया जाता है। कूए में फेंका

हुआ पत्थर पानी में पहुंचते है वह नाद बिंदुनाद है उसी तरह प्राणायम से योगाभ्यास करनेवाले व्यक्ति को अनेक तरह की आवाझें सुनाई देती है, यह आवाझ हमारी आंतरिक व्यवस्था की शुद्धि का प्रमाण है। उसका कोई और महत्व नही है।

101. जब बच्चा प्रथम कक्षा में उतीर्ण हो जाता है तब दूसरी कक्षा में जाने के बाद प्रथम कक्षा की पुस्तकें उसे कुछ काम के नही है। जब मनुष्य गहरी नींद में होता है तब उसे सितारें, चंद्र या सूर्य कुछ दिखाई नही देता। उस वक्त उसका दीमाग शून्य दशा में होता है। नींद एक सूक्ष्म स्थिति है। वह स्थुल स्थिति नही है। गहरी नींद में हम शरीर की ओर सचेत नही रह सकते। हम सिर्फ आत्मा के लिए सचेत होते है। हमे तभी गहरी नींद आती है जब प्राण स्थिरता से शरीर में होता है। जब अभिमान पूर्णरुप से नष्ट हो जाता है तब सब प्रतिबिंब जैसा लगता है। मन की भ्रमणा वह निरंतर-स्थायी नही है। वह शिव नही है।

स्पष्टीकरणः प्रथम कक्षा में उतीर्ण हुए छात्र को दूसरी कक्षा में उन पुस्तकें काम की नही होती उसी तरह आध्यात्मिक बातों में पूर्णत्व सिद्ध करनेवाले को भौतिक बातो मे फिर से वापिस जाने की जरुरत नही होती। नींद सोये व्यक्ति कको सितारे, चंद्र और सूर्य दिखते नहीं है। उस वक्त उसे किसी बात का ज्ञान नही होता। मन शून्य दशा में रहता है। नींद सूक्ष्म स्थिति है। नींद स्थुल स्थिति नही है। गहरी नींद में हमे आत्मा की सभानता होती है। प्राण जब स्थिर दशा में होते है तब हमे गहरी नींद आती है। ज्ञानी को जगत में जीवन शाश्वत नींद जैसा लगता है। वह शरीर से सभान नही होता। अभिमान पूर्णररुप से नष्ट हो जाने के बाद सब प्रतिबिंब जैसा लगता है, वह वास्तविक्ता नही है। ईश्वर एक ही सत्य है।

दूसरी सभी चीजें नष्ट हो सकती है। मन की भ्रमणा की वह शरीर है और यह की आत्मा स्थायी नहीं है। यह क्षणजीवी है। मन की ईन भ्रमणाएं “शिव” नहीं है। शिव अविनाशी है और अद्वितिय है।

102. विधि स्नातक व्यक्ति को महाविद्यालय (युनिवर्सिटी) की ओर से खास तरह के अंगगवस्त्र दिये जाते है, जीसके चार मुख होते है। जो की दो हाथ के लिए होते है और दो पांवो के लिए होते है। उसी तरह सत और चित एक हो जाता है तब हमें आनंद मिलता है वह ब्रह्मानंद, परमानंद , सत-चित्त-आनंद (सच्चिदानंद) और योगानंद होता है। जब हम सांसारिक जीवन के आनंद का त्याग करते है तब दैवी (आत्मिक) आनंद मिलता है। जीव का सत्य समझते है तब हमें आनंद प्राप्त होता है।

स्पष्टीकरणः विधि स्नातक व्यक्ति को युनिवर्सिटी की ओर से खास तरह का अंगवस्त्र मिलता है, जीससे सिर से पांव तक तन ढंक जाता है, उसे चार बाजु होती है। दो हाथ के लिए और दो पांव के लिए। युनिवर्सिटी की ओर से मिला अंगवस्त्र उसकी विशेष पहचान बनता है। उसी तरह सत-चित्त दोनो साथ मिलते है, जीव और शिव साथ मिले, मन-बुद्धि साथ मिले तब हमें आनंद की प्राप्ति होती है। आनंद अर्थात ब्रह्मानंद, परमानंद, श्री सच्चिदानंद, श्री योगानंद। जो सुख हमे मिलता है वह मन-बुद्धि, जीव-शिव, सूक्ष्म-स्थुल के एकात्मपन का होता है। भौतिक आनंद का त्याग करेंगे तभी हमें दैवी आनंद प्राप्त हो सकता है ये दोनो एकदूसरे के विरोधी है। वें दिन और रात की तरह है। जब हम जीव के सत्य का अनुभव करते है तब आनंद का अनुभव करते है। वह आनंद शाश्वत आनंद होता है।

103. गुरु के बिना ज्ञान संभव नही है और गुरु के बिना सत्य की अनुभूति नही होती। ईस जगत में बिना कारण परिणाम नही होता। जब जगत में अंधकार प्रकाश की तरह दिखता है तब उसे ज्ञान कहा जाता है। प्रकाश वह ज्ञान है। दंभी बनकर कीर्ति के पीछो मत भागो।

स्पष्टीकरणः सर्वोत्तम शाश्वत सत्य की अनुभूति के लिए गुरु अनिवार्य है। गुरु के बिना सही ज्ञान प्राप्त नही हो सकता। पुस्तको से ज्ञान प्राप्त नही होता। सत्य एक सकारात्मक सत्य जो की पुस्तक के ज्ञान से भी उपर है। सत्य का ज्ञान सिर्फ सच्चे गुरु दे सकते है। ईस जगत में बिना वजह परिणाम संभव नही। आध्यात्मिक गुरु से दिया हुआ व्यावहारिक ज्ञान ही शिष्य को आत्मा की पहचान कराता है। सत्य क्या है? अंधकार में प्रकाश के दर्शन, अज्ञानता में ज्ञान के दर्शन, द्वैत में एक का दर्शन वह सत्य है। असत्य में सत्य का आविर्भाव तब होता हौ जब द्वैत का भाव नष्ट होता है। अंधकार वह अज्ञानता है और प्रकाश वह ज्ञान है। हमे कोमल फुल के पीछे छूपे हुए काले नाग की तरह नही बनना है। हमे कर्म, वचन और विचार से शुद्ध होना है।

104. कहे उतना ही जीतना कर रहे हौ और जो करो वही कहो।

स्पष्टीकरणः आप जीतने हो उससे ज्यादा महान दिखने की कोशिश न करें। अंदरुनी और बाहरी तौर पर शुद्ध रहे। आपके वचन और कर्मो में फर्क पैदा न करें। दोनो को एक ही रखो। कहें वही जो कर रहे हौ और करें वही जो आप कह रहे हो।

105. मृत्यु से पहले जंगल का रास्ता छोडकर राजमार्ग पर चले। जब मृत्युशय्या पर हो तब नर्क की यातनाओ की अनुभूति होती है। प्राण का अवरोध वात-पित्त-कफ से होता है।

स्पष्टीकरणः सांसारिक दीवन के आनंद में डूबे मत रहो। जगत आपको सच्चा सुख नही दे सकता। सांसारिक जीवन का जंगल मार्ग त्याग कर आत्मा के राजमार्ग पर चलें। मृत्युशय्या पर नर्क की यातनाओं का अनुभव होगा। प्राण को शरीरतत्व के वात-पित्त और कफ से अवरोध पैदा होगा। अभी के अभी योग का अभ्यास करें। जीससे शरीर ये शरीरतत्व के अवरोधो वात, पित्त और कफ से मुक्त हो जाये। योगाभ्यास से शरीर शुद्ध हो जायेगा तो अर्थात वात-पित्त-कफ से मुक्त होगा तो खास वेदना के बिना अंतकाल आयेगा। योग से शरीर का अंदरुनी मार्ग साफ रहता है।

106. आई.सी.एस. (भारतीय नागरिक सेवा) में उतीर्ण होनेवाले व्यक्ति की सेवा के लिए अनेक लोग उपस्थित होते है लेकिन दैवी मार्ग पर चलनेवाले व्यक्ति से कोई पूछता नहीं है। मुक्ति का आनंद अवर्णनीय है और वह क्या है वह कोई नही समझा सकता। सृष्टि के प्रारंभ से शिव के द्वारा सिखाया गया धर्म सिर्फ एक ही है।

स्पष्टीकरणः लोग जगत के आनंदो में मस्त रहते है और अमीरो एवं शक्तिवान लोगो के पास से कुछ ना कुछ लाब प्राप्त करने की कोशिश करते है। ईसलिए उनकी सेवा करते है। उनके आत्मिक सुख की परवा नही होती। परमतत्व की ओर ले जानेवाले रास्ते पर जाने के लिए कोई ईस जगत में पूछता भी नही है। जगत के भौतिक आनंद में मग्न और मस्त व्यक्तिओं को आध्यात्मिक बातों के लिए पूज्यभाव हौता है लेकिन मुक्ति के परमसुख का आनद प्राप्त कर चुका- व्यक्ति उसका विवरण नही कर

सकता या उसका स्वाद कैसा है वह नही कह सकता। वह वर्णनातीत है उसके जैसा कोई आनंद जगत में नही है। वह सर्वोत्तम है। शिव ने सिखाया हुआ धर्म सृष्टि के प्रारंभ से एक और एक ही है।

107. शिव (ईश्वर) के द्वारा दीया गया संघर्ष, दुःख आदि सही में दुःख नही है वह हमारे मन की भ्रमणा है। जब हम पृथ्वी पर आयें तब भी हमे कुछ समस्या हुई थी। अंतकाल में भी होती है। मनुष्य माता के गर्भ से बाहर आता है तब आंसु आते है।

स्पष्टीकरणः ईश्वर हमे मुश्किलें और दुःख देते है, जीसकी वजह से हमे जगत के आनंद मिथ्या है वह समझ में आता है। ईश्वर की ओर से दी जाती मुश्किलें और दुःख हकिकत में दुःख नहीं है। हमे उससे काफि लाभ होता है। क्योंकी हमारी मानसिक क्षितिजो का विकास होता है। ईन मुश्किलें और दुःखो की वजह से ईश्वर के प्रति हमारी श्रद्धा बढती है। हमे अनुभव होता है की हम हमारा भाग्य बनाने में कितने असमर्थ है। ईश्वर की ओर से दि जाती मुश्किलें और दुःख हमे नुकसान करते है ऐसा समझना एक भ्रमणा है। जन्म के वक्त हमे मुश्किल हुई थी, अंतकाल में भी मुश्किलें होती है। माता के गर्भ से तब भी आंखे पीडा की वजह से आंसुओ से भर जाती है। यह प्राकृतिक क्रम जन्म-मृत्यु के साथ जुडा है जो सूचित करता है की जगत में दुःख के सिवा कुछ नही है। ईस जगत में जो भी सुख दिखाई देता है वह चीनी से आवरित कडवी गोली की तरह है, जीसका अंदरुनी स्वाद कडवा ही होता है। ईसलिए मनुष्य का परम पवित्र फर्ज है की अपने हीत में ही ईश्वर के परम सुख का अनुभव करें जो की शाश्वत है।

108. सर्व शिव है। न्याय और अन्याय दोनो शिव है। हे मन! अन्याय का त्याग कर के न्याय मे एकाकार हो जा!

स्पष्टीकरणः ईस जगत शिवमय है। शिव सर्वत्र है उसके बिना जगत संभव नही। न्याय और अन्याय दोनो का उदभव उसमें से होता है। होशियार व्यक्ति जीस तरह राजमार्ग पर चलता है और कंटीले मार्ग का त्याग करता है उसी तरह होशियार मनुष्य न्याय का राजमार्ग चुनता है और अन्याय के कंटिले मार्ग का त्याग करता है।

109. "ओमकार" एक और अद्बितिय है। ओमकार सर्जन और विसर्जन दोनो की वजह है। ओमकार "मानस" को नष्ट करता है। ओमककार हमारे अंदर बसा हुआ आत्मा है। ओमकार अविभाज्य है। विबाज्य चीज कभी अविभाज्य बन नही सकती। शिवने आदिकाल से एक ही धर्म सिखाया है। कमरे का दरवाजा बंद करके अंदर बैठे तो बाहर का कुछ दिखाई नही देता लेकिन कमरा बंध हो तभी जीव का शिव के साथ वार्तालाप शुरु होता है। कमरे के दरवाजे खुल्ले हो तो जीव शिव से अलग हो जाता है।

स्पष्टीकरणः उच्चतम सिद्धि के स्तर पर पहुंचा व्यक्ति ओमकार के तेज से प्रकाशित होता है उसके लिए सब ओमकारमय होता है। ऐसा व्यक्ति के लिए ओमकार सर्जन और विसर्जन की वजह होता है। ओमकार एक और अद्बितिय है। ओमकार चित्तवृति का निरोध करता है। ओमकार वास्तव में मनुष्य का आत्मा है। आदिकाल से शिव ने एक रही धर्म सिखाया है। धर्म दो नही है। सभी धर्म का मूल सारांश एक है। कमरे का दरवाजा बंध करके बैठे तो बाहरी विश्व का कुछ नही दिखता। ईन्द्रियो के दरवाजा खुल्ले हौ तो जीव शिव से अलग हो जाता है। ऐसी स्थिति में आत्मा के साथ व्यक्ति का सहवास सभव नही होता क्योंकी हमारा ध्यान

सांसारिक जीवन की चीजो में बट जाता है। जब हमारा ध्यान आत्मा में केन्द्रित हो जाता है तब आत्मा के दर्शन होता है। ईसे सिद्ध करने के लिए हमारी सभी ईन्द्रियों को आत्मा से जोडनी चाहिए, सांसारिक जीवन की क्षुल्लक चीजो में नही।

110. ओमकार अविभाज्य है। ओमकार सृजन है। ओमकार माया है। ओमकार क्रिया, चित्त, चेतना, चित्त की चेतना है। चित्त है वह ईच्छा की वजह है।

स्पष्टीकरणः ज्ञानी को ओमकार के एकत्व और अद्धितियता का संपुर्ण ज्ञान होता है। "ओमकार" को वह माया, क्रिया, मानस, चेतना, प्रज्ञा के प्रकाश के रुप में पहचानता है। उसके हिसाब से सब है। ईच्छा की मूल वजह है। चित्तवृति का निरोध होता है तो ईच्छाएं नष्ट होती है। ईसलिए चित्त को आत्मा में एकाकार कर देना चाहिए। ईच्छारहित दशा तभी सिद्ध हो सकती है।

111. "सत" एक और अविभाज्य है। वह एक सूक्ष्म है, जो की अविनाशी है। चित्त चंचल है।

स्पष्टीकरणः सत्य अविभाज्य है। सत सूक्ष्म है, जो अविनाशी है। मन चंचल है। वह स्थिर नहीं है। मनुष्य का मन एक ध्यान हो जाता है तब दैवी अनुभूति होती है। चित्त को एक ध्यान करने के लिए योगी अविरत प्रयास करते है। उनके जीवन जंगलो और गुफा में व्यतीत करते है।

112. जब सत का चित्त के साथ मिलन होता है तब आनंद पैदा होता है। यह आनंद सतचितानंद है और नित्यानंद है, वह परमानंद है।

जीव का परमात्मा के साथ मिलन अर्थात आनंद, योगानंद, परमानंद, सतचितानंद और ब्रह्मानंद है।

स्पष्टीकरणः आनंद, सतचिदानंद, श्री नित्यानंद, श्री परमानंद की सिद्धि तब होती है जब सत और चित्त का मिलन होता है, जीव परमात्मा के साथ मिल जाता है। आनंद, योगानंद, सत चित का मिलन होता है, जीव परमात्मा के साथ मिल जाता है। आनंद, योगानंद, सत चित्त आनंद, ब्रह्मानंद वह कुछ नही लेकिन जीव का परमात्मा के साथ मिलन है।

113. हमे वह ईश्वर के दर्शन करने है, जो चिदाकाश में है। हां, हमे अवश्य दर्शन करना है। हमे कृष्ण जो की नित्यानंद-परमसुख के दर्शन करना है। पत्थर की प्रतिमाओ को ईश्वर समझना वह एक भ्रमणा है। शिव जो मौत की पीडा दे तो वह पीडा नही है। दुःख मनुष्य के मन की भ्रमणा है। हम चित्त में बसे ईश्वर का स्तुति गान करें। हमे परब्रहम जो की शाश्वत आनंद का रहस्य है उसका अनुबव करना है। उसे हृदयाकाश में ढूंढे और उसे आंतरचक्षुओ से देखे। अधोगामी मार्गो का त्याग करके महत्वपूर्ण मध्यमार्ग पर आयें। अधोगामी मार्ग पर वे चलते है जो अपने बाहरी शरीर को सजाते है लेकिन वे ईश्वर के रहस्यो क नही समझ सकते।

स्पष्टीकरणः ईश्वर हमारे अंदर है लेकिन बाहरी जगत में नहीं है। हमे चिदाकाश मे बसे परमात्मा के दर्शन करने है। कृष्ण शाश्वत आनंद के देव है। उसके दर्शन करने है। कृष्ण ओर कुछ नही लेकिन हमारा आत्मा है। हमे आत्मसुख की अनुभूति करनी होगी। पत्थर की प्रतिमाओं को ईश्वर मानना भ्रम है। शिव की ओर से दिया जाता मौत का दुःख हकिकत में दुःख नही है । शिव कुछ भी उदेश के बना कुछ भी नही करते। जब हमे आत्मसुख की अनुभूति होती है तब हमे उसके आगे सांसारिक जीवन के

आनंद भ्रम लगते है। पूरे विश्व जो की दुःखो से भरा है वह भ्रम लगता है। ईश्वर सत्य है उसके सिवा सब असत्य है। हमे हमारे अंदर बसे ईश्वर की अनुभूति करनी है और हमारे ह्रदय में उनकी स्तुति करनी है। हमारे चित्त में उनकी स्तुति करनी है। हमे परब्रह्म जो की शाश्वत आनंद का स्त्रोत है उसका रहस्य समझना है। हमे उन्हें ह्रदयाकाश में ढूंढना है। हमे उन्हें आंतरद्रष्टि से देखना है, बाहरी द्रष्टि से नहीं। जो लोग सूक्ष्म बुद्धि रखते है उसे ही उनके दर्शन होते है। हमारी स्थुल ईन्द्रियां उनका दर्शन नही कर सकती। आत्मा के परमसुख का आत्मा की अनुभूति से आनंद पाना है। शरीर और उसको बाहर से सजाने में मग्न रहते लोग ईश्वर के रहस्यो को समझ नही सकते और अधोगामी मार्ग पर चलते है ईसलिए पूरे जीवन में मोक्ष प्राप्त नही कर सकते।

114. ईस जगत में कोई चित्तभंग (पागल - मन पर अंकुशविहिन) नही है।

स्पष्टीकरणः होशियार और पागल या मूर्ख मनुष्य में कुछ फर्क नही है। शुरु में सब समझदार होते है। अभी के जो भेद है वे क्षणिक है। एक दिन या दूसरे दिन अर्थात आज या कल सब लोग मुक्ति के राजमार्ग पर जायेंगे और जगत का घना (जंगली) मार्ग छोड देंगे।

115. स्थुल आनंद का त्याग करें और सूक्ष्म आनंद को प्राप्त करें। भौतिक नींद का त्याग करें और सूक्ष्म नींद का अनुभव करें। यह सूक्ष्म नींद सूक्ष्म स्थिति से अनुभूति में ही मिलती है। मन की भ्रमणाओ को जलाकर राख कर दिजीये।

स्पष्टीकरणः हमे ईश्वर के परमसुख का आनंद लेना चाहिए और जगत के नाशवंत आनंद का त्याग करना चाहिए। हमे भौतिक नींद का त्याग करके आंतरिक समाधि (सूक्ष्म नींद) का आनंद लेना चाहिए। शाश्वत निद्रा का सदैव आनंद लेना चाहिए। समाधि का परमसुख सूक्ष्म स्थिति में ही मिलता है। हमे मन की भ्रमणाओं का जलाकर राख कर देनी चाहिए। मन भ्रमणारहित और शंका से पर होना चाहिए।

116. जीसने यज्ञोपवीत धारण की थी। अर्थात उपनयन संस्कार किये है वह ब्राह्मण है। हमारे अंदर "उपधि" क्या है उसका ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। ईच्छारहित होना मतलब आत्मा का नीरीक्षण करना। ईच्छारहित द्रष्टि से जगत को देखना। भेद, बुद्धि का त्याग करना। "मैं" "तुम" के विचारो को जला दो। निःशंकरुप से उसे जला दो।

स्पष्टीकरणः जीसने उपनयन संस्कार ग्रहण किया है वह सच्चा ब्राह्मण है। सर्व में ईश्वर के दर्शन करना उसे ही उपनयन कहा जाता है। हमने एक द्रढ मान्यता खडी करनी है की ईश्वर सत्य है और दूसरा सब कुछ असत्य है। ईच्छारहित होकर हमे चित्त में आत्मा की शोध करनी चाहिए तो हमें उसे ढूंढ (अनुभव कर) सके। हमें ईच्छारहित द्रष्टि से देखना चाहिए। सांसारिक जीवन की बातों में ध्यान व्यतीत नही कर देना चाहिए। भेद द्रष्टि का त्याग करना चाहिए। द्वैतभाव से उपर उठना है। मैं और तुम के भेद जलाकर सर्वोत्तम की सिद्धि मिलती है तभी हम ईश्वर के साथ एकाकार हो सकते है।

117. आदिकाल से शुरु में सिर्फ एक शिव द्वारा प्रचारित एक ही धर्म था। शुरु में पुरुष और स्त्रीयों के बीच कोई भैद नही था। यह भेद सिर्फ

स्थुल रुप में था। सूक्ष्म स्तरे सब एक ही था। सूक्ष्म को कोई गुण नहीं होते है। सूक्ष्म और शाश्वत आनंद मिलता है। सुनना और देखना एक मानसिक भ्रमणा है। द्रश्य विश्व नाशवंत है।

स्पष्टीकरणः शुरु में शिव द्वारा प्रस्थापित और प्रचारित एक ही धर्म था। समय समय पर उसमें से बहुत कुछ निकला। शुरु में पुरुष और स्त्री जैसे कोई भेद नहीं थे। यह भेद स्थुल स्वरुप थे। प्रकृति एक स्त्री का स्वरुप है और पुरुष वह आदि अंतविहिन पुरुषोत्तम भगवान है। सूक्ष्म के कोई गुण नही होते। वह जाति या लिंग से पर है। पुरुष (आदमी) अपने अंदरुनी गुणो की वजह से स्त्री हो सकता है और स्त्री अंदरुनी गुणो की वजह से पुरुष के जैसी हो सकती है। शरीर से दोनो की जाति तय नही हो सकती। दोनो के बीच का अंदरुनी स्वभाव बहुत ही महत्वपूर्ण है। सूक्ष्म सिर्फ शाश्वत आनंद का विचार करता है। सुनना और देखना वह मानसिक भ्रमणा है। हमे देखे और सुने वह क्षणजीवी है, जो अद्रश्य है वह अविनाशी है।

118. हरि वह महादेव नहीं है। शिव महादेव है। जीसे “हरि” कहते है वह भ्रमणा है। हमे परछाईं से भ्रमित नही होना है। माया वह भ्रमणा है। सूक्ष्म और स्थुल के बीच का भेद खडा करना वह भ्रमणा ही है। स्थूल और सूक्ष्म और स्थूल से खडी होती भ्रमणा एकसमान है। स्थूल चीजो के द्वारा खडी होती भ्रमणा बहुआयामी होती है। यह चीज उस चीज से अलग है ऐसा कहना ही भ्रमणा है। यह भ्रमणा मानवमन खडी करती है। ह्रद्याकाश में द्रष्टि डालें तो शाश्वत आनंद की भ्रमणा होगी। शाश्वत आत्मा के ह्रदयाकाश मे देखे। अवश्य देखें और कहें की क्या अनुभव होता है। सिर्फ कानो कान सुनी बाते जीसे लोकभाषा में “अफवा” कहते है वह वास्तविक्ता

नहीं है। अफवा या कानो कान सुनी हुई चीजें आनंद नहीं है। निरंतर अनुभव से जो अनुभूति होती है वही शाश्वत आनंद है।

स्पष्टीकरणः जीसे हरि कहा जाता है वह भ्रमणा है। हरि मतलब माया। माया वह देव नहीं है। हमे माया के अधिन नही होना है। शिव ही महादेव है। शिव मतलब एक अविभाज्य, अद्धितिय, सार्वत्रिक, वही ईश्वर है। ज्ञानी शब्दो के भेद भूल जाते है। वे अपनी मस्ती और ईच्छा के अनुसार शब्दो का अर्थघटन करते है। यहां "हरि" शब्द का अर्थ माया है। हमें माया की भ्रमणाओ से बुद्धिभ्रष्ट नही होना है। जो परछाई है वह माया है। भ्रमणाओ से बुद्धिभ्रष्ट नही होना है। जो परछाई है वह माया है। भ्रमणा जो की स्थूल और सूक्ष्म से खडी होती है वह एकसमान है। दोनो के बीच यह फर्क यह है की स्थूल चीजो की भ्रमणा अविनाशी के लिए है। स्थूल चीजो की भ्रमणा नाशवंत के लिए है। सूक्ष्म चीजो की भ्रमणा बहुआयामी बहुदिशावाली होती है। हमारा ध्यान सांसारिक बातो में अटका हो तब बीखरा होता है लेकिन जब वह आत्मा पर केन्द्रीत होता है तब एककेन्द्री हो जाती है। यह चीज उस चीज से अलग है ऐसा कहना वही भ्रमणा है। यह भ्रमणा की वजह से दो चीजे होने का अहेसास होता है अन्यथा सब कुछ एक ही है। भ्रमणा उपस्थित होने की वजह मन है। मन का नाश किया जाये अर्थात मन में पैदा होती ईच्छाओ को नष्ट कर दिया जाये तो भ्रमणा अतीत के विषय बन जाती है। हे मनुष्य (भूतकाल) चिदाकाश में देखो और यह देखें की शाश्वत आनंद क्या है। आंतरद्रष्टि से देखो और शाश्वत आनंद को प्राप्त करें। बताएं की क्या अनुभव होता है। सिर्फ दूसरो के मुंह से कही-सुनी बातो से चर्चा न करें। कानोकान कही बातें हकिकत

नहीं है। अफवा परमसुख परमानंद नहीं है। अनुभूति, बारबार होती अनुभूति वही हकिकत है। अन्यथा ओर कुछ नहीं।

119. अपनेआप का अनुभव करें। अन्य को देखें और अपनेआप को देखो उसे अलग मानो तो वह भ्रमणा है। अन्य व्यक्ति के साथ खुद की पहचान करें और आप के अंदर जो विशेषता है उसका अनुभव करें। आप दोनो की अलग पहचान की चर्चा न करें लेकिन उस प्रकार से काम भी करें। आप बाहरी द्रष्टि से देखते है उसका कोई उपयोग नही है। मौत के वक्त अलग होने की भावना पीडा की वजह बन सकती है।

आप अपनेआप की अनूभूति करें और द्वैतभाव का नाश करो। जब आप दूसरो को और अपनेआप को अलग माने तब भ्रमणा उत्पन्न होती है। दूसरो के साथ आपकी तुलना करो। आपकी भ्रमणाएं नष्ट हो जायेगी। आत्मा को पहचान के आप में बसी विशेषताओं को पहचानीए। आप आपकी खास पहचान की चर्चा करें वह पर्याप्त नही है। आपको उसके अनुसार कार्य करना है। सिर्फ मौखिक प्रत्याघात देना पर्याप्त नही है। अभ्यास जरूरी है। बाहरी चक्षुओ से देखना कुछ काम का नही हे। ईश्वर सिर्फ आंतरिक चक्षुओ से दिखाई देते है।

120. मौत के वक्त ऊर्ध्व सांस अर्थात उपर की ओर द्रष्टि मौत के समय करनी वह है। ऊर्ध्व सांस अविभाज्य है। यह परमसुख है। यह सूक्ष्म है, शाश्वत है। ऊर्ध्व सांस में गाय के जैसी आवाझ नही होती। हे शिव, आप कृपा करें और हमें तालबद्ध होकर प्राणायम करने का बल प्रदान करें। चित्त में ध्यान करना चाहिए। शाश्वत सुख के सागर पर चिंतन करना चाहिए। ईडा में चिंतन करें, पिंगला में चिंतन करें, सुषुम्ना में चिंतन करें।

कुंडलिनी जागृति का आनंद प्राप्त करें। ऊठें, तीली माचिस की पेटी में है। ईस तीली में प्रकाश है। तिली को घिसे और अग्नि को प्रज्ज्वलित करें। अज्ञान अंधकार है, ज्ञान प्रकाश है। कुंडलीनी शाश्वत सुख है। वह अवश्य शाश्वत सुख है। शाश्वत सुख हृदय में है। अनंत प्रकाश अर्थात कुंडलिनी। कुंडलिनी ब्रह्मा का प्रकाश है। सूर्यप्रकाश सूक्ष्म प्रकाश है। सुषुम्ना मतलब सूर्य नाडी। ईडा मतलब चंद्र नाडी। पिंगला तारा (सितारा) नाडी है। तृतीय आंख का बैठना ज्ञान के लिए है। ईस नाडी में ज्ञान है। ईस नाडी में सुषुप्ति-ज्ञान निद्रा है। ईस निद्रा में जागृति नही होती। ईस निद्रा का आनंद प्राप्त करें। यह सांस सत्य में स्थिर होता है। वह चिदाकाश है। अंदरुनी आकाश में शाश्वत सुख का मिनार (स्तंभ) है। यह स्तंभ वह शांति की बैठक है। अपना निद्रा में सभान निद्रा का सुख प्राप्त करें। यह पशु निद्रा नही है, यह मनुष्य की निद्रा है। ईस निद्रा का आनंद प्राप्त करें, जो मनुष्य जीवन का ध्येय और उसका अंत है। दिव्य चक्षु की आध्यात्मिक निद्रा का लुफ्त उठायें, बोलते, बैठते और वह भी कीसी ईच्छा के बिना विचारविहिन दशा में ईस दिव्य निद्रा का आनंद प्राप्त करें। सांस, निद्रा दोनो पर ध्यान केन्द्रीत करें। आंतर और बाहरी सांस से प्राकृतिक जप करें। मन से - चित्त से सूक्ष्म भक्ति करें, अवश्य करे। बंधन मुक्ति सिद्ध करें। निरंतर भक्ति-अवरोधविहिन भक्ति, निरंतर उपर और नीचे सांस ले। उपर की ओर सांस लेना वह पूरक है। सांस को रोकना-निरोध मतलब कुंभक। जीसमें होता ईश्वरदर्शन ही सर्वेसर्वा है। भेदबुद्धि मतलब मै और तुम का भेद अंतकाल में पीडाकारक होगा। ईस चीज की अनुभूति करने के लिए आपको थोडा स्वार्थी होना पडेगा। यह स्वार्थी भाव अर्थात भेदबुद्धि, लोभबुद्धि अंतकाल में पीडा की वजह बनती है। यह लोभवृति की वजह से मौत के

वक्त जगत छोडने में आप हिचकिचायेंगे। कुंभक अर्थात सही बैठना। सांस बाहर निकालना मतलब रेचक। सांस अंदर ले तब जैसे कूएं में से पानी खींच रहे है ऐसी अनुभूति होनी चाहिए। चित्त (मन) में ब्रह्मरंध्र तक सांस खिंचे। ऐसे गहरी सांसो से ज्ञानाग्नि के प्रज्जवलित करें। नाडीयों को शुद्ध करें। तीन दोषो वात, पित्त और कफ को जला दो। विवेकबुद्धि एक योग निद्रा है। जो वैश्वानर अग्नि है। जो अन्नपाचन का कार्य करता है। यह विवेक वह सूर्यप्रकाश है। ईश्वर सूक्ष्म शक्ति के रूप में ब्रह्मांड में फैला हुआ है। सृजन मनुष्य दीमाग की आशंकाओ में से पैदा होता है। सृजन वह चित्तचोर की वजह है। जब ऊर्ध्व सांस ऊर्ध्व द्रष्टि की स्थिति प्राप्त होती है तब सृष्टि का अस्तित्व मीट जाता है।

स्पष्टीकरणः मौत के समय व्यक्ति में शारीरिक शक्ति क्षीण हो जाती है, तब प्राण ऊर्ध्व सांस लेता है। ईसे अंग्रेजी में सेम साईटेडनेस कहते है। जीस तरह मनुष्य के लिए देहत्याग के वक्त ब्रह्मरंध्र में सांस खींचना जरूरी है उसी तरह मुक्ति के लिए ऊर्ध्व सांस आवश्यक है। ईसलिए ऊर्ध्व सांस की ऊर्ध्व द्रष्टि के साथ तुलना होती है। ऊर्ध्व द्रष्टि अविभाज्य है और शाश्वत सुख की जडे है। जब हम ऊर्ध्व सांस लेते है तब कीसी प्रकार का गाय की आवाझ जैसी आवाझ नही होता। हे शिव आप की अनन्य कपा से निरंतर योगाभ्यास का बल प्रदान करें। आपकी कृपा से हमें मुक्ति प्राप्तो हो। हम चित्त में ध्यान करते रहें। हमें चित्त में परमानंद का ध्यान करते रहना है। हमे ईडा, पिंगला और सुषुम्ना में ध्यान करते रहना है। आपकी कृपा से ईसलिए चित्त में ध्यान करके सफलता प्राप्त कर सकें। नाडी जागरण से कुंडलिनी सिद्ध करें। कुंडलिनी की अंदरुनी शक्ति का जागरण होता है। कुंडलिनी सहस्त्रार में प्रवेश करे। तीली पेटी में है। तीली

निकालकर पेटे के साथ घिसे। बुद्धि माचिस बोक्स है। विवेक तीली है। विवेक को बुद्धि के साथ घिसने से ज्ञानप्रकाश पैदा होते है। अज्ञान वह अंधकार है। ज्ञान प्रकाश है। कुंडलिनी शाश्वत शक्ति है। कुंडलिनी परमसुख है। शाश्वतसुख है। मनुष्य के ह्रदय में है। अनंत प्रकाश मतलब कुंडलिनी। कुंडलिनी ब्रह्मप्रकाश है। कुंडलिनी का प्रकाश सूर्य के प्रकाश जैसा है। मानवशरीर में सुषुम्ना नाडी सूर्य नाडी है। चंद्र नाडी मतलब ईडा नाडी और तारा नाडी, पिंगला नाडी है। भ्रमूध्या में तृतीय आंख है। यहां ज्ञान के बैठक है। यह तृतीय आंख में ज्ञान निद्रा है, जीसे चक्षुयम कहा जाता है। यह निद्रा में कीसी प्रकार की जागृति चेतना नही होती। यह निद्रा का आनंद प्राप्त करें। प्राण और अपान को सम करके सूक्ष्म निद्रा का आनंद प्राप्त करे। शाश्वत सुख मतलब समाधि का आनंद प्राप्त करें। सांस जहां अटकती है वहां सत्य का स्थान है। चिदाकाश में सत्य का स्थान है और वह शाश्वत सुख का मिनार (स्तंभ) है। वही शाश्वत शांति स्तंभ है। शाश्वत शांति और शाश्वत सुख चिदाकाश में एकाकार होने से है। शाश्वत सुख की अनुभूति वह मनुष्य के जीवन का लक्ष्य है। हम समाधि की सूक्ष्म निद्रा का अनुभव करें। स्थूल निद्रा का त्याग करके सूक्ष्म निद्रा का अनुभव करें। यह निद्रा पशु निद्रा नही है वह मानव निद्रा है। वह निद्रा मानवजीवन का लक्ष और अंत भी है। हमें दिव्यचक्षु की निद्रा, जीसे उपनयन कहा जाता है वह लेनी है। ऊठते, बैठते विचारविहिन, ईच्छाविहिन दशा में यह सूक्ष्म निद्रा का आनंद प्राप्त करते रहें। समाधि निद्रा का आनंद प्राप्त करने के लिए हमारा ध्यान सांसो पर केन्द्रीत करना है। हम जप करते है उसी तरह तालबद्ध तरीके से हमारी सांसे अंदर-बाहर करते रहना है और सांसो की गति पर निरंतर ध्यान रखना है। हमारी भक्ति वह मन की भक्ति होनी

चाहिए। निरंतर भक्ति से हमे बंधनमुक्ति प्राप्त करनी है। हमे प्राणायाम निरंतर करते रहना है। अंदर सांस लेना उसे कुंभक कहा जाता है। सांस बाहर निकालना उसे रेचक कहते है। कुंभक से हमारे अंदर बसी सर्प जैसी शक्ति, जीसे कुंडलिनी शक्ति कहा जाता है वह जागृत होती है। कुंडलिनी यह सूक्ष्म निद्रा से जागृत होती है और चित्त में रहे सहस्त्रार की ओर गति करती है। हमारी सांस लेने की क्रिया कुएं में से पानी खींचने की तरह होनी चाहिए। ईस प्रकार की श्वसन क्रिया हमारे अंदर ज्ञान का उदय करेगी। ईस तरह की श्वसनक्रिया से हमारी नाडीयां शुद्ध होगी। हमारे जीवरस के तीन तत्व - वात, पित्त और कफ की शुद्धि होगी और नियंत्रण होगा। ज्ञान की शक्ति पैदा होने से विवेकबुद्धि विकसित होती है। यह ज्ञानशक्ति एक योगाभ्यास का परिणाम है। यह ज्ञानाग्नि वह हमारे शरीर में आहार का पाचन करता वैश्वानर अग्नि है। विवेकबुद्धि सूर्य के प्रकाश जैसी होनी चाहिए। ऐसे विवेक से समग्र ब्रह्मांड में ईश्वर की उपस्थिति का सूक्ष्म शक्ति स्वरुप से अनुभव कर सकते है। मन की भ्रमणाओ की वजह से हमें ब्रह्मांड को अपने से अलग समझते है। मन की शंकाए-भ्रमणाएं न हो तो हमें ब्रह्मांड-ईश्वर के साथ एकाकार हो जाये। सृष्टि का सृजन मानलमन की माया की वजह है। जब हमें सांस की ऊर्ध्व गति प्राप्त करें तब सृष्टि हमसे अलग है ऐसी अनुभूति चली जाती है तब सृष्टि और ईश्वर एक हो जाता है और त्याग एकाकार रहता है, जीसे कोई पर्याय, दूसरा सम आकार नही होता।

121. सूक्ष्म स्थिति चल और अचल दोनो रास्तो के लिए सामान्य है। फर्क सिर्फ प्रकृति का है। फर्क सिर्फ भ्रमणा है फर्क सिर्फ शरीर का है। शरीर नाशवंत है। प्रकृति क्षणजीवी है। जब सूक्ष्म की अनुभूति स्थूल में हो

उस स्थिति को मोक्ष कहते है। मुक्ति चिदाकाश में है। मुक्ति अविभाज्य है। चिदाकाश में ही शिवलिंग है। यह सहअस्तित्व है। उसे प्राणो का राजकुंवर कहा जाता है। ऊर्ध्वगामी सांस को योग में प्राण कहा जाता है। प्राण एक है। प्राण सर्व में एक है। प्राण अस्तित्व है। यह ज्ञान प्राणायाम और योगाभ्यास निश्चित करता है। उसे होता है। ईच्छा के बंधनो से बंधे हुए को ईस बात का ज्ञान नही है। ईच्छा के बंधनो ईसलिए ही छोड दो और मोक्ष सिद्ध करो। एक तत्व-परमात्मा की सिद्धि प्राप्त करें। आंतरचक्षु से परमात्मा के दर्शन करो। ऐसा मनुष्य अनुभव करता है की उसमें ईश्वर है और ईश्वर में वह है। जगत में अटका मन स्थिर नही होता। चिदाकाश में रहते शिव एक और चिरंतन है। शिव ओमकार है, ओमकार प्रणव है। अलग अलग स्वरुप के साथ एकाकार हो जाये उसे प्रणव कहा जाता है। ओमकार स्थूल शरीर की अनन्यता है।

स्पष्टीकरणः चल और अचल दोनो चीजो के लिए सूक्ष्म स्थिति एकसमान है। दोनो के बीच सिर्फ प्रकृति का फर्क है। चल और अचल चीजो के बीच का फर्क शरीर का है, नाशवंत है। यह फर्क सिर्फ क्षणजीवी है। जब आत्मा का साक्षात्कार होता जाता है तब सब एकसमान लगता है। शरीर जो नाशवंत है उसका फर्क क्षणजीवी है। मोक्ष वह है जो सूक्ष्म की स्थूल में अनुभूति करना वह है। जब अंधकार में प्रकाश के दर्शन होते है, असत्य में सत्य के दर्शन हो, नाशवंत में अविनाशी के दर्शन किये जाये तब मोक्ष सिद्ध होता है। मोक्ष अविभाज्य है। चिदाकाश में जीव का शिव के साथ मिलन होता है तब मोक्ष मिलता है। जीसे शिवलिंग कहा जाता है वह चिदाकाश में है। यह स्वअस्तित्व है। प्राणो का राजकुंवर कहा जाता है। ऊर्ध्वगामी सांस है। शरीर में सब से ज्यादा महत्वपूर्ण शक्ति प्राण है। प्राण

एक है। वह सर्व में है। प्राण एक अस्तित्व है। जीस लोगोने आत्मसाक्षात्कार किया है उन्हें ही ईस बात का ज्ञान होता है। जगत की ईच्छाओ में मशगूल व्यक्तिओ को यह अनुभव नहीं होता। ईच्छाओ के आवरण की वजह से वे आत्मसाक्षात्कार नही कर सकते। ईसलिए ही आत्मसाक्षात्कार सिद्ध करने के लिए ईच्छाओ के बंधनो से मुक्त हो जाना चाहिए और शाश्वत सत्य सिद्ध करना चाहिए। हमे एक ही तत्व सिद्ध करना है वह है परमात्मा। आंतरचक्षु से परमात्मा का दर्शन करना चाहिए। ईश्वर सूक्ष्मबुद्धि जीसकी जागृत है उसे ही दिखते है। ईश्वर साक्षात्कार सिद्ध करनेवाले व्यक्ति ईश्वर को उसमें और ईश्वर में अपनेआप को देखते है। वह एक ऐसी शक्ति का विकास करता है। की जो ब्रह्मांड को नियंत्रित करता है। ईसलिए ही उसे अनुभव होता है की ब्रह्मांड उसमें है और वह ब्रह्मांड में है। मन जगत में और ईच्छाओं में अटका हो तो वह स्थिर नही होता। ऐसा मन मरकट जैसा होता है। मन को स्थिर करने के लिए शिवमय कर देना चाहिए। शिव जो की चिदाकाश में रहता है वह एक और चिरंतन है। शिव ओमकार है। जब हमें सर्वोत्तम को सिद्ध करते है। हम अनुभव करते है की ओमकार सृष्टि का प्रारंभ और अंत बनता है। ईसलिए ही ओमकार को शिव कहते है। ओमकार जब विविध स्वरुप में होता है तब प्रणव कहा जाता है। ओमकार मतलब शरीर की अभानता का अनुभव। ओमकार कीसी चीज के साथ बंधा हुआ नही है। वह सर्व जगत का साक्षी है।

122. “ओमकार” जगत में श्रेष्ठ है। ओमकार एक सूर्य के उदगम के समान जैसा है। ओमकार जगत का साक्षी है। ओमकार जगत के सभी तत्वो में डरावना है। ओमकार अग्नि है। यह ब्रह्मांड की अग्नि जैसी अग्नि

नहीं। यह अग्नि आंतरिक और बाहरी दोनो तरह व्याप्त है। यह अग्नि के मध्य में पृथ्वी है। पृथ्वी नीचे है, वायु उपर है। वायु ब्रह्मांड मे व्याप्त है। ब्रह्मांड वायु है। प्रथम वायु और बाद में अग्नि। प्रथम विवेक और बाद में नाद। नादरहित दशा वायु स्वरुप में होती है। नादरहित दशा शाश्वत आनंद है। वह अस्तित्व-ज्ञान-सुख है। (आत्मा) को नादरहित दशा में मग्न कर देना चाहिए। द्रश्य विश्व आत्मा में है। जब सत और चित्त मिलते है तब आनंद की अनुभूति होती है। यह आनंद वह विवेक-आनंद, चैतन्य-आनंद, श्री ब्रह्मानंद, योगज्ञान-कालज्ञान। यह त्रिकाल ज्ञान ह्रदयाकाश में है। मुक्ति ह्रदयाकाश में है। नित्य-आनंद मुक्ति ह्रदयाकाश में है।

स्पष्टीकरणः ओमकार जगत में श्रेष्ठ है। ओमकार सृष्टि का मूल रहस्य है। ओमकार सूर्य के उदगम जैसा है। ओमकार जगत का साक्षी है। ओमकार वह सर्वोत्तम शक्ति है, जो संपूर्ण निवृति की कक्षा पर मिलता है। ओमकार कोई भी चीज का कर्ता नही है और कारक भी नही है। ओमकार अग्नि स्वरुप में सारे ब्रह्मांड में व्याप्त है। अग्निस्वरुप ओमकार भयावह है। ईस जगत में ओमकार के अग्नि स्वरुप से ज्यादा भयानक स्वरुप कोई और नही है। अग्नि अंदरुनी और बाहर की ओर दोनो ओर है। पृथ्वी दोनो के बीच में है। पृथ्वी नीचे है, वायु उपर है। वायु ब्रह्मांड में व्याप्त है। प्रथम वायु बाद में अग्नि। बिना वायु हम दुनिया मे एक पल भी जी नही सकते। अग्नि वायु के बाद महत्व रखता है। उसी तरह विवेक वह हमारे लिए प्रारंभिक रुप से महत्वपूर्ण है। विवेक के बाद नाद आता है। ईस विवेक से ही हम सूक्ष्म का अनुभव करते है। नादरहित दशा ही वायु का स्वरुप है। नादरहित दशा वह शाश्वत सुख है। यह ज्ञान-अस्तित्व-सुख है। आध्यात्म के उच्चतम स्तर पर परम सत्य की अनुभूति हो तब ईन

तीनो चीजो का अनुभव होता है। आत्मा को नादरहित दशा में लीन कर दो मतलब आत्मा को उच्चतम ब्रह्म में लीन करो। यह शक्ति जो की द्रश्य विश्व को नियंत्रित करती है। वही आत्मा है। ईसलिए द्रश्य विश्व आत्मा में है। सत चित्त के साथ मिलता है तब आनंद की अनुभूति होती है। ईस आनंद को ही विवेक-आनंद, चैतन्य-आनंद, श्री ब्रह्मानंद, परमानंद, श्री नित्य-आनंद और सत-चित्त आनंद कहते है। आनंद की अनुभूति ही मानवत्व है। मानवजीवन का लक्ष्य और अंत वही परमसुख की अनुभूति है। यह ब्रह्मज्ञान है। यह योगज्ञान है, जीसे कालज्ञान कहते है। काल मतलब भूत, वर्तमान और भविष्य का ज्ञान। यह त्रिकाल ज्ञान हृद्याकाश में है। त्रिकाल ज्ञान की बैठक हृदयाकाश में है। वह हृदयाकाश जो की शरीर में नीचे नहीं लेकिन चित्त में है। यही हृदय में मुक्ति है। नित्यानंद मुक्ति हृदयाकाश में है। हम मुक्ति तभी सिद्ध कर सकते है जब मन में बसे चिदाकाश के साथ एक होने से मुक्ति मिल सके।

123. भक्ति अर्थात "प्रेम"। लोगो को अन्नदान देना भक्ति नहीं है। वह मन की भ्रमणा है। वह शरीर संबंधी बात है। आहार और पीना सूक्ष्म होना चाहिए। शांति वह जल है। योग-आनंद मतलब शांति के जल पर बैठना। ओ चित्त! सांसारिक जीवन के आनंदो का त्याग कर के और शाश्वत आनंद का सुख ले। सांसारिक आनंद का त्याग और शाश्वत आनंद की अनुभूति। ओ चित्त! हृदय में बसो। सही आनंद हृदयाकाश है। आनंद, जीसे मुक्ति कहा जाता है उसका आनंद लो! उसी में मस्त रहो। आंतरजगत में प्रवेश करो और बाहरी जगत का त्याग करो। हे चित्त! तृतीय दैवी आंखे खोलो! दूसरी कोई चीज का विचार न करें। जगत को ऊर्ध्वगामी द्रष्टि से साक्षीभाव से देखो।

स्पष्टीकरणः भक्ति मतलब स्वार्थहीन ईश्वर प्रेम। अन्य को अन्नदान या खुद खाना वह भक्ति नही है। वह मन की भ्रमणा है। भक्ति अंदरुनी हो लेकिन बाहरी नही होनी चाहिए। आहार शरीर संबंधी बात है। स्थुल आहार का त्याग करके सूक्ष्म आहार-पीना शुरु करना चाहिए। सूक्ष्म आहार और पीने से आंतरभक्ति का विकास होता है। अगर शांति की तुलना जल के साथ हो तो शांति के जल पर बैठना मतलब योगानंद। योगानंद ऐसा परमसुख है, जो परमशांति का परिणाम है। हे चित्त! ईसलिए तुम सांसारिक आनंद का त्याग करके शाश्वत आनंद प्राप्त करो। शाश्वत आनंद में एकाकार हो जाओ। हे मन! ह्रदयाकाश में आत्मा को ढूढो। ह्रदयाकाश में बसे उस आनंद को प्राप्त करे, जीसे मुक्ति कहा जाता है। सही आनंद ह्रदय में है। स्थुल का त्याग करके सूक्ष्म का आनंद लें। तृतीय दैवी चक्षु खोलकर ज्ञानचक्षु से देखो। अन्य सांसारिक चीजों का विचार न करके ऊर्ध्व द्रष्टि से साक्षीभाव से जगत को देखो।

124. "जप" अंगुली पर गिनकर किया जाये, उसे जप नही कह सकते। जप जीह्वा से भी नही होते। "शिव" मन से सिद्ध न हो। हाथ से कर्म न हो, कर्म पांव से भी नहीं होते। हे चित्त! कर्म अवश्य करो लेकिन माया-बंधनरहित होकर। ईच्छारहित होकर जगत को देखो!

स्पष्टीकरणः अंगुली पर गिने जाये उसे जप नही कहते। जिह्वा से हो वह भी जप नही है। जप मन से निष्ठा से आंतरभाव से किये जाये तो ही सही है। सही ध्यान सच्चे जप है। जप को बाहरी क्रियाओ के साथ संबंध नही है। वह पूर्णरुप से अंदरुनी चीज है। शिव स्थूल चित्त से नहीं मिलते। "शिव" सूक्ष्म विवेक से सिद्ध किया जा सकता है। कर्म हाथ या पांव से नहीं

होते। कर्म साक्षीभाव से हो तो ही उसे कर्म कहा जाता है। जगत की बातो में माया मत रखो।

125. मन की निम्न वृतियां विचारहीन होती है। ऐसी विचारहीन दशा शूद्रता है। दूसरो की निंदा करना, मजाक उडाना, दंभ, अभिमान, ईर्ष्या सभी शूद्र गुण है। जीसे काली त्वचा होती है, जीसके वस्त्र काले हो वह शूद्र नही है। मनुष्य पघडी पहने, हाथ में घडी पहनता है वह शूद्र है। अगर वो दूसरो को समानता से देखें नहीं, धनवान शूद्र नही लेकिन स्वार्थ और भेद से भरा मानवी शूद्र है। वह मनुष्य मानव नहीं है, जिसने वेदांत के सत्यो का अनुभव नही किया है। जीवन के दौरान मुक्ति मतलब ऐसा वेदांत जो की प्रशिक्षित अश्व जैसा हो! जंगली हाथी जैसा वेदांत मुक्ति नही बल्की भ्रमणा है।

स्पष्टीकरणः विचारहीनता मानवमन की शूद्रता है। विचारहीनता वह हमारी शूद्रता है। हमे उसका त्याग करना चाहिए। दूसरो की मजाक उडाना, दंभ, अभिमान, ईर्ष्या ये सब मन के शूद्र गुण है। काली चमडीवाला, काले वस्त्रवाला लेकिन हृदय से शुद्ध मनुष्य शूद्र नही है। पघडी पहननेवाला या सोने की घडी हाथ में पहननेवाला मनुष्य अन्य में समानता न देखें तो वह शूद्र है। हमारी शूद्रता शरीर की बाह्य स्थिति के उपर निर्भर नही है लेकिन हृदय की शुद्धता पर है। बाहरी आवरणो का मानवी की अंदरुनी स्थिति से कोई लेनादेना नही है। जिसे वेदांत का सत्य नही समझना है वह मनुष्य नही है। मनुष्य को मानव बनने के लिए खुद क्या है वह समझना चाहिए। उसे आत्मसाक्षात्कार करना चाहिए। मनुष्य के जीवन काल के दौरान सच्ची मुक्ति ऐसा वेदांत है की वह प्रशिक्षित अश्व जैसा हो। जंगली पागल हाथी

जैसा वेदांत नहीं लेकिन भ्रमणा है। मुक्ति अगर सिद्ध होती है तो मनुष्य (चित्त) को प्रशिक्षित अश्व जैसा बनाता है।

126. स्वार्थी दीमाग चंचल होता है। सूक्ष्म विवेक की वजह से स्थिरता आती है। सृष्टि मतलब शांति। सृष्टि मतलब साक्षीभाव। सृष्टि मतलब सूक्ष्म विवेक। सूक्ष्म विवेक से तंदुरस्ती देनेवाला संतोष प्राप्त होता है। सूक्ष्म विवेक मतलब मुक्ति का बीज। जादुविद्या-हाथ की करामात की शक्ति से उपर नहीं है। हाथ की करामात-शक्ति के उपर निर्भर है। हाथ की करामात मन की भ्रमणा है। शक्ति आत्मा से आती है। सूक्ष्म विवेक वह सही बुद्धि है। शक्ति वह सही अर्थ में सूक्ष्म विवेक है।

स्पष्टीकरणः स्वार्थी दीमाग स्थिर नहीं होता। वह चंचल है। सूक्ष्म विवेक स्थिर होता है। सृष्टि मतलब शांति और साक्षीभाव। हमे शांति क्या है उसकी अनुभूति होनी चाहिए। हमे साक्षीभाव कैसे रहना वह सीखना चाहिए। साक्षीभाव से रहना मतलब जगत के बंधनो से अलग रहना। सूक्ष्म विवेक हमे संतोष देता है, जीससे हमारा स्वास्थ्य अच्छा रहता है। सूक्ष्म विवेक है वह मुक्ति का बीज है। मुक्ति प्राप्त करने के लिए सूक्ष्म विवेक जरूरी है। युक्ति-हाथ की करामात शक्ति से पर नहीं है। युक्ति-हाथ की करामात मन की भ्रमणा है। शक्ति आत्मा से मिलती है। बुद्धि मतलब सूक्ष्म विवेक। शक्ति मतलब सत्यार्थ में सूक्ष्म विवेक।

127. स्थूल आंखो से हम देखते है वह स्थूल बुद्धि है। बाहरी जगत में जो दिखता है वह स्थूल प्रज्ञा है। आंतरदर्शन में 'हरि' (माया) नहीं है। जो

द्रश्य है वह शिव नहीं है। चिदाकाश में जो दिखता है वह ईश्वर नहीं है। शिव में माया है, लेकिन माया में शिव नहीं है।

स्पष्टीकरणः स्थूल आंखो से हम देखते है वह स्थिर बुद्धि है और वह बाह्यजगत में दिखती है। हमे आंतरमन में जो देखते है वह माया नहीं है। जो दिखता है वह शिव नहीं है। शिव वह है जो एक और अद्रश्य है। हमारे आंतरमन में जो देखते है वह स्थूल ब्रह्मांड नही है। सूक्ष्म ब्रह्म है। माया का जन्मस्थान चित्त है। माया में शिव नहीं है, लेकिन शिव में माया है वैसे ही माया में शिव नहीं ।

128. सूक्ष्म बुद्धि अर्थात ज्ञान। आंतरध्यान जो है वह एककेन्द्री होता है। स्थूल बुद्धि है वह ऐसे अश्व जैसी है जिसको लगाम से नियंत्रित नही कर सकते। अन्य से प्राप्त हुई बुद्धि स्थायी नही होती। वह माया भी नहीं है। और शिव भी नही है। गुरु से जो मिलता है वही सच्चा ज्ञान है और वह सूक्ष्म विवेक है। वह कदापि स्थूल नही होता वह मानवी मानव नही है जो खुदने प्राप्त किया हुआ ज्ञान अन्य को नहीं देता।

स्पष्टीकरणः सूक्ष्म बुद्धि ही सच्ची बुद्धि है या ज्ञान है। अंदरुनी ध्यान या मन की एक केन्द्री स्थिति है। स्थूल बुद्धि स्थिर नही। स्थूल बुद्धि अपनी चंचलता की वजह से सांसारिक जीवन के आनंद में यहां वहां दोडती रहती है, वह एक ऐसे अश्व जेसी है जिसे लगाम से नियंत्रित नही कर सकते। अन्य से प्राप्त बुद्धि स्थायी नही होती। वह क्षणजीवी है। यह बुद्धि माया नही है। वह शिव नहीं है। शिव और माया अविनाशी है। सूक्ष्म बुद्धि गुरु से प्राप्त होती है। यह बुद्धि कभी स्थूल नही होती। गुरु अपने शिष्य को ऐसा ज्ञान देता है की उसे ईश्वर साक्षात्कार हो। स्थूल बुद्धि पाशवी होती है। वह पशुओ के लिए योग्य होती है, मानवी के लिए नही। वह

मानवी मानव नहीं है, जो खुद को मिला हुआ वापिस न दें। ईश्वरने हमें आत्मा दिया है तो हमारा फर्ज़ है की वह हम उसे वापिस करें। अभी संभव हो की हम परब्रह्म के साथ एकाकार हो जाये। मनुष्य को मानव बनने के लिए परब्रहम के साथ एकाकार हो जाना है।

129. जिस मानव को अपने जीवन का लक्ष्य पता नही वह पशु समान है। यह लक्ष्य मतलब ईच्छारहित दशा। ईस हकिकत से अज्ञान व्यक्ति मनुष्य नही है। मनुष्य ईश्वर की सृष्टि का सरताज और श्रेष्ठ सर्जन है। मनुष्य को मैढक जैसा बनना है जो पानी की सतह पर बारबार उपर नीचे होता रहे। मनुष्य की तुलना मैढक के साथ नही हो सकती। हमे मनुष्य जीवन बारबार नही मिलेगा। हमे जो मनुष्यजीवन मिला है उसमे लक्ष्य सिद्धि के लिए प्रयास करने चाहिए। भोजन तभी मिलता है जब पकाया जाता है। विवेक अग्नि है। बुद्धि वह बरतन है और मुक्ति जीवन का लक्ष्य है।

स्पष्टीकरणः जीस मानवी को अपना जीवन लक्ष्य पता नही वह पशु समान है। जीवन का लक्ष्य मतलब ईच्छारहित दशा। इस हकिकत से अज्ञान व्यक्ति मनुष्य नही है। मुक्ति ईच्छारहित दशा के बिना सिद्ध नही होती। मनुष्य ईश्वर की सृष्टि का श्रेष्ठ सर्जन है। उसे मैंढक की तरह पानी की सतह पर उपर-नीचे नही होना है। हमे दिव्यता के निर्मल जल में तरते रहना है। श्रेष्ठ मनुष्यजीवन की कभी मैंढक के साथ तुलना नही की जा सकती। हमे जो मनुष्यजीवन मिला है उसमें ईश्वर का साक्षात्कार का लक्ष्य सिद्ध करना हमारा फर्ज़ है, जीस तरह पकाने के बाद ही भोजन तैयार होता है उसी तरह मुक्ति भी निष्ठापूर्वक के प्रयासो के बिना सिद्ध नही होती। विवेक की अग्नि के साथ तुलनी हो सकती है। बुद्धि की बरतन के साथ।

ईन दोनो के बिना आहार नही बना सकते। मुक्ति की सिद्धि के लिए विवेक और बुद्धि महत्वपूर्ण आवश्यक्ताएं है। मुक्ति तैयार हुआ भोजन है।

130. चित्त आत्मा का बसेरा है। मुक्ति शाश्वत बसेरा है। 'ओमकार' मतलब मुक्ति। यह बसेरा स्वरुपहीन और अपरिवर्तनीय है। वह अविभाज्य है। भविष्य सुखमय नही है। वर्तमान सुखमय है। आनेवाला कल या बाद के दिन है ही नही। घडी की सूईयो मे दिखता समय सही में समय नही है। 'वर्तमान' ही सही समय है। अविभाज्य समय जीसे विवेक से अनुभव किया जा सकता है वही सच्चा समय है। जीवनलक्ष को भूलकर व्यतीत होता समय निरर्थक है।

स्पष्टीकरणः ओमकार एक बसेरा है। जो शाश्वत बसेरा है। ओमकार स्वरुपहीन है। ओमकार अविभाज्य है। हमे ओमकार की सिद्धि त्वरा से करनी चाहिए। भावि निश्चित नहीं है। आज का दिन ही सुनहरा है। आनेवाला कल - परसो का कोई भरोसा नही है। घडी की सूईयो से दिखता समय सही समय नहीं है। हमे मुक्ति के प्रयासो के लिए समय व्यतीत नही करना चाहिए। मानवजीवन क्षणजीवी है और समय सिर्फ वर्तमान में ही है। जीवन के लक्ष्य को सिद्ध करने के लिए व्यतीत हुआ समय ही सही में उपयोग में आता है।

131. मुक्ति का स्थान गोकुलनंदन, गोवर्धन गोकुल में है। तीसरा नेत्र गोकुल है। आंतरचक्षु गोकुल है। वह मथुरा और वही वृंदावन।

स्पष्टीकरणः चिदाकाश मतलब गोकुल नंदन, गोवर्धन या हम में बसा 'गोकुल'। चेतना का आकाश के साथ एक होने से हम ब्रह्म का साक्षात्कार

कर सकते है। तीसरा नेत्र मतलब गोकुल। मनुष्य का तीसरा नेत्र मतलब ज्ञानचक्षु जो मनुश्य के चिदाकाश मतलब गोकुल में होता है। ज्ञानचक्षु मतलब मनुष्य में बसा वृंदावन, गोकुल, गोवर्धन। ईन सभी स्थान श्री कृष्ण लीला के है। मनुष् अपने ज्ञानचक्षु के साथ ऐक्य का अनुभव करने से श्रीकृष्ण लीलाओं का अनुभव अन्य तीर्थस्थानो की मुलाकात किये बगैर अपने चिदाकाश में अनुभव कर सकता है।

132. चित्त में सर्वव्यापक ईश्वर के दर्शन करें! उनका लत्यदर्शन चित्त में करें। ऐसा करके शाश्वत सुख का आनंद भोगे। सारी सृष्टि के चिदाकाश में देखे।

स्पष्टीकरणः ब्रह्मांड में सर्वव्यापी ईश्वर मनुष्य के ह्रदय में है। उसे ह्रदयाकाश में ढूंढे। उसका सही अर्थ में दर्शन ह्रदयाकाश में किजीये। उसका साक्षात्कार करने से शाश्वत सुख का आनंद मिलेगा। ईश्वर सर्वोत्तम सुख है और वही सर्वोत्तम सुख है। आपके चिदाकाश में ब्रह्मांड को नियंत्रित करनेवाली उस शक्ति का विकास किजीये और एकाकार हहो जाता है। ईसलिए ही सारे सृष्टि-ब्रह्मांड आप में है और आपके चिदाकाश-ह्रदयाकाश में है।

133. “ओमकार” का साक्षात्कार मतलब चिदाकाश में से जगत की ईच्छाओ का नाश। ओमकार का साक्षात्कार मतलब मन का नाश। जब मान-अपमान मनुष्य के लिए एकसमान हो जाते है तब आनंद की अनुभूति करते है। शाश्वत आनंद का अनुभव प्राप्त करता है, जो की सच्चा आनंद है। उसके बाद जो अनुभव प्राप्त होता है उसका सिर्फ आनंद रहता है और सिर्फ आनंद रहता है।

स्पष्टीकरणः जब “ओमकार” का साक्षात्कार होता है तब समग्र बाह्‌य विश्व (आभास) परछाई जैसा है। बाह्‌य विश्व उसका महत्व खो देता है तब एक ही सत्य बाकी रहता है वह है सर्वोत्तम ब्रह्‌म। जब “ओमकार” का साक्षात्कार होता है तब मनुष्य का मन ओमकार में विलीन हो जाता है और वह ओमकारमय हो जाता है। वह अपना स्वतंत्र अस्तित्व खो देता है। मानवी तब शाश्वत आनंद, अनंत आनंद का अनुभव प्राप्त करता है और वह तभी संभव होता है जब व्यक्ति की मान-अपमान की संवेदनाएं नष्ट हो जाती है। परमसुख की अनुभूति तभी हो सकती है की जब अच्छी-बूरी संवेदनाएं नष्ट हो जाती है। द्वैत का भाव व्यक्ति में संपूर्ण नष्ट हो जाना चाहिए। जब मन का द्वैतभाव पूर्णरुप से नष्ट हो जाये तब शुद्ध आनंद की अनुभूति होती है।

134. शिव काशी से आते है। ह्रदयाकाश मतलब काशी। मन अर्थात काशी। सब काशी ही है। शाश्वत आत्मा काशी है। काशी चित्त में है। दस नाद शाश्वत है। सूक्ष्म काशी मतलब निर्विकल्प काशी। हरिद्‌वार मतलब शरीर के नौ द्‌वार। वही ह्रदयाकाश है। वही शाश्वत शांति का स्थान है। यज्ञ मतलब त्याग और अमूल्य ज्ञान मतलब यज्ञ।

स्पष्टीकरणः काशी हिन्दुओ का पवित्र स्थान है। जहां सर्वोत्तम ईश्वर की उपस्थिति है। काशी मतलब ह्रयाकाश (चिदाकाश) आत्मा मतलब मनुष्य में बसे शिव। काशी ही मानवी का दीमाग है। काशी मतलब शाश्वत आत्मा। काशी चिद्‌त में है। काशी बाह्‌य नहीं है लेकिन आंतरिक है। वह मानवी में बसा ज्ञान है। दस नाद – जो मनुष्य आध्यात्मिक सिद्धिओ की ओर आगे बढें तभी सुनाई देता है वह शाश्वत है। निर्विकल्प समाधि मतलब ही मानवी में बसी ‘काशी’ ईच्छारहित दशा मतलब निर्विकल्प और

वही काशी। “हरिद्वार” हिन्दुओ का दूसरा पवित्र स्थान है। वह दूसरा नही लेकिन शरीर के नौ द्वार है। ईन नौ द्वारो का योग्य उपयोग हो तो मानवी अपनी आत्मा को अच्छी तरह पहचान सकता है। ह्रदयाकाश-मतलब मानवी में रहा शांति का स्थान। जब मनुष्य ह्रदयाकाश के साथ एकाकार हो जाता है तब वह सर्वोत्तम शांति का अनुभव कर सकते है। यज्ञ क्या है? यज्ञ अर्थात अमृत ज्ञान। ज्ञान के साक्षात्कार से ज्यादा कोई त्याग नहीं है मतलब ईश्वर के साक्षात्कार से ज्यादा बडा कोई यज्ञ नही है।

135. ‘युक्ति’ हाथ की कमाल पांव पर चलने जैसी कला है। शक्ति ह्रद्याकाश में प्रवेश होता है। संन्यास मतलब रेलवे की सफर। पांवो से चलता पदयात्री मार्ग भूला है। (मानस चंचल है) शरीर रेलवे की पटरी है। ईस रेलवे में सफर करनेवाला यात्री मतलब मानस (मन)। जिस तरह यात्री के बिना ट्रेन आगे न बढें उसी तरह मानस के बिना भी शरीर की सफर आगे नही बढती। टिकट नही दि जायेगी। लोग ईक्कट्ठे नहीं होगे। उसके बाद प्रथम श्रेणी, द्धितिय श्रेणी नही होगी। मानस शांति की श्रेणी है। रथ का सारथि बुद्धि है। ईन्जिन अर्थात चित्त (ज्ञानतंतु)। नाडियां और रक्तनलिकाओं मे जो है वह वायु है।

स्पष्टीकरणः हाथ की कमाल और जादूविद्या से आत्मसाक्षात्कार नही होता। शक्ति से आत्मसाक्षात्कार होता है। हाथ की कमाल या जादूविद्या मतलब पांव से चलने जैसा है। ईसलिए विद्या से आत्मा का साक्षात्कार धीमी गति से होगा। शक्ति वह महान ताकत है, जीसका जन्मस्थान आत्मा है। जो आत्मा में प्रवेश करता है। सन्यस्त मतलब रेलवे यात्रा जैसा है। जिस तरह रेल यात्रा एकसमान पटरी पर होती और ईसलिए यात्री जल्दी से गतव्यस्थान पर पहुचता है उसी तरह सन्यस्त का मार्ग प्राप्त

करनेवाले मुक्ति लक्ष्य जल्दी से प्राप्त कर सक्ते है। संन्यस्त अर्थात संसार का संपूर्ण और स्वच्छ तरीके से त्याग करना। संसार के त्याग से मुक्ति बहुत ही कम समय में प्राप्त हो सक्ती है। जो संसार की विद्याओ में कुशल होता है वह आत्मा का साक्षात्कार कर सकता है लेकिन धीमी गति से क्योंकी संसार में रहने से और चंचल मन के सतत सहवास से उनके प्रयास बिखर जाते है। ईसलिए ही हमारा मन को नियंत्रित करके एककेन्द्री करने का फर्झ है। शरीर और शरीर के विविध भागो की तुलना ट्रेन के साथ की जाती है। शरीर की तुलना रेलवे की पटरी के साथ की गई है। मानस मतलब यात्री। यात्री न हो तो ट्रेन चलाना संभव नहीं है। टिकट नही दि जायेगी। लोक ईकठ्ठे नही होगे। मानस (दीमाग) न हो तो मनुष्य कुछ काम नही कर सकता। उसके बाद प्रथम श्रेणी, द्वितिय श्रेणी, तृतिय वर्ग कुछ भी नही होता। मानस न हो तो संसार की अच्छी-बूरी बातो में कुछ फर्क नही होता। सब एक ही होता है, जीसका कोई पर्याय न हो। मानस शांति की श्रेणी है। मानस को सर्वोत्तम शांति सिद्ध करनी है। बुद्धि रथ का सारथि है और वह जीस तरह रथ को दिशा बतलाता है उसी तरह मानस को दिशा दिखानी है अर्थांत बुद्धि अर्थात मानस (मन) को अंकुश में रखना है। जिस तरह ट्रेन में ईन्जिन होता है, ट्रेन में स्क्रू होता है और भांप की शक्ति ईन्जिन को चलाती है उसी तरह मानवशरीर में भी बुद्धि, नाडियां, रक्तनलिकाएं और प्राण होते है। मस्तिष्क मानवमन में रहनेवाले ट्रेन के ईन्जिन जैसा है। रक्तनलिकाएं और नाडि तंत्र स्क्रू और भांप जो की ट्रेन को चलाते है। वह प्राण है। प्राण मनुष्य के अस्तित्व को टिकाकर रखते है।

136. मृत्यु के समय जो हमें बचाते हे वह शिव है। वह माया नही है। शक्ति शिव में है। माया हरि में है। शरीर मिट्टी का बना है। शरीर की

ईन्द्रियां हरदम बाह्याचार को देखती है। शिवा आंतरिक है। वह ब्रह्मररंध्र है। दूसरो से दिया जाता ज्ञान वह सही ज्ञान नहीं है। अनुभव से प्राप्त होनेवाला ज्ञान वही सच्चा ज्ञान है।

स्पष्टीकरणः मृत्यु के समय मनुष्य को शिव बचाते है, माया नहीं। शिव ब्रह्मांड के महादेव है। जो अंतकाल में मुक्ति देते है। शिव में शक्ति है। शिव शक्ति का स्त्रोत है। सब शक्ति उनमें से पैदा होनी चाहिए।। माया क्षणजीवी है। शरीर नाशवंत है। काया मिट्टी की बनी है। देह की ईन्द्रिया हरदम बाह्याचार में ररहती है। देह की ईन्द्रिया जगत के भोग-उपभोग में रहती है। शिव की अनुभूति सूक्ष्म जगत में हो सकती है। स्थूल द्रष्टि से वे दिखते नही है। आत्मा का मिलन शिव के साथ तब होता है की जब कुंडलिनी ब्रहरंध्र में पहुंचता है। ईसलिए शिव और ब्रह्मरंध्र एकसमान है। अन्य के दवारा दिया जाता ज्ञान सही ज्ञान नही। वह क्षणजीवी है। हमने अनुभव से प्राप्त किया हुआ ज्ञान ही सच्चा ज्ञान है।

137. अगर आप पूर्णतः शांति प्राप्त की हो तो अत्र तत्र घूमने की जरुरत नही है। काशी, रामेश्वर, गोकर्ण और दूसरे तीर्थस्थानो पर जाने की आवश्यक्ता नही है। यह सब चिदाकाश (दीमाग) में दिखता है। आना और जाना सब मन की भ्रमणा है। जब मन की शांति सिद्ध होती है तब सब एक में ही दिखता है। एक में ही सब दिखता है। यह ईच्छारहित दशा है। हाथ में रही चीज हाथ में देखनी चाहिए। आप वह अन्यत्र कहीं नही देख सकते उसी तरह सब अपने विचारो से अनुभव प्राप्त करके करना चाहिए।

स्पष्टीकरणः अगर पूर्णतः शांति सिद्ध हुई हो तो यहां वहां भटकने की आवश्यक्ता नही है। दूसरे दर्शन की आवश्यकता नहीं है। मानवमन की चचलता की वजह से मनुष्य को तीर्थधामो में यहां वहां भटकने का मन

होता है। अगर पूर्णतः शांति सिद्ध हुई होगी तो मन पूर्णरुप से शांत होगा। उसके बाद काशी, रामेश्वर, गोकर्ण या अन्य तीर्थस्थानो पर जाने की आवश्यक्ता नही है। मनुष्य का आना और जान चित्त की एक भ्रमणा है। चित्त उसके बाद एक में ही सब देखेगा। बंधन से मुक्ति सभी में आत्मा को देखना और उसी तरह आत्मा में सब के दर्शन करना वह है। ईस स्थिति पर पहुंचने के बाद मनुष्य पूर्णरुप से ईच्छारहित हो जायेगा। हाथ में रही चीज हाथ में ही होनी चाहिए, अन्य स्थान पर नही। ठीक उसी तरह ईश्वर के दर्शन ह्रदय में ही करने चाहिए। हर एक चीज स्वयंविचार करने के बाद उसका अनुभव लेना चाहिए। हमे ईश्वर के परमसुख का अनुभव स्वप्रयासो से करने चाहिए।

138. सही सूर्योदय आत्मसभानता के आकाश में देखना है। यह सूर्योदय ही सच्चा है। सारे ब्रह्मांड के दर्शन अपने ह्रदयाकाश में करने है। जीस तरह छोटे मिट्टी के बरतन में रखे पानी में सूर्य के दर्शन हो सकते है उसी तरह सारे ब्रह्मांड के दर्शन अपने चिदाकाश में करना है। जिस तरह बैलगाडी में सफर करते है तब सारा विश्व चल रहा हो ऐसा लगता है उसी तरह ब्रह्मांड के दर्शन अपनेआप में किये जा सकते है।

स्पष्टीकरणः कुंडलिनी जागरुकता से पैदा होती सर्वोत्तम ज्योति ही सच्चा सूर्योदय है। वह मनुष्य अपने चिदाकाश में देख सकता है। यह सूर्योदय सर्वोत्तम और अतुल्य है। सूर्योदय का अनुबव चिदाकाश में हो सकता है। मिट्टी के छोटे बरतन में भरे पानी में सूर्या के जिस तरह दर्शन होते है उसी तरह अपने ह्रदयाकाश में सारे ब्रह्मांड के दर्शन मनुष्य कर सकता है। ईसके लिए कुंडलिनी जागृत होनी चाहिए और उसकी गति सहस्त्रार की ओर होनी चाहिए। तब मनुष्य को अनुभव होता है की वह

ब्रह्म के साथ है और सृष्टि के साथ है। यह स्थिति जब प्राप्त होती है तब मनुष्य सारे ब्रह्मांड के दर्शन अपने चिदाकाश में कर सकता है। जीस तरह बैलगाडी में सफर करते है तब वास्तव में हम गति कर रहे होते है लेकिन गलति से हमे सारा विश्व मानो घूम रहा है ऐसा अनुभव करते है। ईस तरह सारे बाहरी विश्व के दर्शन अपने चिदाकाश में ककर सकते है और ईसलिए वह ब्रह्मांड को नियंत्रित करनेवाली महाशक्ति का विकास करना चाहिए। सारे ब्रह्मांड की शक्ति तब हमारे अंदर होगी।

139. भूखे लोगो को ही पता होता है की भूख क्या होती है उसी तरह आत्मा को ही सर्व जगत का पता होता है। जैसे ट्रेन स्टेशन छोडती हे तब नजदिक के स्टेशन पर सुचना दी जाती है उसी तरह कूएं में पत्थर फेंकने से आवाझ आती है उसी तरह जब प्राण नाडियों में घूमता है तब दस तरह के नाद सुनाई देते है।

स्पष्टीकरणः मानवी की आत्मा अनंत ईश्वर का हिस्सा है। वह सर्वज्ञात है। जैसे भूखे लोगो को ही मालूम होता है की भूख क्या है उसी तरह सब ज्ञान आत्मा को होता है। ट्रेन स्टेशन से नीकलती है तब नजदिक के स्टेशन पर तार भेजा जाता है। जैसे कूएं में पत्थर फेंका जाये तो पानी में गिरने से आवाझ हाती है उसी तरह प्राण नाडियों में घूमता है तब नाडियां शुद्ध होती है और दस तरह के नाद उत्पन्न होते है। यह बात बताती है की मनुष्य की अंदरुनी शरीर व्यवस्था अच्छी तरह चल रही है और वह ईस बात को भी सूचित करता है की कुंडलिनी चिदाकाश में से सहस्त्रार की ओर गति कर रही है, जो की उसका सही स्थान है।

140. बंध मुंहवाले बरतन में पानी उबाला जाये तो पूरी गरमी बरतन में केन्द्रित होती है। पंप में से पानी बाहर आता है तब ओमकार का नाद होता है। हमे जंगल के रास्तों को छोडकर राजमार्ग लेना चाहिए। जो शक्ति अधोमार्गी होती हो उसे ऊर्ध्वमार्गी करनी चाहिए। मन को मन का स्थान समझना चाहिए।

स्पष्टीकरणः हमे हमारी कुंडलिनी को जागृत करके शरीर में ही उसकी शक्ति को केन्द्रीत करनी चाहिए। हमारी शक्तियां सांसारिक उद्देशो में व्यतीत नही होनी चाहिए। हमे ईन्द्रिय के द्वार बंध कर देने चाहिए, जीससे हमारी शक्ति व्यतीत न हो। हमे हमारी शक्तियां ऊबलते पानी के बंध मुंहवाले बरतन में जिस तरह केन्द्रीत होती है उसी तरह करनी चाहिए। ऐसे जब सिद्ध होगी तब ओमकार के सिवां कुछ नही दिखेगा। पानी के पंप में से पानी नीकलता है तब ओमकारना नाद की अनुभूति होती है। ओमकार हमारे लिए सर्वस्व बन जायेगा। सांसारिक जीवन के जंगली मार्गो का त्याग करके हमे दिव्य जीवन का राजमार्ग स्वीकार करना चाहिए। शरीर की शक्तियां की जिनका मार्ग अधोगामी हो रहा हो तो उसे ऊर्ध्वगामी करना चाहिए। मन को उसकी चिदाकाश में रही स्थिति का ज्ञान हो तो उसे सातत्यपूर्ण और संतुष्ट रहना चाहिए।

141. बिना पान की जगह में जैसे नौका तैर नही सकती उसी तरह प्राण की गति न हो तो रक्तसंचार नही होता। रक्तसंचार रुके तो शरीर में गरमी पैदा नही होती। शरीर में गरमी पैदा न हो तो आहार का पाचन नही होता उसी तरह बिना अग्नि के ट्रेन चल नही सक्ती।

स्पष्टीकरणः नौका को तैरने के लिए पतवार की जरूरत होती है। रेलवे-ट्रेन को चलाने के लिए आग की जरुरत होती है उसी तरह शारीरिक

गतिविधियों के लिए प्राण अनिवार्य है। मानवशरीर में प्राण नही होंगे तो रक्तसंचार रुक जायेगा। अगर शरीर में गर्मी पैदा होना बंध हो जाये तो आहार का पाचन नहीं होता। ईसलिए प्राण शरीर में न रहे तो शरीर के सभी कार्य रुक जाते है।

142. जिस तरह कूएं में से पानी खिंचने के लिए रस्सी अनिवार्य है उसी तरह शरीर में सांस चलती है वह रस्सी का काम करती है। लय में शरीर में सांस अंदर लेना वह कूएं में से पानी खिंचने जैसा है।

स्पष्टीकरणः प्राणायम हमारे शरीर में सांसो को लय में रखता है। हमे सांस और खांसी लय में करनी चाहिए। यह क्रिया कूएं में से पानी खिंचने के लिए घडा उतारने और बाहर निकालने जैसी है। प्राण शरीर के लिए रस्सी समान है और हमे कुंडलिनी की महाशक्ति को जागृत उसी से कर सकते है।

143. जिस तरह लकडी में से उसी पाट बनाने के लिए उसे उपर-नीचे काटना पडता है उसी तरह सांस को शरीर में उपर-नीचे ले जाना चाहिए। उसे बुद्धि में ले जाना चाहिए और हरदम उसे उपर की ओर ले जाना चाहिए। पत्थर को पहाडी के शिखर की ओर फेंकने के लिए काफी प्रयास करने पडते है लेकिन उपर से नीचे की ओर पत्थर फेंकने के लिए प्रयास नही करना पडता। उसी तरह शिखर पर चढ़ना मुश्किल है लेकिन उतरना आसान है। प्राण के लिए शरीर छोडना कठिन है। चीज लेनी आसान है लेकिन वह वापिस करना कठिन है। जो मनुष्य अपने ज्ञान वापिस नही करते वह मानव कहने लायक नही है। वें गुणों के अभाववाले पशु है।

स्पष्टीकरणः हमे सांस लयबद्ध तरीके से लेनी चाहिए। जीस तरह लकडी का पाट को हम उपर-नीचे काटते है, लयबद्ध तरीके से होनेवाली सांस की प्रक्रिया को प्राणायम कहते है। प्राण को बुद्धि की ओर ले जाना चाहिए और उसकी गति हरदम ऊर्ध्व होनी चाहिए। पत्थर को शिखर की ओर फेंकने के लिए ज्यादा महेनत लगती है लेकिन उपर से नीचे पत्थर फेंकना आसान है। मनुष्य के लिए ईन्द्रियां अंकुशित करना ज्यादा कठिन है और परब्रह्म के दर्शन मुश्किल है लेकिन अनियमित जीवन और ईन्द्रियों को निररंकुश रखने से ईश्वर के दर्शन दुर्लभ हो जाते है। प्राण को मनुष्य का शरीर छोडने में मुश्किल होती है। प्राण को शरीर का त्याग करने में अकल्पनीय मुश्किलें उठानी पडती है। कीसी भी चीज ग्रहण करना आसान है लेकिन उसे वापिस करना कठिन है। हमे ईश्वर से आत्मा मिली है लेकिन हमें उसे शरीर की उपस्थिति में वापिस करना है और उसके लिए परब्रह्म का साक्षात्कार करना और उनके साथ एकाकार हो जाना है। मनुष्यजीवन का लक्ष्य आत्मा की सिद्धि है। जो लोग खुद को मिला हुआ अपने जीवनकाल में वापिस नही करते उन्हें मानव नही कहा जा सकता। मनुष्य को मानव कहलाने के लिए आत्मसाक्षात्कार करना चाहिए। ऐसा करने से ही ईश्वर के पास से जो मिला है वह ईश्वर को वापिस किया जा सकता है। जो लोग खुद को पहचानते नही है वे पशुओ से अच्छे नही है।

144. मनुष्य की अंतकाल की पीडाओं का विवरण करना संभव नही है। ज्ञान की सिद्धि सूक्ष्म चिंतन से होती है। ईसलिए सांसो की क्रिया अंकुशित करनी चाहिए। चित्त को नाद में लीन कर देना चाहिए।

स्पष्टीकरणः मनुष्य की अंतकाल की पीडाओं का विवरण संभव नही है। ज्ञान सूक्ष्म चिंतन से सिद्ध होता है। हमे प्राणायम के अभ्यास से सांसो की क्रिया को अंकुशित करना पडता है। ऐसा करने से हमारा नाडीतंत्र शुद्ध हो जायेगा और हमे दस नाद स्वर सुनाई देंगे। जब नाद सुनाई देता है तब मन को नाद पर केन्द्रीत करना चाहिए। जैसे जैसे मन का ध्यान नाद पर बढता जाता है वैसे वैसे मन नादमय होने लगता है और नाद में एक हो जाता है।

145. जिसके चित्त पर चिंता का बोझ हो उसका ध्यान "बोझ" पर ही रहता है। वह राजा की भूमिका करनेवाले कलाकार का ध्यान जैसे मुगट की ओर ही रहता है उसके जैसा है। ज्ञानीओ का ध्यान सिर्फ बुद्धि पर केन्द्रीत होता है।

स्पष्टीकरणः ज्ञानीओ का ध्यान शाश्वत तरीके से बुद्धि पर ही होता है। मनुष्य चिंता में होता है तब उसका ध्यान हरदम चिंता में होता है। नाटक में राजा की भूमिका करनेवाले का ध्यान उसने पहने हुए मुगट की ओर ही रहता है। ज्ञानीओ का ध्यान हरदम बुद्धि की ओर रहता है और वे परमब्रह्म के विचारो में मग्न रहते है और उसके विचारो में मग्न रहते है और उसके साथ ही एकत्व का अनुभव करते है।

146. मन (चित्त) बुद्धि से हलकी कक्षा का है। बुद्धि का स्थान राजा जैसा है। मन का स्थान प्रधानमंत्री जैसा है। प्रधानमंत्री को राजा के पास उन्हें मिलने बारबार जाना पडता है वैसे मन शरीर का राजा है।

स्पष्टीकरणः मन का स्थान बुद्धि से हलकी कक्षा का है। बुद्धि को राजाके समान माने तो मन का स्थान प्रधानमंत्री का है। बुद्धि का कार्य मन को मार्गदर्शन देने का है, जिससे मन ब्रह्म के साथ एकरूप हो सके। बुद्धि के कार्यस्वरुप की वजह से बुद्धि की तुलना राजा के साथ की गई है। राजा का काम आदेश देने का है और प्रधानमंत्री का काम उसका आदर करना है उसी तरह बुद्धि के आदेशो का गर्भित तौर पर मन से पालन होना चाहिए। जीस तरह प्रधानमंत्री को राजकाज के लिए राजा का परामर्श लेने महल में बारबार जाना पडता है उसी तरह मन को भी बुद्धि के अधीन रहना चाहिए और साथ में मन के आदेशो का पालन करने का फर्ज़ शरीर का है।

147. मध्याह्न के सूर्य के समक्ष गेस का दीया घूंधला लगता है। गेस के दीये की रोशनी अंधकार में ही उपयोग में आती है। भूखा आदमी जातपात के भेद नही देखता उसी तरह गहरी नींद में सोया हुए व्यक्ति को भूख नहही लगती। मन उपस्थित नही होता है। मनुष्य को ईसतरह योगनिद्रा लेनी चाहिए। ऐसे लोग ही ज्ञानी है।

स्पष्टीकरणः गेस के दीये की रोशनी मध्याह्न के सूर्य के तेज के सामने धूंधली है उसी तरह ईश्वर के परमसुख के समक्ष सांसारिक जीवन के आनंद का कोई मूल्य नही। हम अज्ञानी होते है तब सांसारिक जीवन के आनंद का आकर्षण हमें होता है। जो व्यक्ति दैवी ज्ञान की खोज में नीकला है वह जातपात नही देखते। परम सत्य को प्राप्त करने के लिए

हिंमत से दुनिया क्या कहेगी उसकी चिंता किये बिना प्रयास करता रहता है। गहरी निंद में सोये मनुष्य को भूख की अनुभूति नही होती क्योंकी उसका मन सुषुप्त होता है। योगनिद्रा से मनुष्य को ईश्वर का साक्षात्कार करके उस में एकाकार होकर जीना चाहिए। ईसे योगनिद्रा कहते है। योगनिद्रा क्या है यह समझनेवाले ही ज्ञानी होते है।

148. अलग अलग दस लोगो को देखोगे तो मालूम होगा की उनकी भक्ति का स्वरुप एकसमान नही है। दस लोग यात्रा संघ बनाकर नीकलेंगे और उनमें से एक व्यक्ति अगर आराम करना चाहे तो अन्य लोगो को भी आराम करना पडेगा। उसी तरह एक ज्ञान भक्तिवाली व्यक्ति को देखकर अन्य लोग उनका अनुसरण करके भक्त बनते है।

स्पष्टीकरणः भक्ति सभी लोगो में एक स्वरुप की नही होती। मनुष्य मनुष्य में फर्क होता है। भक्ति तीन तरह की है – सात्विक, राजसी और तामसी। दस यात्रीओ के संघ में से एक भक्त को देखकर दूसरे लोग उनका अनुसरण करके भक्त बनते है। भक्ति का संक्रमण दूसरे संक्रमण की तरह अन्य लोगो को भी होता है।

149. हाथ में रहे पुष्प की खुश्बु का अनुभव नही हो सकता। दूर रहे पुष्पो की मीठी खुश्बु आती है। बच्चे जीनके मन का विकास नही हुआ वे सांसारिक जीवन की चीजो में फर्क नही समझते। उनका विकास होता है तभी जगत की चीजो का फर्क उन्हें मालूम होता है। छः महिने के बच्चे को सांसारिक जीवन का ज्ञान नही होता। उच्च कक्षा के योगीओ ईस तरह के होते है। जीस तरह छः महिने के बच्चे को हीरे और कांच की गोली के बीच

का फर्क मालूम नही पडता। उसी तरह सच्चे ज्ञानी को मिट्टी और पैसो के बिच कोई फर्क नही लगता। वे ईच्छारहित होते है और आत्मा के दर्शन सर्वत्र करते है। आत्मा में सर्व का और सर्व में आत्मा के दर्शन करते है। उनकी द्रष्टि अंदरुनी होती है। आंतरद्रष्टि अर्थात सूक्ष्म विवेक। सूक्ष्म विवेक मतलब शिवशक्ति। शिवशक्ति परब्रह्म का स्वरुप है? परब्रह्म क्या है, वह आत्मा की शक्ति है। यह एक का रहस्य है।

स्पष्टीकरणः अंतर हो तो आनंद रहता है। मनुष्य कीतना भी महान हो अगर वो नजदिक रहता है तो हम उसकी महानता को दरकिनार करते है। फुल जब हाथ में होता है तब उसकी खुश्बु हमे प्राप्त नही होती लेकिन दुर जो फुल है उसकी खुश्बु मीठी लगती है। हम दुर रहकर मनुष्य की महानता का अनुभव कर सकते है। सच्चे ज्ञानी बच्चे जैसे है उन्हें कोई भेद की अनुभूति नही होती। छोटे बच्चे को जैसे हीरे और कांच की गोलीओ में कोई फर्क नही लगता उसी तरह योगी-ज्ञानीओ के लिए भी हीरा या कांच की गोली एकसमान होती है। सच्चा ज्ञानी ईच्छारहित होता है। उसे कोई भेद दिखाई नही देता वह एक आत्मा सर्वत्र देखता है और एक आत्मा का दर्शन सर्व में करता है। सूक्ष्म विवेकबुद्धि की वजह से उसकी द्रष्टि आंतरिक होती है। जो स्थूल आंखो से नही दिखाई देती। शिवशक्ति मतलब परब्रह्म की पराशक्ति है। आत्मा के साक्षात्कार से शिवशक्ति का दर्शन संभव होता है। परब्रह्म मतलब मानवी का शाश्वत आत्मा है। आत्मा एक वास्तविक्ता है। जगत की दूसरी चीजें अवास्तविक आभासी है।

150. मनुष्य में बसा प्राण वास्विक्ता है। वह मानवी मानव है। जो सही तरीके से सोचता है। यह सत्य विचार मानवजीवन का लक्ष्य है। सब योगाभ्यास से प्राप्त करना संभव है। अभ्यास से ही ज्ञान है।

स्पष्टीकरणः ईश्वर की प्रारंभिक शक्ति प्राण मनुष्य में होती है। जो विश्व की हकिकत है। बाकी सब नाशवंत है और ईसलिए वास्तविक नही है। मनुष्य को मानवी बनने के लिए ईश्वर जो सत्य है उसका चिंतन करना चाहिए। ईश्वरचिंतन ही सच्चा चिंतन है। ऐसा सच्चा चिंतन मानवजीवन का लक्ष्य है। हरदम अभ्यास से कुछ भी सिद्ध हो सकता है। हरदम अभ्यास से ईश्वर और उनके रहस्य हम समझ सकते है। अभ्यास से ज्ञान मिलता है और अभ्यास से ही मनुष्य पूर्ण बनता है।

151. अन्न के बीज पेटी में रखकर बंध कर दें तो उसमे से ओर दाने नही बनेंगे लेकिन वही बीज भूमि में रखकर उगाया जैये तो हजारो दाने उगते है। एक ज्योति में से हजारो ज्योतियां पैदा होती है। एक पैड हजारो फुल खिलाते है। फूल की गति अधोगामी है। पैड की गति ऊर्ध्वगामी है।

स्पष्टीकरणः ज्ञानी को चाहिए की वो अपना ज्ञान अपने तक ही सीमित न रखें। उसे खुद को प्राप्त हुआ ज्ञान दूसरो को देना चाहिए और अन्य के द्वारा उसका सदुपयोग हौ। जीस तरह बीज पेटी में बंध करके रखने से उसमें कोई बीज अंकुरित नही होता लेकिन वही बीज अगर भूमि में डालकर उगाया जाये तो और योग्यरुप से उसको पनपने दिया जाये तो एक ही बीज में से हजारो बीज पैदा हौगे उसी तरह ज्ञान अन्य को देने से उसे हजार गुना बढा सकते है। एक ज्योति में से हजारो ज्योति प्रकट कर सकते है। एक सच्चा ज्ञानी हजारो ज्ञानी अपनी तरह पैदा कर सकता है। एक पैड़ हजारों फुल पैदा कर सकता है लेकिन फुल नष्ट हो जाते है और पैड जीवित रहता है। पैड जीसे मानव व्यवस्था में ऊर्ध्वगामी स्तर कहा जाता है क्योंकी उसका नाश नही होता। आत्मा के साक्षात्कार की स्थिति

शाश्वत है, जो समयातीत है, कारणातीत और अवकाशातीत है। आत्मा एक वास्तविक्ता है।

152. हम सोने का सिक्का भूमि में लगा दे फिर भी कभी अंकुरिता नही होता।

स्पष्टीकरणः मनुष्य में रहनेवाली ईच्छाएं पूर्णरुप से नष्ट हो जाये और ईश्वर का साक्षात्कार करने के बाद उसमें फिर से ईच्छाएं उत्पन्न नही होगी। एक बार ईश्वर का साक्षात्कार होने के बाद फिर से सांसारिक आकांक्षाएं उसमें अंकुरित नहीं होगी, जीस तरह सुवर्ण का सिक्का भूमि में लगाया जाये तो वह अंकुरित नही होगा उसी तरह आध्यात्मिक दशाओं में पूर्णत्व प्राप्त करने के बाद मनुष्य फिर से भौतिकता में उतर नही सकता।

153. जीवनहीन वस्तु आवाझविहिन होती है। वह स्थूल होती है। चेतनायुक्त चीज शब्दब्रह्मयुक्त होती है। ब्रह्मांड कुछ नहीं बल्की चेतना है। मनुष्य को घर बनाने से पहले उसकी बुनियाद बनानी पडती है और बाद में दीवारें बनानी चाहिए उसी तरह परिणाम बिना कारण नही हो सकता।

स्पष्टीकरणः जीवनविहिन चीज नादरहित होती है। वह स्थूल चीज होती है। जीवित चीज में शब्दब्रह्म है। जीवित चीज आवाझ पैदा कर सकती है। ब्रह्मांड ओर कुछ नही लेकिन चेतना है। जीसे हम सूक्ष्म चेतना (समाधि) के स्तर पहुंचते है तब ब्रह्मांड में चेतना का दर्शन करते है। हम घर बनाते है तो सर्वप्रथम उसकी बुनियाद बनाते है और बाद में दीवारें बनाते है। बुनियाद बनाना वह एक वजह है और मकान बनाना वह परिणाम है। आध्यात्मिक्ता में हमें पहले शुरुआत करने के लिए गुरु के

पास जाना पडेगा। ईसे प्रारंभ कहा जाता है और उसका परिणाम ईश्वर का साक्षात्कार है। गुरु के चरणो में बैठना वह कारण है और उनका प्रभाव आत्मा का साक्षात्कार है। ईस जगत में बिना कारण परिणाम संभव नहीं है।

154. जो लोग शरीर से अंध है उन्हें आकारो का ज्ञान नही होता। ऐसे लोगो के लिए रोशनी कोई मायने नही रखती। जीन लोगोने मन की गंदगी नष्ट की है, जीन लोगोने ईच्छाएं नष्ट की है ऐसे लोग स्वप्न के अधीन नही होते।

स्पष्टीकरणः शरीर से अंध व्यक्तिओ को आकारो का ज्ञान नही होता। ऐसे लोगो के लिए रोशनी कोई मायने नही रखती उसी तरह सांसारिक जीवन में मग्न लोगो को ईश्वर का ज्ञान नही होता। ऐसे लोगो के लिए ईश्वर के ज्ञान का मूल्य नही होता। वे ज्ञान के दिव्य तेज के लिए अंध होते है। ऐसे लोग अपनी अज्ञानता को ज्ञान समजते है। ऐसे लोग जीन्होंने मन की गंदगी (वृतियां) नष्ट की है, वे ईच्छारहित हो जाते है। ऐसे लोग स्वप्न के अधीन नही होते। वें परब्रह्म में शाश्वत तौर पर मस्त हो जाते है। वे बाह्य वृतियों के लिए उदासीन बन जाते है और आत्मिक तौर पर पूर्णरुप से जागृत हो जाते है।

155. जो लोग नासिका से सांस नही लेते उन्हें कीसी प्रकार की ईच्छाएं नही होती। वे अंदरुनी तौर पर सांस लेते है। वे अपनी सांस ब्रह्मरंध्र जो की ईडा और पींगला मिलती है तब केन्द्रीत करते है। उन्होंने ईश्वर की अनभूति की है। वे सभी चीजो को “आत्मा” ते तौर पर ही देखते है। ईसे “स्वराज” कहते है। स्वराज जीव का सही स्थान है। जीवन का

प्रकाश प्राणवायु है। प्राणवायु स्वराज की सरकार का मुख्य स्थान है। आत्मा स्वराज की सरकार की अधिष्ठाता है। स्वराज अर्थात व्यक्ति की खुद की शक्ति। आस शक्ति को पूर्णरुप से खुद के अंकुश में रखनी चाहिए। स्वराज कोई पहाडी नही है या सुवर्ण नही है। ईच्छा और क्रोध दोनो के अंकुशित करना वही स्वराज है। मनुष्य को खुद जो कहे वही करना चाहिए और जो करे वही कहना चाहिए।

स्पष्टीकरणः मनुष्य अपनी सांस नासिका से करे तो अपनी ईच्छाओ को अंकुशित कर सकता है। जो लोग बाह्य श्वसन क्रिया को नियंत्रित कर सकते है उन्हें कोई ईच्छा नही होती। प्राणायाम मतलब अंदरुनी सांस लेने की क्रिया। ऐसे लोगो का श्वसन पूर्णरुप से अंदरुनी होता है। ऐसे लोग अपनी सांसे ब्रह्मरंध्र में केन्द्रीत करते है। ब्रह्मरंध्र मे ईडा और पींगला का मिलन स्थान है। ऐसा करने से वे ईश्वर का साक्षात्कार कर सकते है। यह सब आत्मा है उसी तरह देखते है। वे सब में एक को और एक में सब को देखते है। यह सच्चा स्वराज है। स्वराज जीव का सही स्थान है और वह ह्रदयाकाश में है। जीवन की रोशनी प्राण है। प्राण के बिना शरीर में शक्ति नही होती। प्राणवायु ईस स्वराज की राजधानी है। आत्मा स्वराज की सरकार की अधिष्ठाता है। स्वराज अर्थात स्व की शक्ति को नियंत्रित करना। स्वराज कोई पहाडी या सुवर्ण नही है लेकिन अपने क्रोध और ईच्छाओं को नियंत्रित रखना वही है। स्वराज बाह्य क्रिया नही है लेकिन पूर्ण आत्मा की प्रक्रिया है। वासनाओ को मन से नियंत्रित करना वह है। करनी और कथनी में समानता हो वही है।

156.. अगर आप पानी से डरते हौ तो नदी को नांव में बैठकर पार नही करे सकेंगे। अगर आप आग से डरते हो तो पानी को गर्म नही कर

सकेंगे। मनुष्य को कुछ भी प्राप्त करना हो तो भय का त्याग करना चाहिए। कुछ भी सिद्धि प्राप्त करनी हो तो मनुष्य को नीडर बनना चाहिए। मनुष्य का मन वह जो कुछ भी करता है उसकी वजह है।

स्पष्टीकरणः हमे नदी को तैर जाने में डर नही लगना चाहिए। उसी तरह पानी को गर्म करने के लिए आग का डर नही होना चाहिए। हमे अगर कोई महासिद्धि प्राप्त करनी हो तो हमें नीडर बनना चाहिए। सफलता के लिए नीडरता अनिवार्य पूर्वशर्त है। आध्यात्म के उच्च शिखर को सिद्ध करने के लिए भी हमें नीडर नेता बनना चाहिए। ऐसी व्यक्ति को आत्मा की ऐसी शक्ति प्राप्त करनी चाहिए की वह सारे ब्रह्मांड का सामना कर सके। मन हम जो कुछ भी करते है उसकी वजह है। हम मन को जीतेंगे तो परमात्मा में एकाकार हो सकेंगे।

157. आम्रवृक्ष पर सभी फुल एकसाथ पकते नही है। सबसे पहले कच्चा आम बनता है और साथ में पक्का आम बनता है। पक्के आम खा सकते है। सभी बातो में शांति रखना हमे सिखना है।

स्पष्टीकरणः सब लोग एकसाथ मुक्ति प्राप्त नही कर सकते, जीस तरह सब आम एक साथे नही पकते। हर मनुष्य का स्वभाव अलग होता है। जीस तरह आमों में कच्चा आम प्रथम उगता है और साथ में अन्य आम पकते जाते है उसी तरह व्यक्ति के आत्मचक्षु खूलते है तब अपने दोष दिखने लगते है और सांसारिक गुण छोडता जाता है। वह मानव भी पक्के आम जैसा हो जाता है। उनके दूर्गुण राख हो जायेंगे और उसमे सुवर्ण रह जायेगा। मनुष्य को अपने चिदाकाश में सर्वोत्तम शांति प्राप्त करनी चाहिए। उसे शांति सब में और सर्वत्र देखनी चाहिए।

158. मनुष्य का मस्तिष्क आम जैसा है। उसमें मीठा अमृत है। अमृत पांचो ईन्द्रीयो का अर्क है। यह अमृतत्व मनुष्य में बसी उच्चतम शक्ति है।

स्पष्टीकरणः मनुष्य का मस्तिष्क पक्के आम जैसा है। मस्तिष्क ज्ञानामृत का स्थान है। मनुष्य कुंडलिनी जागृत करके और उसे चित्त की ओर ले जाता है तब चित्त में ज्ञानामृत का अनुभव होता है। यह अमृतत्व अर्थात कुंडलिनी शक्ति मनुष्य की पांच ईन्द्रीय का अंतःतत्व है। यह अमृतत्व मनुष्य में बसी सर्वोत्तम शक्ति है।

159. ऐसा घर की जिसमें रात के समय दीये की रोशनी नही है वह घर सुंदर नही लगता। घर का स्वरुप जो भी हो लेकिन वह नाशवंत है। दीया घर के लिए जो काम करता है वही काम "ज्ञान" शरीर के लिए करता है। रोशनी कुंडलिनी की है। किचड़ में छूपी चीज का कोई मूल्य नही होता। किचड में से मिले हिरे को हम फेंक नही देंगे।

स्पष्टीकरणः जीस तरह दीये की रोशनी बगैर घर सुंदर न लगे उसी तरह ज्ञान की रोशनी बना मनुष्य अच्छा नहीं लगता। घर कीसी भी प्रकार का और कीतना भी मजबूत हो लेकिन नाशवंत है। मनुष्य का शरीर कीतना भी सुंदर और मजबूत हो लेकिन नाशवंत है। शरीर शाश्वत नही है। दीया जीस घर के लिए है उसी तरह ज्ञान शरीर के लिए है। शरीर में जो प्रकाश है वह कुंडलिनी का होता है। मनुष्य में कुंडलिनी जागृत होनी चाहिए। यह हकिकत है की हर मनुष्य में दिव्य ज्योति होती है लेकिन वह वासना के मल से ढंक जाती है।जीस तरह किचड़ में छूपी चीज का कोई मूल्य नही होता उसी तरह सांसारिक जीवन की वासनाओ में अटकी आत्मा का कोई मूल्य नही होता। आत्मा जब वासना मुक्त हो जाये तब

वह उसके उच्चतम आत्मा के साथ प्रकाशित होती है और हरकोई उसका स्वीकार करता है। ऐसी आत्मा की वजह से जगत में सर्व का कल्याण होता है। जब हम असत्य मे रहे सत्य को जान लेते है, अंधकार में प्रकाश की अनूभूति करते है तब हमे उसे छोडेंगे नहीं। जब हमे आत्मा का साक्षात्कार करते है तब हम उसे छोड नही देते है। हमे किचड़ मे से भी हिरा मिलेगा तो फेंक नही देते है।

160. दुष्ट मनुष्य कूएं में गिरे तो हमे उसे डूबने नही देना चाहिए। हम ऐसा नही मानते की मनुष्य सदैव खराब ही होगा। हमे उसकी बूराईँयों को दूर कर के सत्मार्ग की ओर ले जाना चाहिए।

स्पष्टीकरणः कोई बूरा मनुष्य कूएं में गिरे तो हमे उसे डूबने नही देना चाहिए। हमे ऐसा मानने की जरुरत नही है की बूरा मनुष्य कभी सुधरेगा नही। कोई भी मनुष्य कितना भी खराब हो लेकिन हरदम बूरा नही रहेगा। कोई बी मनुष्य शाश्वत तौर पर बूरा नही होता। आज या कल उसमे सुधार आयेगा। मानवजीवन का लक्ष्य दिव्य जीवन की दिशा में प्रगति करना वह है। हमे बूरे मनुष्य को सुधारने के लिए हरदम प्रयास करना चाहिए और उसे सत्मार्ग पर ले जाने का प्रयास करना चाहिए।

161. हमारी आंखो में अगर पाउडर गिरता है तो हमारा ध्यान हमारी आंखो पर ही रहेगा उसी तरह हमारा ध्यान अंदरुनी बात पर जाता है तो वह आंतरद्रष्टि कहा जाता है। अज्ञान एक पाउडर रखने का बरतन जैसा है। पेटी के मालिक को पता ही होता है की उसमें क्या है। दूसरो को पता नही होता। सही संपति जीवन चेतना है। बुद्धि एक पेटी है। पेटी में संपति रखने के बाद उसे “ताला” लगा दीया जाता है। पेटी को ताला मारना मतलब

मानस को सही स्थान मस्तिष्क में दिलाना है। मनुष्य का यह पवित्र फर्झ है की उसे मिला हुआ धन वह दूसोरो को वापिस करे। यह मिली हुई चीझ है मनुष्य की आत्मा। आपकी आत्मा आप के अंदर बसे ईश्वर को वापिस करें। अंदरुनी तौर पर आप खुद के रहस्यो को समझे। ब्रह्मांड आप के अंदर है और आप ब्रह्मांड में हो। अंदर जो है वह सब में ररहता "एक" ईश्वर है। वह जो की यही पर है वह "एक" है और वही अन्यत्र भी है।

स्पष्टीकरणः अगर कोई पाउडर हमारी आंखो में गिरता है तो हमारा ध्यान उसी पर रहता है। उसी तरह हमारा ध्यान सांसारिक जीवन की वस्तुओ पर फैला हुआ होता है उसे अंदर की ओर केन्द्रीत किया जाये उसे आंतरदर्शन कहते है। अज्ञान वह पाउडर की पेटी की तरह है। जीसके पास वह है उसे ही पता होता है की पेटी में क्या है लेकिन दूसरो को माललूम

नही होता। हमारे अंदर कौन है वह हमें ही पता होता है। दूसरो को पता नही होता। सही संपति मनुष्य में रहनेवाली जीवन चेतना है। बुद्धि वह बंध पेटी है। ईस पेटी को उसके अंदर संपति रखी जाये तभी बंध की जाती है। ईस पेटी को ताला लगाना मतलब मन को उसका सही स्थान बताना वही है। हमे मन का सही स्थान मस्तिष्क में क्या है वह जानना चाहिए और मन को नियंत्रित करना चाहिए। ईस मन की पेटी में ताला मारना वही उसका अर्थ है। मनुष्य को मानव बनने के लिए अन्य से मिला हुआ वापिस करना वह उसका फर्झ है। यह चीज मतलब मनुष्य को मिली आत्मा है। हमे ईश्वर से मिली आत्मा जीससे मिला है उसे वापिस करना है। यह तभी संभव है अगर हम आत्म-साक्षात्कार करें।

162. तभी हम जहां से आये है वहां वापिस जा सकते है। हमे हमारे अस्तित्व का रहस्य ससमझना चाहिए। ऐसा होगा तभी ब्रह्मांड हमारे अंदर

रहेगा और हम ब्रह्मांड में होंगे। हमारे और ब्रह्मांड के बिच का फर्कक खतम हो जायेगा और ब्रह्मांड को नियंत्रित करती शक्ति को समझ सकेंगे और शरीर को नियंत्रित करनेवाली शक्ति भी वही है। अंदर रहनेवाला मानवी जीसके लिए आत्मा सभी में एकसमान होती है। फर्क सिर्फ बाहरी स्वरुपो में है। वह जहां पर है वह और यहां पर है वह दोनो एकसमान है। ईश्वर सर्वत्र फैले हुए है। उच्चतम प्रकाश वह ब्रह्मांड ज्योति है। हे मन! ईस द्वैतभाव को नष्ट करो और उसके साथ एकात्मक्ता का अनुभव करो।

स्पष्टीकरणः उच्चतम प्रकाश और ब्रहमांड ज्योति दोनो एकसमान है। ये दोनो एक ही चीज के दो अलग नाम है। हे मन! "दूसरेपन" को नष्ट करो। द्वैतभाव को नष्ट करो और उसके साथ एकात्मकता का अनुभव करो। हे मन! एक सब में, सब में एक को देखो! ईश्वर की चेतना का अनुभव सर्वत्र करो।

163. जब हमारा जन्म हुआ तब सांसो के साथ हम जन्मे थे। जब हम जगत का त्याग करेंगे तब हम सांसे छोड देंगे। यह मिट्टी का शरीर हमने नही बनाया है और अंतकाल में हम उसे साथ में नही ले जा सकते। शिव जो की चल और अचल चीजो में एकसमान है। सभी दूसरो में एकसमान शक्ति होती है। दूसरो में जो 'सूक्ष्म' शक्ति होती है वह एकसमान होती है। फर्क सिर्फ उसके सलुक में होता है। मन की भ्रमणाएं स्थायी नहीं होती लेकिन क्षणजीवी होती है। जीन चीजो को देखा जा सकता है और सुना जा सकता है वह क्षणजीवी होती है।

स्पष्टीकरणः प्राण मनुष्य की शक्ति है। मनुष्य जन्मा तब प्राण के साथ जन्मा था और देह छोड देता तब प्राण उसे छोड देता है। प्राण ही हमारा है, शरीर नही। यह शरीर हमने नही बनाया और अंतकाल में हम

उसे साथ नही ले जा सकते। ईसलिए हम शरीर छोड देते है तब उसे छोड के जाना पडता है। चल और अचल हर चीज में शिव ने रखा हुआ प्राण एकसमान है। फर्क सिर्फ बाहरी स्वरुपो का है। बीज में रहा सूक्ष्म तत्व एक ही है। मन की भ्रमणाएं स्थायी नही होती लेकिन क्षणजीवी होती है। सुना जा सके और देखा जा सके वह सब क्षणजीवी है। जो अद्रश्य और आवाझरहित (नादहीन) है वही शाश्वत सत्य है।

164. कीसी मनुष्य को हम शूद्र कहते है तब वह कुछ नही सिर्फ हमारे मन की भ्रमणा है। शूद्र या ब्राह्मिन के मुंह में वस्त्र एकसमान होता है। शूद्रने उपयोग में लिये हुए आसन को ब्राह्मिन स्पर्श नही करता और उसी आसन पर शूद्र के साथ बैठता नही है। कोई एक मनुष्य ईस तरह का बर्ताव शूद्रो के साथ करता है। दूसरे लोग उसे देखते है और उसका अनुकरण करते है।

स्पष्टीकरणः हम कीसी को शूद्र कहे तो वह ओर कुछ नही लेकिन मन की भ्रमणा है। शरीर के कार्य शूद्र और ब्राह्मिन के लिए एकसमान होते है। वस्त्र का टुकडा शूद्र या ब्राह्मिन के मुख में ठूंसा जाये तो एकसमान ही

होता है ब्राह्मिन शूद्र के दवारा उपयोग मे लिया गया आसन भी उपयोग में नही लेता है या उसके साथ बैठता बी नही है। यह सब मानसिक भ्रमणाएं है। हकिकत में अस्पृश्यता स्थूल शरीर की नही लेकिन अंदरुनी दुर्गुणो की है। मनुष्य ब्राह्मिन या शूद्र उसके अच्छे या बूरे गुणो से होता है। एक मनुष्य शूद्रने उपयोग में लिये हुए वस्त्र या बरतन को छूता नही है। दूसरा

उसे देखता है उसका एक अंध की तरह अनुकरण करता है। उसे उसकी सही वजह का पता भी नही होता। दुनिया में ऐसा सब कुछ आम तौर पर

होता रहता है। प्रकृतिने हमे तर्कबुद्धि दी है लेकिन हम उसका सही उपयोग नही करते।

165. जो लोग दूसरो को शूद्र कहते है वे खुद शूद्र है। केले के पौधे की कलम हो और उसमें से अनेकविध खाद्य पदार्थ हम बना सकते है। केला एक फल है और उसके टुकडे करके उसे तला जाता है तो उसे केला नही कहा जाता। उसे हम 'वेफर' कहते है। उसी तरह केले में से बनी अनेकविध सामग्री के नाम अलग अलग होते है। शुरु में एकसाथ सब केले होते है लेकिन खाद्य सामग्री बहूत सारी बन सक्ते है। मूल स्वरुप एक ही है उसी तरह सब जीवो में 'ओमकार' नाद एक ही है।

स्पष्टीकरणः शूद्र वे लोग है जो दूसरो को शूद्र कहते है। मनुष्य ईश्वर में से पैदा हुआ है और अंततोत्वा ईश्वर में विलीन हो जानेवाला है। जाति का फर्क क्षणजीवी है। केले की शाखा एक हो तो उसमें से अनेकविध खाद्य सामग्री बनेगी। केला एक फल है लेकिन उसके टुकडे करके तला जाये तो उसे हम केले की वेफर कहते है उसी तरह केले के अनेकविध व्यंजनो को हम केला नही कहते उसी तरह मूल स्वरूप एक ही है। एक अविभाज्य ईश्वर में से वैविध्यपूर्ण ब्रह्मांड का जन्म होता है। हम देखते है की वह विविधता देखनेलायक है। ईस सारी सृष्टि में प्रछन्न एक्ता है। एक्ता में विविधता का साक्षात्कार करना वह मानवजीवन का लक्ष्य है। ओमकार का नाद सभी प्राणीओं में एकसमान है। ओमकार एक अविभाज्य और शाश्वत है। ओमकार सारे विश्व में व्याप्त है।

166. एक रेलवे स्टेशन है, जहां चार रेलवे लाईनें मिलती है। एक ट्रेन कोलकता जा रही है। एक मुंबई जा रही है। तीसरी मद्रास जा रही है और

चौथी एक अन्य स्थान पर जा रही है। ये सभी ट्रेने एक स्टेशन से चलती है और एक ही स्टेशन पर ही पहुंचती है। माया हमारे अंदर से पैदा होती है और हमारे अंदर ही अस्त होती है। माया वह दूध में रहे मख्खन जैसी होती है। मख्खन दूध में से पैदा होता है और दूध में पिघल जाता है। महान संतो के कथन दीर्घकाल तक प्रवर्तमान रहते है, उसे सुननेवाला कोई न हो तो भी चिरंतन रहते है।

स्पष्टीकरणः एक रेलवे स्टेशन ऐसा हो की जहां चार रेलवे लाईने मिलती हो उसमें से एक कोलकता जाती हो, एक मद्रास जाती हो और एक मुंबई जाती हो और चौथी अन्य स्थान पर जा रही हो उसी तरह माया की शुरुआत मनुष्य से होती है और अंतकाल में उसी में ही विलीन हो जाती है। माया के आगमन और निर्गमन दोनो में ईश्वर की उपस्थिति है। माया को आत्मा में विलीन करनी है, जहां से उसका उद्‌भव हुआ था। माया दूध में रहते मख्खन जैसी है। जो दूध में से नीकलती है और दूध में विलीन हो जाती है ऐसा ही मनुष्य का माया का है। संतो के कथन लंबे समय तक रहते है। उसे सुननेवाला कोई न हो तो भी वे ब्रहमांड में आंदोलन के स्वरुप में रहते है। संतो के कथन कभी निरर्थक नही होते।

167. एक मैदान था वहां यात्रीओ के लिए आवास बनाया गया। दो दिन भी नही बीते की वहां पर मिटींग का आयोजन हुआ। चूने का उपयोग पत्थरो को जोडने के लिए किया गया था। सभी दीवारों को चूने के सफेद रंग से रंगी गई। चूने से जीस दिन दीवारें रंगी गई तभी बैठक रखी गई। एक मजदूर को मिटींग में आते लोगो को चेतावनी देने के लिए रखा गया था। जीसका काम लोगो को पांव और शरीर पर चूना न लगे उसके लिए अग्रीम चेतावनी देने का था। मिटींग खत्म हुई। लोग घर चले गये लेकिन

मजदूर वहीं पर रहा। ईस बंगले में बाद में भी बहुत सारी मिटींगें हुई लेकिन मजदूर को कहनेवाला कोई नही था की तुझे सिर्फ निश्चित वेतन पर रखा गया है। अब तेरा समय खत्म हुआ है तुं तेरा वेतन लेकर जा सकता है। ज्ञानी भी ईस दुनिया के लोगो के बीच ऐसा ही है। ईस दुनिया में ऐसे कईं लोग है जो बंगला में रहते लोगो के जैसे होता है। उन्हें 'सूक्ष्म' का ज्ञान नही होता। उन्हें कर्म क्या है उसका भी ज्ञान नही होता। ईसलिए ही ईस दुनिया की तुलना बंगले के साथ की गई है।

स्पष्टीकरणः ज्ञानीओ की ईस दुनिया के लोगो में पर्याप्त दरकार ली नही जाती। ज्ञानी लोग जगत में रहकर अपना फर्ज़ बजाते है। वे अपना फर्ज़ फल की आशा किये बिना बजाते है। वे हरदम शाश्वत सत्य बातो को लोगो के समक्ष रखते है लेकिन दुन्यवी लोग उनके कहने पर लक्ष नही देते। लोगो को कर्म क्या है उसका ज्ञान नहीं है। जगत की तुलना बंगले के साथ की जाती है। जगत की तुलना बंगले के साथ, लोगो की तुलना मिटींग में आये लोगो के साथ की जाती है। एक सपाट मैदान में बंगला बनाया गया है। दो दिन बीते नही की वहां पर मिटींग रखी जाती है। चूने का उपयोग मकान के पत्थरो को जोडने के लिए किया गया है। मकान के सफेद रंग का चूना लगाया गया। चूना लगाया तब मिटींग रखी गई। एक मजदूर को लोग मिटींग में आये उन्हें चूने की चेतावनी देने के लिए रखा गया है, जीससे लोगो के पांव और शरीर पर चूने के दाग न पडे। यह मजदूर मतलब की ज्ञानी है, जो लोगो को सांसारिक जीवन की त्रुटीओं की ओर चेतावनी देने का काम करते है। ज्ञान लोगो को सांसारिक जीवन की बातें क्षणजीवी है ऐसा बताकर चेतावनी देते है, जो नाशवंत है वह लोगो को ईश्वर के परमसुख के लिए ज्ञान देते है। मिटींग खत्म हो और लोग

घर की ओर जाते है लेकिन मजदूर वहीं पर खडा रहा। उस बंगले में अनेक मिटींग हुई लेकिन मजदूर को कहनेवाला कोई नही होता की तु अपना वेतन लेकर चला जा। तुम्हारी सेवा की जरुरत नही है। फिर भी मजदूर अपना फर्झ बजाता रहता है। ज्ञानी भी ईस दुनिया के लोगो में मजदूर जैसा है। ईस दुनिया के बहुत सारे ललोग बंगले में रहते लोगो की तरह जैसे होते है। उन्हें सूक्ष्म का ज्ञान नही होता। उन्हें कर्म क्या है वह भी पता नही है। कर्म वह है जो निरपेक्षभाव से किया जाये।

168. उसी तरह हमे सभी बातो की समझ प्राप्त करनी चाहिए। एक चीज स्थिर खडी है। दूसरी काम करती है। सब एकदूसरे का अनुसरण करते है। वे न्याय और अन्याय दोनो से अज्ञात होते है। न्याय क्या है वह समझने के बाद अन्याय के सामने झूकेगा नहीं। न्यायपूर्ण व्यक्ति के लिए अन्याय करना मुश्किल है। ऐसा मनुष्य कभी जूठ नहीं बोलेगा। भले ही उसकी जीभ तूट जाये। अन्यायी व्यक्ति को सब चाहिए होता है। न्यायपूर्ण व्यक्ति को कुछ भी नही चाहिए। वह कभी कीसी से डरता नही है। अन्यायी व्यक्तिओ के मन जगत की गूत्थी में फंसे रहते है। हर व्यक्ति का फर्झ है की न्याय क्या है और अन्याय क्या है।

स्पष्टीकरणः मनुष्य को न्याय और अन्याय क्या है उसकी समझ होनी चाहिए। यह ज्ञान बिना का मनुष्य दूसरे का अनुसरण करेगा। ईस जगत में बहुत सारे लोग दूसरे का अनुसरण करते है। न्यायपूर्ण व्यक्ति को अन्याय करना मुश्किल है तो अन्यायी व्यक्ति को अन्याय करना आसान होता है। सच्चा मनुष्य कभी जूठ नही बोलेगा भले उसकी जीभ के टुकडे जूठ न बोलने के लिए हो जाये। अन्यायी और जूठे लोग हरदम सांसारिक जीवन मे मग्न रहते है। नजर से दिखता है वह सब उन्हें चाहिए होता है।

सच्चा मनुष्य ईच्छारहित होता है। उसे कुछ नही चाहिए। उसे कीसी का भय नही लगता। सारे विश्व में समा हुआ है। उसे सांसारिक जीवन की कोई खेवना नही होती। हमारा पवित्र फर्झ है की क्या न्यायपूर्ण है और क्यां अन्यायपूर्ण है है और वह हमारे आत्मा की पहचान करने का है।

169. नदीयां और नालें सागर में मिलते है और सागर में एकाकार हो जाते है। उसी तरह क्षणजीवी चीजे अनंत चीजों में एकाकार हो जाती है। द्वैतभाव एक ईश्वरभाव में पिघल जाता है। एक ईश्वरवाद मतलब एकात्मवाद। ईस एकात्मभाव की अनुभूति श्रेष्ठ है।

स्पष्टीकरणः अंतवाली (क्षणजीवी) चीजें अनंतवाली चीजों में एक हो जाती है। उसी तरह जैसे की नदीयां और नालें समुद्र में विलीन हो जाते है। उसी तरह अंतवाला यह जगत अनंत ईश्वर में अंत समय पर एकाकार हो जाते है। द्वैतभाव है वह एकेश्वरवाद में विलुप्त हो जाता है। सब एक हो जाता है और एक सर्व बन जाता है। एकेश्वरवाद मतलब ईश्वर की अनुभूति सभी में करनी चाहिए। अनुभूति वह श्रेष्ठ चीज है।

170. एक बार ईश्वर के साथ मानवी एकाकार हो जाये बाद में उसका पुर्नजन्म नही होता। जो लोग ईश्वर में तद्रूप हो जाते है तो वे जब चाहे तब देह त्याग कर सकते है। ऐसे लोग ईच्छारहित होते है। ईश्वर के साथ एकात्मभाव बनाना बहूत ही सूक्ष्म बात है। अविभाज्य द्रष्टि की अनुभूति मतलब सभी में आत्मा की अनुभूति करना वह है। यह समता मतलब बहूत में आत्मा की अनुभूति करना वह है। ईसे आंतरदर्शन कहा जाता है। यह लोक और परलोक जब ईसी जीवन में एकरूप हो जाते है तब अविभाज्य द्रष्टि सिद्ध हो जाती है। ईसे जीवात्मा और परमात्मा का मिलन

कहते है। जीव मतलब मनोवृतियां। परमात्मा अर्थात गाढ मौन जो तीन गुणो से पर होते है। वे खराब और अच्छा कुछ समझते नहीं, गर्मी-ठंड से पर होते है वह गुणरहित है, स्वरूपहीन, शून्य है।

स्पष्टीकरणः मनुष्य जन्ममृत्यु के चक्कर में से जब उसे सब में एक का अनुभव होता है तब मुक्त हो जाता है। जो लोग अचल तौर पर 'एक' के भाव में स्थिर हो जाते है तब वे चाहे तब मर सकते है। ऐसे लोग ईच्छारहित होते है। बहुत में एक की अनुभूति बहूत ही सूक्ष्म चीज है। वैविध्य में एक्ता का अनुभव करना वह मानवजीवन का लक्ष है। एक द्रष्टि मतलब सभी में आत्मा का अनुभव करना वह है। आंतरदर्शन मतलब ईश्वर का दर्शन सर्व बातो में करना वह है। ईसे जीवात्मा और परमात्मा का एकत्व कहा जाता है। जीवात्मा और परमात्मा (स्पिरिट) मूलतः एक ही है फिरभी जीव का अस्तित्व अलग होता है। खास तौर पर तब जब की वह सांसारिक वृतियों में मस्त होते हैं। परमात्मा प्रगाढ मौन है जो की तीन गुण-सत्व, रजस, तमस से पर होते है। उन्हें बूरा-अच्छा, गर्मी-ठंड कीसी बात की अनुभूति नही होती। परमात्मा सर्वोपरी है। वह सही अर्थ में स्थितप्रज्ञ है, वह गुणरहित, स्वरुपरहित शुद्ध स्ववरुप है।

171. सर्दी की ठंड में शरीर को जीस तरह ढंका जाता है उतनी ही ज्यादा ठंड लगती है। जो लोग अपने शरीर को सजाते है वे ज्यादा से ज्यादा गर्व का अनुभव करते है। हमारे अंदर से अहं को नष्ट करना आसान नही है। चित्त (हृदय) के अंदरुनी भाग में जीतना भी चूना लगाकर सफेद करने की जरुरत है उतनी जरुरत बाहरी ओर नही है। बाह्य स्वच्छता अन्य को दिखाने के लिए है। अंदर की स्वच्छता आत्मकल्याण के लिए होती है।

स्पष्टीकरणः हमे ईन्द्रियो का जीस तरह लालनपालन करते है उतनी ही वे हमे ज्यादा पीडा देती है। ठंड मे ज्यादा से ज्यादा गर्म वस्त्र पहनते है तो ठंड ज्यादा लगती है। ईन्द्रियों को अकतरफ मानकर उन्हें नष्ट करनी (नियंत्रित करनी) चाहिए। शरीर के बाहरी आवरण कुछ के काम के नहीं है। हमारे लिए शरीर के अहं को मिटाना बहूत ही कठिन है। सफेद रंगकाम शरीर का नही लेकिन चित्त की दीवारो का करना है। बाहरी शुद्धता दूसरो को दिखाने के लिए है लेकिन अंदरुनी शुद्धता स्व-कल्याण के लिए है। अंदरुनी शुद्धता मनुष्य के लिए जरूरी है। बाह्याचार नही लेकिन मन शुद्ध रखना है। ईसी से ही ईश्वर की अनुभूति करना संभव है।

172. वह सर्व में व्याप्त है। वह सभी जीवो में व्याप्त है। वह सभी गुणो में व्याप्त है। वह ओमकार है। जीसका स्वरुप अविनाशी शांति है वह उसके पर श्रद्धा रखनेवालो का परमहितकारी है। यही ईश्वर उनके भक्तो को पीडा देनेवाले को सजा भी देता है। वह उनके भक्तो की मृत्यु आसान करता है। हे शिव, मुझे नर्क की ओर मत ले जाना लेकिन आपकी ओर खींचे। शिव दाता है।

स्पष्टीकरणः ईश्वर सर्व व्यापक है। वह सर्व जीवो में व्याप्त है। वह एक गुणरहित ओमकार है। उसका एकमात्र स्वरुप अविनाशी शआंति है। उनके पर श्रद्धा रखनेवालो का वह परमहितकारी है लेकिन उनके भक्तो के द्रोहीओ को वह सजा भी देता है। उनके भक्तो की मृत्यु को सरल और पीडारहित करते है। हे शिव, हमें नर्क की ओर मत ले जाना, हम आपकी शरण में रखना। आप परमकृपालु दाता हो।

173. मृतक चीज में गति नहीं होती, वह आवाजरहित होती है तो जीवित चीजो को आवाझ की भ्रमणा होती है। उसमें चेतना होती है। सजीव प्राणीओ में हुलिया और गति होती है। आवाझ से सचेत जीवो को आवाझ की भ्रमणा होती है। उनमें ब्रह्म प्रकाश होता है। प्राणीओ की सचेतन अवस्था में प्रकाश है। मानवी को न्याय और अन्याय की अनुभूति होती है। निम्न श्रेणी के प्राणीओ में ईस तरह के भेद नही होते। मनुष्य सृष्टि के सर्व प्राणीओं में श्रेष्ठ है। मनुष्य के लिए ईस जगत में कुछ भी असंभव नही है। मनुष्य ब्रह्मांड मे है और ब्रह्मांड मनुष्य में है। मनुष्य प्राणीओ में श्रेष्ठ प्राणी है लेकिन मनुष्य का दीमाग चंचल है। मनुष्य में आलोक और परलोक दोनो एकाकार हो जाते है। शिवलोक दीर्घचक्षु है। शिवनाडी मतलब सुषुम्णा नाडी और वह ब्रह्मनाडी कही जाती है। शिवलोक के देवता ओर कुछ नही लेकिन शिवशक्ति है। माया शिव में है। सर्जन और विनाश शिव की माया है। ब्रह्मा में सभी प्रछन्न शक्तियां है। आत्मा, ब्रह्मा, जागृति चेतना, तर्क, निद्रा, धरि, अज्ञान सारा बाहरी जगत उसमें समाया है।

स्पष्टीकरणः मनुष्य में रहे प्राणो की वजह से उसमे गति होती है। मृतक चीजो में गति नहीं होती। वह आवाझरहित है। जीवित चीजो में चेतना होती है और वह मानवमन की भ्रमणा है। सचेत प्राणीओ की परछाई और गति होती है। उनमें विचारशक्ति होती है। प्राणीओ आवाझ से सचेत होने की वजह से उनमें आवाझ की भ्रमणा होती है। मनुष्य में रही चेतना या सचेतन अवस्था उनमे रहनेवाला ब्रह्मप्रकाश है। मनुष्य न्याय और अन्याय का फर्क समझ सकता है। निम्न कक्षा के प्राणीओ के लिए यह शक्ति नही होती। सृष्टि के सृजनकर्ता का मनुष्य श्रेष्ठ और उत्तम प्राणी है। उसमें निर्भिक्ता हो तो जगत में कुछ भी सिद्ध करना उसके लिए

असंभव नही है। मनुष्य ब्रह्मांड में है और ब्रह्मांड मनुष्य में है। मनुष्य ब्रह्मांड को नियंत्रित करती शक्ति का विकास अपनेआप में कर सक्ता है और उसके साथ एकाकार हो सकता है लेकिन मनुष्य का मन चंचल है। मन की चंचलता का नाश होना चाहिए और मन परब्रह्म पर केन्द्रीत होना चाहिए। मनुष्य ईस जीवनकाल में ही अभ्यास से मोक्ष की प्राप्ति कर सक्ता है। मोक्ष मतलब क्या? तो कहा जाता है की आलोक और परलोक दोनो को ईस जन्म में एक करना मतलब मोक्ष। शिवलोक मनुष्य का दिव्य चक्षु या तृतिय आंख है। शिवनाडी मतलब सुषुम्ना नाडी या जीसे ब्रह्मनाडी भी कहा जाता है। शिवशक्ति मतलब शिवलोक के देवता। माया शिव में है लेकिन शिव माया में नही। माया का उद्भव शिव में हुआ है लेकिन शिव का उदभव माया में हुआ नही है। माया का स्तर शिव से नीचा है। सृजन और विनाश दोनो माया, शिव के दवारा पैदा होती है। शिव की प्रच्छन्न शक्ति ही सब करती है। जीसका सृजन-विनाश नही हो सकता। परमात्मा में ही सब छूपा हूआ है। प्रभाव, आत्मा, मानस, ब्रह्मा, जागृति चेतना-तर्क, निद्रा, प्रगाढ निद्रा और सारा बाहरी विश्व सब है। परम ब्रह्म के साक्षात्कार से मनुष्य को सब उसमें एकाकार कर देना चाहिए। ईस स्थिति का साक्षात्कार हो तब सब शून्यवत्त हो जाता है। सब वही रहता है।

174. सत्य की शोध के लिए सूक्ष्म विवेक जरूरी है। यह सूक्ष्म विवेक उपधि है। सूक्ष्म है वह स्थूल में छूपा है। उपधि का स्थान ह्रदयाकाश है। कुंडलिनी को चिदाकाश में प्रस्थापित किया जाये तब सांसे एक हो जाती है। यह उच्चतम स्थिति में ब्रह्मांड अपनी आत्मा में दिखाई देता है और तब व्यक्ति सब उसी में देखता है। सभी तरह के परिवर्तन आत्मा में दिखाई

देते है। द्वैतभाव का अनुभव करना वह नर्क के समान है। पूर्ण एकत्व का भाव वह मुक्ति है। पूर्ण भक्ति वह मुक्ति है। पूर्ण शांति, अवरोधरहित शांति वह मनुष्यजीवन का लक्ष्य है। यह योगानंद ही परमानंद है। महासागर सभी नदीयों से बडा होता है। महासागर की सीमा नहीं होती। महासागर के जल को नापना असंभव है। संसार को त्याग कर भक्ति करना संभव नहीं है। हमे संसार में रहकर मुक्ति प्राप्त करनी है और वह संसार में रहकर भक्ति करते करते, ईच्छा अर्थात संसार! ईच्छारहित दशा मतलब मुक्ति। मुक्ति मिले तो परमानंद मिलेगा, शाश्वत ज्ञान (समझदारी) मिलेगी। शाश्वत शांति वह उच्चतम सुख है की वह मनुष्यजीवन का लक्ष है। जब मन शाश्वत सुख में तैरता हौ तब उसे मुक्ति कहा जाता है। भक्ति शाश्वत सुख की स्थिति है।

स्पष्टीकरणः ईश्वर के साक्षात्कार के लिए सूक्ष्म विवेक जरूरी है। सूक्ष्म विवेक मतलब उपधि। सूक्ष्म है वह स्थूल में छूपा है। ईश्वर सूक्ष्म है, ईसलिए वह जगत की हर स्थूल बातो में समाया है। सूक्ष्म विवेक का मूलस्थान ह्रदयाकाश (चिदाकाश) है, जब कुंडलिनी को चिदाकाश में मस्तिष्क तक ले जाया जाता है तब सांसे एक ही रहती है और उसे अंदरुनी सांस कहते है। यह उच्चतम स्थिति तब ब्रह्मांड हमारे अंदर रहता है। हम एक परम शक्ति का विकास करेंगे, जीससे ब्रह्मांड टीका रहता है। ऐसी स्थिति में हम सब कुछ हमारे अंदर देख सकते है। सब तरह के अलग अलग परिवर्तन हमारे अंदर देख सकेंगे। ऐसी स्थिति में जगत की सभी घटनाएं हमारे चित्त में देख सकेंगे। सृष्टि के विनाश और सृजन दोनो को चिदाकाश में देख सकेंगे। द्वैतभाव से बडा नर्क कोई नही है। एकात्मभाव वह मुक्ति है। अचलतापूर्ण भक्ति वह मुक्ति है। भक्ति वह

ईश्वरप्राप्ति का साधन नही लेकिन साध्य है। सच्ची भक्ति अर्थात निर्मल प्रेम। मानवजीवन का लक्ष्य शाश्वत शांति-अंतरायरहित शांति है। शाश्वत शांति मतलब योगानंद और वही है परमानंद। महासागर जगत की सभी नदीयों से बडा है। महासागर की सीमाएं नही होती। महासागर के जल को नांपना असंभव है। उसी तरह ईश्वर मनुष्य की बुद्धि से पर है। ईश्वर हमारी समझ से बहूत ज्यादा महान है। संसार को त्यागकर भक्ति करना संभव नही है। संसार में रहकर ही ये किया वह किया करके ही मुक्ति प्राप्त होती है। संसार की नदी में भीगकर ही नदी के पार जा सकते है। संसार की नदी को पार करने के लिए उसके अंदर तैरना जरुरी है। संसार मतलब ईच्छाएं। मुक्ति अर्थात ईच्छारहित दशा। मुक्ति प्राप्त होती है तभी हम शाश्वत सुख का आनंद प्राप्त कर सकते है। शाश्वत शांति मतलब परमसुख। मनुष्य का जीवन लक्ष्य है। मानवमन जब शाश्वत शांति के महासागर में तैरता हो तब उसे मुक्ति कहा जाता है। भक्ति उसी तरह शाश्वत सुख की स्थिति है।

175. ईश्वर सुख है। ईश्वर में सुख है। वह समझदारी का अमृत है। ईस अमृत में आनंद है। जब हम ईस अमृत तक पहुंचते है तब आनंद की अनुभूति होती है।

स्पष्टीकरणः ईश्वर सुख है और सुख ही ईश्वर है। यह सुख मतलब समझदारी का अमृत। वह समझदारी का फल है। यह अमृत मतलब दूसरा कुछ नहीं लेकिन आनंद है। जब हमे उच्चतम ज्ञान की प्राप्ति हो तब यह परमानंद की अनुभूति हमे होती है। यह सुख से ज्यादा उंचा सुख जगत में ओर कोई नही है।

176. मनुष्य का जीवन लक्ष्य उपनयन मतलब 'अमृत्मता' की ओर ले जाना वह है। चित्त का गुफा में रहना वह मानवजीवन का लक्ष्य है। गुफा में रहना मतलब शरीर में रहना ऐसा अर्थ होता है।

स्पष्टीकरणः मनुष्य (प्राण) का ध्यान हरदम बाहरी शरीर पर केन्द्रीत होता है लेकिन जब वह ध्यान अंदरुनी बातों की ओर ले जाते है तब मनुष्य सर्वोत्तम सुख का आनंद प्राप्त कर सकता है। ईसे 'उपनयन' कहा जाता है। ह्रदयाकाश में रहना वह मनुष्य का लक्ष्य है। गुफा में रहना अर्थात शरीर में रहना वह है। मनुष्य को सचेतना के आकाश में एक होकर रहना चाहिए।

177. अविरत तरीके से मनुष्य के जीवात्मा में रहनेवाले परमात्मा का निरंतररुप से ध्यान करते रहें। जीसे 'आकाश' कहा जाता है वह हमारे 'चित्त' में है। हम अविरत भाव से 'चिदाकाश' पर ध्यान केन्द्रीत करें। यह सही ध्यान है।

जीवात्मा ही परमात्मा। हमारे जीवात्मा में बसे परमात्मा का निरंतर ध्यान करते रहे। 'आकाश' जीसे कहते है वह हमारे 'चित्त' में है। हमे अविरत तरीके से 'चिदाकाश' पर ध्यान केन्द्रीत करना चाहिए। यही सच्चा ध्यान है।

178. जो लोग जन्म से ही बहेरे होते है उन्हें आवाझ का कुछ पता नही होता। उन लोगो को कोई ईच्छाऐं नही होती। उनमें सूक्ष्म विवेक होता है। जो लोग योग निंद्रा मे होते है उन्हें कभी रात-दिन, सूर्य-चंद्र का फर्क मालूम नहीं होता। जीन लोगो नें मन को जीता है वे 'मानव' है। निम्नस्तर के प्राणी उन्हें कहा जाता है जीनका मानसिक विकास कम हुआ है। कामी

जीवन पशु का जीवन है। सांसो का ऊर्ध्वीकरण मनुष्यजीवन का लक्ष्य है। वही गायत्री है और वही सिद्ध हो तब योग सुख है।

स्पष्टीकरणः ज्ञानी लोग सदैव समाधि में रहते है। उन्हें रात-दिन, सूर्य-चंद्र में फर्क मालूम नही होता। जो मनुष्य जन्म से ही बहेरे है उन्हें आवाझ क्या है वह पता नही होता। उन लोगो को कोई ईच्छा नही होती। उनमें सूक्ष्म विवेक होता है। ज्ञानीओं को कोई ईच्छाएं नही होती और द्वैतभाव नष्ट हो जाता है। सब कुछ सूक्ष्म विवेक की वजह से एक हो जाता है। फर्क सिर्फ स्थुल स्वरूप का होता है। मानव वह है जो अपने मन को नियंत्रत करता है। प्राणीओ मनुष्य से नीचली कक्षा में ईसलिए गिना जाता है की विकास के नीचले स्तर में होते है। कामी जीवन पशु का जीवन है। सांसो को ऊर्ध्व दिशा में ले जाया जाता है और तब परमसुख सिद्ध होगा। परमसुख वह है जीसे 'योग सुख' कहा जाता है।

179. जीसने मन को जीता है वह जगद्गुरु है। जो ईच्छाओ के मूल और शाखाओ को नष्ट करे वह सब का गुरु है।

स्पष्टीकरणः वह मानवी जगदगुरु है जीसने अपने मन को जीता है। गुरु बनने के लिए मनुष्य को अपनी ईच्छाएं जला देनी चाहिए। ईच्छा की पतली परत होती है जो की जीवात्मा को परमात्मा के साथ एक होने से (पैसा) रोकती है।

180. सच्चा संन्यासी वह है, जीसने अपनी ईच्छाएं जला दी हो। वह जगदगुरु है। जीन लोगोने अपनी ईच्छाओ का दहन किया है उनमें ब्रह्मांड है। 'आकाश' मतलब संन्यास। वही प्रकाश है और वही चेतना है। वही दिव्य

प्रकाश है। बाहरी और अंदरुनी अग्नि है। वही सूक्ष्म विवेक का अग्नि है। सूक्ष्म विवेक की शक्ति ब्रह्मांड में है।

स्पष्टीकरणः सच्चा संन्यासी है वह अपनी ईच्छाएं जला देता है। ऐसा ही संन्यासी जगद्‌गुरु कहा जाता है। ऐसे मानवी में ही ब्रह्मांड है। ऐसे लोग अपनेआप में ऐसी शक्ति का विकास करते है, जीससे ब्रह्मांड को नियंत्रित कर सके। संन्यास आकाश की तरह शुद्ध हौता है। संन्यास दाहरहित होता है। संन्यास आकाश की तरह ब्रह्मव्यापी होता है। संन्यास एक प्रकाश है। संन्यास मानवी को बाहरी जगत के गढ्ढेवाले रास्तों पर से ईश्वरसाक्षात्कार तक सुरक्षित तौर पर पहुंचा देता है। संन्यास सचेतन अवस्था है। संन्यास से हम ऐसी स्थिति में आ सकते है जो हमें परम चेतना तक ले जायेगी। संन्यास दिव्य प्रकाश है। वह बाह्य और अंदरुनी जगत दोनो के लिए है। संन्यास सूक्ष्म विवेक का अग्नि है। सच्चे संन्यास से ईस जगत में "सब" (अर्थात ईश्वर) की प्राप्ति होती है। सूक्ष्म विवेक की शक्ति ब्रह्मांड (परम) में है।

181. अग्नि मूलतः अंदरुनी चीज है। अग्नि सभी में श्रेष्ठ है। समग्र सृष्टि का मूल अग्नि है। प्रथम हमे साक्षात्कार करना चाहिए और बाद में उसका लाभ अन्य को देना चाहिए। हमारा मनुष्य के तौर पर उच्चतम फर्झ है। जब आपको दुःख की अनुभूति होती है तब उस चीज का ख्याल रखना है की दूसरो को हमारे जैसा ही दर्द होता है। अगर आप को भूख की अनुभूति होती है तो दूसरो को भी आपकी तरह भूख लगती है। हमें यह सोचना चाहिए की हमारा लक्ष्य वह दूसरो का भी लक्ष्य है। जो डोक्टर कोई दवाई जानता हो और दूसरे को मृत्यूपर्यंत बताता है तो वह मनुष्य नही कहलायेगा। विश्व का उच्चतम ज्ञान ईश्वर का ज्ञान है। यह ज्ञान अन्य को

देना चाहिए, जीससे वे समझे की भूखेलोगो को अन्न देना चाहिए। ईश्वर के बारे में आपको कोई कभी तब तक नही पूछेगा जब तक उसके पास विवेकबुद्धि न हो।

स्पष्टीकरणः अग्नि एक अंदरुनी बात है। अग्नि अर्थात ज्ञान का अंदरुनी अग्नि। अग्नि विश्व की सबसे महान चीज है। सृष्टि की जडें अग्नि में है। मनुष्य का सबसे महत्वपूर्ण फर्झ अपनेआप को ईश्वरसाक्षात्कार कराना है और उसकी अनुभूति दूसरो को कराना है। जब हमे भूख की अनुभूति होती है तब हमें यह ख्याल रखना चाहिए की दूसरो को भी भूख लगती है। जब हमें दर्द की अनुभूति होती है तब दूसरो को भी हमारी तरह दर्द होता है। हमें ये सोचना चाहिए की हमारा जो लक्ष्य है वह दूसरे का भी लक्ष्य है। जीस तरह हम खुद का अनुभव करते है उसी तरह दूसरे लोगो को भी हमारे जैसा समान मानना चाहिए। हमे ईश्वर के साथ एकाकार होना है। कोई डोक्टर दवा का ज्ञान रखता है और मृत्युपर्यंत दूसरो को बताये नही उसकी मृत्यु के साथ विश्व के मिलनेवाला लाभ नष्ट हो जायेगा। उसी तरह हमने प्राप्त किया हुआ ज्ञान हम दूसरो को न दे तो वह भी हमारे साथ ही नष्ट हो जायेगा। अगर हम ईश्वरसाक्षात्कार का ज्ञान प्राप्त करते है और दूसरो को नही देंगे तो हम मनुष्य नहीं है। ईश्वर का ज्ञान वह श्रेष्ठ ज्ञान है। यह ज्ञान प्राप्त करने के बाद दूसरो को देना चाहिए। जो भूखे है उन्हें अन्न देना चाहिए। उसी तरह (स्पिरिच्युअल) आध्यात्मिक ज्ञान दूसरे ज्ञानपिपासुओ को देना चाहिए। ईश्वरप्राप्ति की ईच्छा हो उसके सिवां ईश्वर के लिए कोई पूछता नही है। सूक्ष्म विवेक रखनेवाला व्यक्ति ही ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रयास करता है।

182. प्रथम आवश्यक्ता श्रद्धा की है। दूसरी आवश्यक्ता भक्ति है। जीन लोगो को श्रद्धा न हो उनमें भक्ति नही होती। न्यायाधीश प्रतिवादी को भी शांति से सुनते है। श्रद्धा का भी ऐसा ही है। जब बुद्धि सूक्ष्म विवेक का स्तर प्राप्त करती है तभी हम विवेकानंद प्राप्त कर सकते है। विवेकानंद अर्थात परमानंद। वही सच्चिदानंद। जब अस्तित्व और चित्त एक होते है तब सच्चा आनंद पैदा होता है। यही ब्रह्मानंद और शिवानंद है।

स्पष्टीकरणः ईश्वरप्राप्ति के लिए प्रथम आवश्यक्ता श्रद्धा की है। दूसरी आवश्यक्ता भक्ति है। श्रद्धा के बिना लोगो में भक्ति नही होती। भक्ति श्रद्धा का फल है। न्यायाधीश प्रतिवादी को भी सुनते है। श्रद्धा का भी ऐसा ही है। जजब बुद्धि सूक्ष्म विवेक सिद्ध करती है तब विवेक-आनंद प्राप्त हो सकता है। विवेक-आनंद वही परम आनंद और वही सद, चित, आनंद है।

जब अस्तित्व और ज्ञान (चित) दोनो एक हो जाते है तब आनंद पैदा होता है यही परमानंद और यही शिवानंद है।

183. शिव हमारे अंदर है और हम शिव के अंदर है। माया भी हमारे अंदर है। सृष्टि के विनाश और सृजन दोनो माया में है। जो लोग तीनो गुणो में से मुक्त हो गये है वे माया से मुक्त हो जाते है। जो लोग अपने शरीर की भ्रमणा में से मुक्त हो जाते वे ओर कुछ नहीं लेकिन मूर्तिमंत परमहंस है। मान-अपमान के विचारो से मुत हो जाना वह आत्मिक (अंदरुनी) है।

स्पष्टीकरणः जीव ही शिव है और शिव ही जीव है। माया हमारे अंदर है। सृष्टि का विनाश और सृजन माया की वजह से होता है। जो लोग तीनो

गुणो से मुक्त होते है वे माया से मुक्त हो सकते है। जो मनुष्य खुद्द मानवशरीर है और भ्रमणा में से मुक्त हो गया हो वह ओर कुछ नहीं

लेकिन जीवित परमहंस है। ऐसे लोगो को माया स्पर्श नही करती। वे परमसुख प्राप्त करते है। जो लोग मान-अपमान के विचारो से मुक्त हुए है वे स्वयं आत्मा है। आत्मा को मान-अपमान से फर्क नही पडता। आत्मा सर्वोपरी है।

184. ईस जगत में मान-अपमान के प्रति उदासीन हो जाते है। उन्होंने लक्ष्य सिद्ध किया है। ये लोग परम शांति प्राप्त करते है।

स्पष्टीकरणः परम शांति वह मानवजीवन का लक्ष्य है। यह परम शांति वे लोग ही प्राप्त कर सकते है, जो मान-अपमान, गर्मी-ठंड, आनंद-दुःख, अच्छे-बूरे की संवेदना से मुक्त हो गये हो।

185. अनंत-अविभाज्य में कोई नाशवंत के विभाज्य चीज नही हो सकती। गुरु के बिना ज्ञान संभव नही है वे लोग अपने लक्ष्य सिद्ध नही कर सकते।

स्पष्टीकरणः ईश्वर में माया नही होती। अविभाज्य-अनंत में कोई विभाज्य-नाशवंत चीज नही हो सकती। जहां प्रकाश है वहां अंधकार नही हो सकता। दोनो साथ नही रह सकते। जीन लोगो के गुरु नही है वे ईश्वर का साक्षात्कार नही कर सकते। गुरु ईश्वरसाक्षात्कार की वजह है। परिणाम शिष्य के द्वारा ईश्वर का साक्षात्कार है।

186. मनुष्य की भौतिक आंख की कल्पना करें। अंध मानवी के हाथ में मोमबती हो तो भी उसके लिए रोशनी कुछ काम की नही है। जीन लोगो के पेट भरे हुए है उन्हें ज्यादा आहार की जरुरत नही होती। खाना तैयार हो तो उसकी खुश्बू से हम पेट नही बर सकते। तैयार आहार खाते तभी हमारा पेट भरता है। सुवर्ण का टुकडा हाथ में रखने से उसका कोई

उपयोग नही हो सकता। उसे अग्नि में पीघलाकर उसके अंदर का कचरा दूर करना चाहिए तभी वह प्रकाशित होता है उसी तरह मन का कचरा ईच्छा और क्रोध है उसका नाश होना चाहिए।

स्पष्टीकरणः अंध मानवी के लिए रोशनी कुछ काम की नही है भले ही वह मोमबती हाथ में रखकर खडा हो उसी तरह ज्ञान और ज्ञानी का ईस संसार के लोगो के लिए कोई उपयोग नही है। भले ही वह उन लोगो के साथ रहता हो। जीस तरह लोगो के पेट भरे हो उनको ज्यादा आहार की आवश्यक्ता नही होती उसी तरह जो लोग आध्यात्म के उच्चतम स्तर पर पहुंचे है उनके लिए अन्य की कोई मदद की आवश्यक्ता नही होती। वह आत्मसंतुष्ट रहेगा और परम शांति उसमे होगी। हमारी भूख सिर्फ खूश्बू लेने से संतुष़्ट नही होती। भूख की तृप्ति के लिए आहार लेना जरुरी है हमे ईश्वर के परम सुख के बारे में किताबें पढकर या उसके बारे में सुनकर परम शांति प्राप्त नही होगी। हमे अनुभूति करनी पडती है। सुवर्ण का टुकडा हाथ में हो तो उसका कुछ उपयोग नही होता लेकिन उसे पीघालकर उसमें से कचरा दूर किया जाता है तभी वह प्रकाशित होता है। ईसी तरह मन का मैल क्रोध और ईच्छाएं दूर की जाये तभी मन शुद्ध होता है। ऐसा होता है तब आत्मसाक्षात्कार होता है।

187. पक्षी के लिए उसका घोंसला और आत्मा के लिए मनुष्य शरीर समान है। शरीर आत्मा का घर है। यह घर और वह घर यह एक सूक्ष्म विवेक का विषय है। स्थूल शरीर भिखारी की झौंपडी है। ब्रह्मानंद के लिए क्या कहना? वह वर्णनातीत है। हकिकत, अनुभवो या शाश्वत आत्मा है वह सब में समान है। माया को ज्ञान नही होता। शिव ज्ञानी है। माया चंचल है। माया मानवी को यह या वह चीज के लिए भ्रमित करती है लेकिन वह

कुछ काम का नही है। माया को शिव में एक कर दिजीये। हरि-हरि अर्थात माया की वजह से चित्तभ्रम हो कर दौडते रहना वह भ्रमणा के सिवां ओर कुछ नही। आप शिवमय हो जाये और मन की भ्रमणाओ को मन में सीमित कर दिजीये। आपको शाश्वत आनंद शिवने दिया है। शिव मुक्तिदाता है। शिव भक्तिदाता है। हरि अर्थात माया और माया मतलब मन को जगत में घूमाते रहना। शिव सारे विश्व को खुद में केन्द्रीत रखते है। माया में लीन रहना मतलब खुद को नीचा करना लेकिन शिव का समरण परम सुख का मार्ग है। मुक्ति मतलब प्राण को उर्ध्वगामी करना वह है। माया मतलब बिना लगाम का अश्व।

स्पष्टीकरणः शरीर वह आत्मा का शाश्वत घर नही है। पक्षी के लिए जो स्थान घोंसले का है वह स्थान आत्मा के लिए शरीर का है। मानवशरीर को आत्मा के घर के तौर पर मान्यता और आत्मा स्वयं के तौर पर जो समझ है वह सूक्ष्म विवेक की बात है। उसी तरह मानवशरीर यह 'घर', वह 'घर' ऐसा मानना लेकिन मानवी की आत्मा के तौर पर न माना जाये तो वह भी उस सूक्ष्म भेद (विवेक) का विषय है। स्थूल शरीर भिखारी का घर है। ब्रह्मानंद का विवरण नही कर सकते, वह वर्णनातीत है। हकिकत में शाश्वत आत्मा एक है और वह सब में एकसमान है। हरि अर्थात माया। शिव जगत के सर्वज्ञाता है। माया ज्ञान नही है। माया की वजह से मन चंचल रहता है और मानवी को यहांवहां घूमाता है। शिव एककेन्द्री है। मानवी माया में लीन होकर यह चाहिए, वह चाहिए ऐसा कहने का क्या मतलब? जो मनुष्य माया का हरदम चिंतन करके ईच्छाओ की तृप्ति के लिए प्रयास करता रहता है वह कभी सुखी नही रहता। ईच्छाओ का दहन करके हरि को हर में एकाकार कर देनी चाहिए मतलब शिव में माया के

एकाकार कर देनी चाहिए। 'हरि हरि' कहना मतलब वह माया की भ्रमणा है लेकिन हर, हर कहें और वह भी सूक्ष्म विवेक से तो परम सुख प्राप्त होता है और परम शांति और शाश्वत भक्ति प्राप्त होती है। हरि का मतलब क्या है? तो माया को चित्त में रखना वह शिव मतलब ब्रह्मांड को अपनेआप में एक कर के रखनेवाली शक्ति है। वह ईच्छारहित है। सारा दिन हरि हरि करना मतलब माया में लीन रहना जो अपना स्थान नीचा करने जैसा है। शिव परम सुख प्राप्ति का मार्ग है। मुक्ति प्राण को ऊर्ध्वगामी करने से प्राप्त होती है। हरि मतलब माया बिना लगाम का अश्व है। हरि मतलब माया के लिए मन को निरंकुश रखना वह है। निरंकुश घूमता मन बिना लगाम का अश्व जैसा है। हर अर्थात शिव प्राप्ति आत्मा का साक्षात्कार एक भक्ति से करना वह है।

188. दो हजार लोगो की भीड के बीच घुडसवारी करना वह कार्यक्षमता का विषय है। बुद्धि उपर और मानस नीचे है। बुद्धि राजा है, मानस प्रधानमंत्री है। मन बुद्धि के अधीन होना चाहिए। प्रथम मतलब मन वह नाद है और बुद्धि एक गूंज है। मन प्राथमिक गुरु है, दूसरा गुरु प्रेरित करनेवाला है। दूसरा शिक्षक है। प्राथमिक गुरु वह है जो की खुद अभ्यास करता है। आत्मा का साक्षात्कार या अनुभूति वह प्राथमिक गुरु है। आप दूसरे गुरु की ईच्छा करोगे तो ही गुरु होते है। जब कीसी चीज को प्राप्त करने की या रखने की ईच्छा हो तब आनुषांगिक गुरुओ की जरुरत होती है। आनुषांगिक गुरु वह है जो की तालाब की ओर ले जाते है और प्राथमिक गुरु वह है जो खुद तालाब में से पानी पीते है। प्राथमिक गुरु आपमें रहनेवाले अज्ञान के अंधकार को दूर करते है और प्रकाश देते है। अंधकार मतलब अज्ञानता। ज्ञान अर्थात प्रकाश। सूक्ष्म विवेक का मार्ग

माया एक ओर रखकर बताए वही सच्चा गुरु है। एक गुरु शिव है, जो सारे ब्रह्मांड मे व्याप्त है। एकदूसरे का गुरु बन नही सकते अर्थात 'एक' वह आनुषांगिक गुरु है। गुरु ब्रह्मांड का देव है। वह ओमकार वही ब्रह्मा, वही विष्णु और वही महेश्वर है। जो परब्रह्म का मूल है। विष्णु मन की वृतियां है। शिव शरीर का शणगार है। ब्रह्मेश्वरा अर्थात शरीरभाव का त्याग करना। जीस तरह नारियल की खाल को कोपरे से अलग किया जाता है उसी तरह शरीर के भाव को अलग करना ही उसका सही अर्थ है।

स्पष्टीकरणः दो हजार लोगो की भीड़ में घुडसवारी करने के लिए घुडसवार में कौशल्य होना चाहिए। घुडसवार में जीस तरह अश्व के उपर सवार होने का कौशल्य होता है। उसी तरह मानवी में परब्रह्म के साक्षात्कार के लिए सतर्कता और कौशल्य होना आवश्यक है। बुद्धि का स्थान मन से ऊंचा है। मनुष्य को अपने मन को बुद्धि के अधीन रखना चाहिए। बुद्धि राजा और मन प्रधानमंत्री है। प्रधानमंत्री को राजा की सुचना के अनुसार चलना है। हम आवाझ प्रथम सुनते है और बाद में उसकी गूंज सुनाई देती है। ऐसे हमे दूसरे गुरु-आनुषांगिक गुरु की जरुरत होती है। आत्मा का साक्षात्कार वह परिणाम है। प्राथमिक गुरु मनुष्य का मानस है। आनुषांगिक गुरु जो की आपको साक्षात्कार के मार्ग पर ले जानेवाले बाहरी गुरु है। प्रथम प्राधान्य मन को दिया गया है क्योंकी आत्मासाक्षात्कार के बिना आत्मा का साक्षात्कार नही हो सकता ईसलिए उसका मतलब यह होता है की जो ज्ञान दें वह बाहरी गुरु आनुषांगिक गुरु है। प्राथमिक गुरु वह आत्मसाक्षात्कार के प्रयास-अभ्यास है। साक्षात्कार ही प्राथमिक गुरु है। बाहरी गुरु की जरुरत तब तक होती है जब तक हमारा मन जगत के आनंद के पीछे घूमता रहता है। बाहरी गुरु तालाब का रास्ता दिखाते है।

प्राथमिक गुरु वह है जो तालाब का पानी पीते है। प्राथमिक गुरु हमारे अंधकार का नाश करते है और प्रकाश की ओर ले जाते है। अंधकार ही अज्ञानता है। प्रकाश ज्ञान है। गुरु वही है जो सूक्ष्म का रास्ता दिखाते है और स्थूल चीजो का त्याग करने के लिए बताते है। ब्रह्मांड के अधिष्ठाता ईश्वर सब के गुरु है। 'एक' जो है वह दूसरे के गुरु नही है। एक है वह आनुषांगिक या बाहरी गुरु है। गुरु ब्रह्मांड के देवता है वह ओमकार, वही ब्रह्म, वही विष्णु, वही महेश्वर और परम ब्रह्म का मूल है। विष्णु मानवी की चंचल वृतियां है। शिव शरीर का अलंकार है। ब्रह्मेश्वरा मतलब शरीरभाव को एक ओर रखना और उसके लिए ईश्वर के साथ एकाकार होना है। व्यक्ति को यह अनुभव करना है की आत्मा शरीर से अलग है। जीस तरह नारियल की खाल अंदर के कोपरे से अलग होती है उसी तरह आत्मा को शरीर से अलग करना है। ईसे ब्रह्मेश्वर कहते है वही 'सब' है।

189. बाह्याकारवाली सभी चीजे ओमकार है। ओमकार वह बाह्याकारवाली चीजो में बसा दैवी तत्व है। ओमकार एक सूक्ष्म बिंदु है। ओमकार बाहर और अंदर हवा में फैला हुआ है। शिवशक्ति का विवरण करना असंभव है। जीन लोगोने अनुभूति की है वे ही उनका विवरण दे सकते है। अनुभव के बिना शिवशक्ति का विवरण संभव नही है। किताबो का ज्ञान रखनेवाला व्यक्ति उसका विवरण नही दे सकता। आत्मा का ज्ञान रखनेवाली व्यक्ति ही उसका वर्णन कर सकता है।

स्पष्टीकरणः ओमकार ब्रह्मांड में सर्वेसर्वा है। आकारवाली हर चीज ओमकार है। उसमें बसा दिव्य तत्व ओमकार है। ओमकार एक सूक्ष्म बिंदु है। जो आंतरचक्षु से दिखाई देता है और वह दिव्य जीवन में जैसे प्रगति होती है वैसे ही स्पष्ट होने लगता है। ओमकार वायु स्वरुप में अंदर और

बाहर दोनो ओर फैला है। शिवशक्ति ईस विवरण में आता स्वरुप है। जीन लोगो ने ईश्वर के परम सुख को प्राप्त किया है वही उसका विवरण दे सकता है ओर कोई नही, वैसे ही जीन लोगो को ईस बारे में कोई अनुभव नही है उनके लिए तो संभव ही नही है। किताबो से पाया हुआ ज्ञान क्षणजीवी है।

190. चिदाकाश में अगर सुर्योदय देखे तो उसका विवरण करना संभव है। व्यक्ति को अपने आत्मतत्व मे ईन बातो का अनुभव करना चाहिए। ज्ञान बुद्धि में होता है। जीन लोगो में ज्ञान और बुद्धि ईक्कट्ठे हो गये है वे लोग उसका विवरण कर सकते है लेकिन जो लोग के ज्ञान और बुद्धि अलग है वे लोग ईस बात का विवरण नही कर सकते। जीसे सूक्ष्म विवेक कहा जाता है वह बुद्धि और ज्ञान का एकत्व है। सूर्य का प्रतिबिंब पानी में गिरता है तो पानी में कंपन होता है ठीक ऐसा ही मन का है। मन चंचल है और माया से मोहित है। भ्रमणा मानवी को स्थूल चीजो से होती है लेकिन पागलपन या दीवानापन सूक्ष्म विवेक से होता है तो वह दैवी पागलपन है। स्थूल पागलपन स्थूल भेद से पैदा होता है। हम खुछ खाते लेकिन आहार का मार्ग पेट की ओर ही रहते है। डाकपेटी में डाली जाती डाक में जो भी सुचनाएं हो लेकिन जीस पेटी में उसे डाला जाता है वे सब समान है। सिर्फ जिह्वा ही खट्टी-मिठी चीजो में फर्क कर सकती है लेकिन मन के लिए ऐसा कोई फर्क नही है। हम पक्षी को पींजरे में पांव बांधकर कैद कर देते है और उसे बोलना सीखाते है उसी तरह बुद्धि आत्मा के साथ एक हो जाती है तब मानस के पींजरे में कैद हो जाती है।

स्पष्टीकरणः मनुष्य खुद अनुभव न करे तो कुंड्लिनी जागरण के दिव्य प्रकाश के उदगम का विवरण असभव है। ईश्वर के परम सुख का

विवरण करना असंभव है। कुंडलिनी जागरण के सूर्योदय का विवरण ज्ञान और बुद्धि जीनके एक हो गये है वे लोग ही कर सकते है। आम लोगो के लिए यह संभव नही है। सूक्ष्म विवेक वह ज्ञान और बुद्धि का एकत्व है। सूर्य का पानी में गिरता प्रतिबिंब जीस तरह अस्थिर होता है उसी तरह माया से संमोहित मन चंचल होता है। स्थूल चीजो से पागलपन पैदा होता है। सूक्ष्म विवेक से भी पागलपन पैदा होता है। जो की दैवी पागलपन है।

हम कुछ भी खाते है लेकिन वह आहार पेट की ओर ही जाता है। पत्र, पोस्टकार्ड, विविध अखबारो की सुचनाएं कुछ भी हो लेकिन डाकपेटी एकसमान ही रहती है। मानवी का मन भी उसी तरह अच्छी-बूरी बातो को संग्रहीत करता है। मन कीसी प्रकार का भेद नही होता। मन अच्छी-बूरी सभी चीजो को एकसमान तरीके से संग्रहीत करता है। जिह्वा ही खट्टी-मिठी

चीजो का फर्क करती है। मानबुद्धि में भेद करने की शक्ति है। जीस तरह हम पक्षी को पींजरे में पांव बांधकर रखते है और बोलना सीखाते है उसी तरह बुद्धि आत्मा के साथ एक हो जाती है और मानस के पिंजरे में कैद हो जाती है। आत्मा का साक्षात्कार तब होता है जब मन और बुद्धि की एक्ता सिद्ध होती है।

191. मुक्ति के देव शिव है, शिव लिंग है और वह मस्तिष्क में है। यह लिंग ओर कुछ नही लेकिन ओमकार है। प्रकाश अति महत्पूर्ण है। नाडियो के बिना नाद नही होता। भक्ति की तुलना दीये में तेल के साथ हो सकती है। नाडियों की तुलना दीये की बाती के साथ की जा सकती है। सूक्ष्म विवेक वह ज्योति या प्रकाश है। नाडियो की तुलना फानुस के साथ

की जा सकती है। फानुस में हवा को जाने के लिए जो छिद्र है वह ब्रह्मरंध्र है। यह भेद-विवेक का स्वरुप ही बुद्धि है।

स्पष्टीकरणः मुक्ति देनेवाले देवता शिव है। शिव क्या है? शिव चित्त-मस्तिष्क में रहनेवाला आत्मलिंग है। यह लिंग ओर कुछ नही लेकिन ओमकार है। जब आत्मलिंग का साक्षात्कार होता है तब सर्वत्र हम सर्व में ओमकार के दर्शन करते है। सर्वत्र प्रकाश-अंधकार में प्रकाश-असत्य में सत्य- यह सब महत्वपूर्ण है। ज्ञानी की तुलना फानुस के साथ हो सकती है। ज्ञानी की भक्ति फानुस के दीये में रहनेवाला तैल है। प्रमुख नाडि – वह दीपक की बाती है। सूक्ष्म विवेक वह ज्योति है जो रोशनी देती है। छोडी नाडियां फानुस का शीशा है। दीमाग में रहनेवाली जगह फानुस में हवा को जाने के लिए बने छिद्र है। परमशांति-अपने आसपास ज्ञानी जो फैलाता है वह फानुस का प्रकाश है। ज्ञानी पानुस के प्रकाश की तरह सर्वत्र प्रकाश फैलाता है। वह सर्वत्र आत्मा का दर्शन करता है। मनुष्य में रहनेवाली बुद्धि स्वयं ज्ञान का दर्शन है।

192. जो मनुष्य अपने नाक और मुंह को जोर से पकडकर रखें तो बोल नही सकता उसी तरह जो व्यक्ति सांस न लेसके तो आवाझ नही निकाल सकता। तालाब का पानी गर्मी के मौसम आगे बढने से कम होने लगता उसी तरह सांसे लेने की शक्ति शरीर में कम होने लगती है। पानी घूमता रहतै है तो उसके साथ हवा भी घूमती है। मनुष्य आहार के बिना, कोफी के बिना पांच दिन तक रह सकता है लेकिन सांस लिये बिना पांच मिनिट भी जी नही सकता।

स्पष्टीकरणः निर्जीव चीज आवाझ नही करती, क्योंकी उसमें प्राण नही होते। अगर हम मुंह और नाक जोर से पकडकर रखें तो हम बात नही कर सकते। प्राणशक्ति गर्मी के मौसम में तालाब में पानी कम होता है उसी तरह कम होने लगती है। पानी घूमता है तो साथ में हवा भी घूमती

है उसी तरह जब तक शरीर में प्राण होते है तब तक रक्तसंचार होता रहतै है। प्राण शरीर के लिए अनिवार्य है। आहार और कोफी के बिना मनुष्य पांच दिन भी चला लेगा लेकिन सांसो के बिना पांच मिनट भी रह नही सकता। ईसलिए प्राण का नियंत्रण बहुत जरूरी है।

193. जगत की सारी शक्तिओं में माया की शक्ति सब से प्रबल है। मृतशरीर और पत्थर बोल नही सकते उसी तरह अगर वायु अपना काम न करे तो आग जलती नही उसी तरह सांसे भी नियमित न हो तो पाचनशक्ति को नुकसान पहुंचता है। पाचनअग्नि ही योग्यरुप से काम न करे तो फेफडों में कफ जम जाता है। चरबी शरीर में बढती जाती है। आहार पेट में बिना पाचन हुए रह जाता है। पानी के पंप में अवरोध हो तो पानी आसानी से नीकलता नही है। सांसे लेने में मुश्किल हो तो कफ जम जाता है। ऐसे ही ईन सब वजह से सब रोग होते है।

स्पष्टीकरणः जगत की सारी शक्तिओं में माया की शक्ति प्रबल है। माया को नष्ट करने के लिए हरदम प्रयास करना पडता है। मनुष्य शरीर में प्राण अति महत्वपूर्ण है। प्राणहीन मानवी गतिहीन पत्थर या लाश जैसा होता है। शरीर में प्राण का आना-जाना नियमित नही होगा तो पाचन का अग्नि नष्ट हो जाता है। अगर पाचन अग्नि ठीक से काम काम नही करेगा तो फैफडों मे जो कफ है वह जम जायेगा। शरीर में चरबी बढती जाती है, खाया हुआ आहार पेट में पचे बिना रहता है। जीस तरह पानी के पंप में कचरा जम जाता है तो पानी आसानी से बाहर नही आता उसी तरह सांसे लेने में मुश्किल हो तो बुखार, कफ बढना जैसे रोग होते है। ईस तरह की सांसो की अनियमितता की वजह से रोग होते है।

194. सभी चीजें अपने ह्रदय में से आती है। बाहर से कुछ नहीं आता। व्यक्ति स्वयं बूरा बनता है और अपने प्रयासो से ही अच्छा होता है उसी तरह ओमकार-प्राणायाम अंदरुनी तौर पर होना चाहिए। बाद में शुद्धता आती है। जब बूराई अच्छेपन में एकरुप हो जाती है तब अच्छेपन के सत्संग की वजह से वह भी अच्छे में परिवर्तित होती है। आपके हाथ में जो चीज है उसमें कोई खूश्बू भी नही होती और कोई किंमत नही होती। दूसरो के पास से मिली चीज में गंध भी होती है और उसकी किंमत बी होती है। नित्यानंद राजा है, नित्यानंद योगी है, नित्यानंद महात्मा है, नित्यानंद सर्वत्र प्रवर्तमान है-वह ओमकार है। नित्यानंद-श्री गुरु है। शुरु में परम शांति प्राप्त हो उससे पहले हमारे अंदर जो माया है वह अपनी ताकत दिखाती है। जब जब आंख बंध की जाती है तब तब सर्प दिखाई देता है। शुरु में अभ्यास के लिए बैठते है तब पहाड के जैसा बौझ लगता है। ऐसा लगता है की आप पृथ्वी पर से हवा में उड रहे है, ऐसा अनुभव होता है की सागर में बैठे है। कभी आपके पर गर्म पानी डाला गया हो ऐसा लगता है, कीसी समय आप मकान में सबसे ऊंची मंझिल पर बैठे है ऐसा अनुभव होता है। कभी कभी आप पत्तो की तरह हल्के हो गये है ऐसा अनुभव होता है। कभी आप बोलते नही, सुनते नही हो, बातें नही करते हो ऐसा लगता है। दूसरे समय में आपकी सभी संवेदनाएं शुभ हो गई हो ऐसा लगता है। कभी आसपास के लोग नाटक कलाकारो जैसे लगते है, कभी चहेरे काले दिखते है। परम शांति का स्तर सिद्ध होने के बाद अविभाज्य सफेद-श्वेत रंग दिखता है। प्रकाश में अंधकार है, अंधकार में प्रकाश है। कभी वह बायोस्कोप के केल जैसा लगता है या कभी सत, चित, आनंद जैसा अनुभव होता है। कभी ईस जगत में हम कहां जा रहे है ऐसा लगता

है। हमारा मूल फर्झ क्या है वह हम समझ नही सकते। हमारा पृथ्वी पर चलना स्थायी नही है लेकिन ऊच्च दिशा में ही जाना स्थायी है। जो लोग सीडीओ से उपर पहुंचे है और सबसे ऊंची मंझिल पर पहुंचे है और चारो ओर नझर घूमाते है। क्या सुनाई देता है, क्या दिखता है। सब एक मायाजाल जैसा लगता है। जीसे भेदना संभव नही होता लेकिन सर्व भेदी ओमकार सर्वभेदी प्रणव है। पक्षी हवाई जहाज जैसे लगते है। मनुष्य पशु जैसे लगते है। पशु मनुष्य जैसे लगते है। कुत्ते ज्ञानी जैसे लगते है क्योंकी कुत्ते को एकबार खिलाओ तो जीवन के अंत तक वह उसे भूलता नही है। वह उसके मालिकने एकबार खिलाया हो फीरभी वफादार रहता है लेकिन मनुष्य में सूक्ष्म विवेक नही होता। वो कहां से आया है और उनका फर्झ क्या है। पूर्णतः समझवाला मानवी श्वान जैसा होता है।

स्पष्टीकरणः सब कुछ अपने अंदर से आता है। बाहर से कुछ नही आता व्यक्ति खुद बूरा होता है और खुद अच्छा होता है। व्यक्ति के अंदरुनी स्वभाव को अन्य लोग बदल नही सकते। हमे ओमकार को प्राण में ग्रहण करना चाहिए। जब ऐसा हो तब अंदरुनी शुद्धि पर प्रभाव पडता है। मन अंतरमुख होगा और आत्मा की सिद्धि मिलेगी। जब बूराई अच्छेपन में एकाकार हो जाती है तब बूराई अच्छेपन में परिवर्तित हो जाती है उसी तरह बूरा व्यक्ति भी अच्छे व्यक्ति की संगत में अच्छा बन जायेगा। उसमें रही बूराई अच्छे में परिवर्तित हो जायेगी। हमारे हाथ में रही चीज में गंध या उसकी कोई किंमत नही होती। अन्य से मिली चीजो में एक प्रकारनी गंध और किंमत होती है। ज्यादा आत्मीयता घृणा की वजह बनती है। दोनो के बीच का अंतर सच्चा द्रष्टिकोण पैदा करता है। कोई महान व्यक्ति कितना भी महान हो लेकिन हमारे नजदिक हो तब उसकी महानता समझ

में नही आती। ऐसा ही व्यक्ति जब हम से दूर हो तब उसकी महानता हम समझ सकते है। शायद हो उससे बी ज्यादा महान समझते है। श्री नित्यानंद राजा है, श्री नित्यानंद योगी महात्मा है, श्री नित्यानंद शाश्वत आनंद को प्राप्त कर सकते है। ऐसे मानव सर्व व्यापक प्रणव के साथ एकाकार हो जाते है। श्री नित्यानंद श्री गुरु है, जो की परम सुख प्राप्त करते है। शुरु में परम शांति मिलने से पहले माया की शक्ति का अनुभव हमें होता है। जब हमारी आंख करते है तब विविध तरह के सर्प दिखाई देते है। शुरु में अभ्यास के लिए बैठते है तब पहाड के जैसा बोझ लगता है तो कभी आप धरातल छोड देते हो ऐसा लगता है। कभी समुद्र में बैठे है ऐसा लगता है तो कभी गर्म पानी डाला गया हो ऐसा लगता है, कभी मकान की सबसे मंझिल पर बैठे है ऐसा अनुभव होता है। कभी सर्प जैसा हल्कापन तो कभी पत्तो जैसा हल्कापन महसूस होता है। कभी हम बात कर रहे है या आ रहे है या बैठे है वह भी समझ में नही आता। ऐसे समय में शरीरभाव पूर्णरुप से भूल जाते है तब ऐसी स्थिति में भी आत्मतेजमय हो जाते है और शरीरभाव रहता नही है। कोई समय ऐसा आता है हमारी सभी संवेदनाएं स्थिर हो गई हो ऐसा लगता है। ऐसे समय पर अहंकार पूर्णरुप से नष्ट हो गया हो ऐसा लगता है। कभी शरीर नारियल के वृक्ष की तरह स्थिर हो जाता है तो दूसरे समय में आसपास में रहनेवाले मानव नाटक के कलाकार है ऐसा लगते है और वे नाटक कर कर रहे है ऐसा प्रतीत होता है। कभी काले चहेरे दिखते है। ये सब अनेको में रहे थोडे अनुभव है लेकिन यह स्थिति की प्रारंभ की अवस्था की है लेकिन पूर्णतः शांति प्राप्त होने के बाद अविभाज्य श्वेतत्व दिखता है। अंधकार में प्रकाश और प्रकाश में अंधकार दिखता है। अंधकार मतलब अज्ञानता। प्रकाश वह

ज्ञान है। अंधकार में प्रकाश देखे। असत्य में सत्य देखना। ब्रह्मांड में ईश्वर का दर्शन करना, ईश्वर और ब्रह्मांड, ज्ञान और प्रकाश एक सिक्के की दो बाजुएं है। एकदूसरे के पूरक है। सूक्ष्म को स्थूल में ढूंढना वह मानवजीवन का लक्ष्य है। जब मन माया का नाश करता है तब द्रश्य ब्रह्मांड बायोस्कोप के कार्यक्रम-द्रश्य जैसा लगता है। सूक्ष्म विवेक तब सत, चित, आनंद का अनुभव करता है। मनुष्य के जीवन में बहुतबार ऐसे सवाल पैदा होते है की मनुष्य ईस जगत में क्यों आया है, वो कहां जा रहा है। दुन्यवी लोग उनका जीवन लक्ष्य भूल जाते है। सांसारिक जीवन में लिन रहना वह स्थायी नही है। आत्मा का साक्षात्कार करना वही स्थायी है। मुक्ति शाश्वत है, अपरिवर्तनीय है वह आकाररहित है। जो लोग क्रमशः सीडीयां चढकर आध्यात्मिक्ता के ऊच्चस्तर पर पहुंचकर चारो ओर नझर घूमाने से क्या दिखता है, क्या सुनाई देता है उसका अनुभव करता है और सारा जगत एक जाल में हो ऐसा दिखता है उसी तरह ज्ञानी, जीसने आध्यात्म के ऊच्च स्तर सिद्ध किये है उन्हें ब्रह्मांड दो मुंहवाला या उलझा हुआ लगता है। ऐसे मानव सांसारिक जीवन की क्षणिक स्थिति को समझ सकते है। ओमकार प्रणव है। ओमकार सर्वव्यापी है और प्रणव भी सर्वव्यापी है। पक्षी भी आकाश में हवाई जहाज की तरह ऊडते है। मनुष्य ईस जगत में पशु की तरह जीता है और सांसारिक आनंद में मस्त व्यक्ति अपना जीवन लक्ष्य भूल जाता है लेकिन प्राणी कभी मनुष्य की तरह बर्ताव करते है। श्वान की तुलना ज्ञानी के साथ की जा सकती है। श्वान एकबार भी आहार देनेवाले को भूलता नही है और उसके मालिक को हरदम वफादार रहता है। ज्ञानी भी उनके जीवनकाल के दौरान दूसरे लोगोनें उनके लिए जो किया हो वह भूलते नही है। एकबार भी किसीने उन्हें मदद की हो वह वे भूलते नही

है लेकिन सांसारिक जीवो में सूक्ष्म विवेक नही होता। वह कहां से आया है और उसका फर्झ क्या है वह वे लोग समझते नही है। वे सिर्फ सांसारिक जीवन की कीर्ति और सिद्धियों के बारे में सोचते है लेकिन ईस सांसारिक जीवन की सिद्धियां उनको मृत्यु के बाद के जीवन में कुछ काम की नही होती। वे अपने मृत्यु के बाद की स्थिति का विचार नही करते। पूर्ण समझवाले मानवी को श्वान जैसा बनना है।

195. राजा के समक्ष उपस्थित होते है तो हम उसे रुबरु उसकी त्रुटियां कहने की हिंमत जूटा नही पाते लेकिन पीठ पीछे हम उसकी निंदा करते है उसी तरह लोग ज्ञानी की रुबरु निंदा करने की हिंमत जूटा नही पाते। आप सूर्य की ओर थोडी देर देखते रहते हो और बाद में घर में प्रवेश करो तो थोडे समय के लिए कुछ दिखता नही है उसी तरह अंधकारमय स्थान में से बाहर आते है तो हम कहां से आये वह बता नही सकते।

स्पष्टीकरणः ज्ञानी दिव्य-महाराज्य का राजा है। जीस तरह सांसारिक राज्य का राजा होता है। सांसारिक राजा के मुंह पर उसकी त्रुटियां बताने की हिंमत कोई नही जूटा पाता लेकिन उसकी पीठ पीछे निंदा करते है उसी तरह ज्ञानी को रुबरु कोई पागल नही कहेगा लेकिन पीठ पीछे उसे पागल कहते है। ऐसे लोग योगी की निंदा उनके सामने करने की हिंमत नही रखते। हम सूर्य की ओर थोडी देर देखते रहते है और बाद में घर में प्रवेश करते है तो थोडी पलो के लिए हम कहां से आये वह बता नही सकते। ईसी तरह ज्ञानी को मिलने जा रहे लोग ज्ञानी के सर्वशक्तिमान तेजस्वी स्वरुप के सामने अपना मूळ स्वभाव भूलकर चकाचौंध हो जाते है। वे अपनी यात्रा तक अपनेआप को भी भूल जाते है।

196. कोई मानवी निंद में डर के मारे जग जाता है और खडा हो जाता है तो इसे हकिकत में क्या हुआ है उसका विचार नही आता। वह उलझा हुआ रहता है। उसी तरह ज्ञानी, जो की योगनिद्रा में रहते हे वें बाहरी विश्व के बारे में कुछ जानते नही है। आपके पास छाता है तो बारिश का पानी हमारे सिर को भिगा नही सकता। जो लोग नियमित तौर पर आहार लेते है उन्हें भूख लगती है। जो लोग शीतल जल में डूबे रहते है उन्हें ठंड नही लगती। पूर्ण मानवी कभी क्रोध से भडकता नही है। तले हुए बीज कभी अंकुरित नही होते। सोने को अग्नि से तपाकर शुद्ध किया हो उसी तरह मानवी का मन हरदम शुद्ध रहना चाहिए।

स्पष्टीकरणः ज्ञानी जो हरदम योगनिद्रा में रहता है उसे बाहरी दुनिया की खबर नही होती जैसे की भय से निद्रा में से अचानक जग कर खडे हुए मनुष्य को पता नही होता। ज्ञानी सदैव ईश्वर में खोए रहते है और वे जगत के लिए निष्प्राण होते है। अगर हम बारिश में छाता रखते है तो बारिश का पानी हमे भिगाता नही है उसी तरह हम दिव्यता के रंग में रंग जाये तो माया और दो मुंहवाले जगत का प्रभाव नही पडता। आत्मा का ज्ञान हमे जगत और माया के मार से बचा सकता है। जैसे हररोझ आहार लेनेवाले मनुष्य को भूख लगती है उसी तरह जगत की ईच्छाओ में लीन मानवी में ईच्छाएं हरदम रहती है लेकिन ठंडे पानी में डूबे रहते मानवी को ठंड नही लगती। ज्ञानी को शरीर के छः शत्रू क्रोध, काम ईर्ष्या आदि स्पर्श नही करते। ईस शरीर के दुर्गुणो का एकबार नाश हो जाता है बाद में फिर से वे अंकुरित नही होते। मनुष्य का मन अग्नि से तपकर शुद्ध हुए सोना जैसा शुद्ध होना चाहिए। मन की वृतियो को संपूर्ण नाश कर

देना चाहिए। वृतियां जब पूर्णरुप से अद्रश्य हो जाये तब ईश्वर का साक्षात्कार होता है।

197. भूजंग नाग को स्वयंभू अंदरुनी प्राणायाम की शक्ति होती है। नाग “नागस्वर” (मुरली) का संगीत सुनने में एकाग्र हो जाता है। ज्ञानी भी सब को चाहता है, जैसे की गाय अपने बछडे को चाहती है। ईसे ‘एकद्रष्टि’ कहते है। बिना दरवाजे का घर नही होता। बरतन खाना बनाने के लिए अनिवार्य है। श्वान आहार पर जीता भले ही आहार मिट्टी के बरतन में हो या सोने के बरतन में। पक्षी सिर्फ अपनी आज की जरुरतो का विचार करते है। बंध पेटी में रखे गये बीज कभी अंकुरित नही होते। ऐसे बीज पर कभी फल नही आते लेकिन वही बीज अगर भूमि में लगाया जाये तो उसमें फल होते है। हमें अभ्यास करना चाहिए, अनुभव मिलना चाहिए। ईसलिए हम ही हमारे सुखदुःख के लिए जवाबदेह होते है।

स्पष्टीकरणः भुजंग नाग आंतरिक प्राणायाम कर सकता है। उसी तरह मनुष्य को आंतरिक प्राणायाम करना चाहिए। भुजंग नाग “नागेश्वर” नाम के संगीतवाद्य का संगीत सुनने का बहुत ही शौकिन होता है उसी तरह मनुष्य को परम शांति के लिए एक ध्यान होना चाहिए। ज्ञानी सब को बहुत ही स्नेह करता है। जीस तरह गाय अपने बछडे को चाहती है। वह सब में एक के दर्शन करती है और वह भी कोई भेद बिना। ईसे ‘एकद्रष्टि’ कहा जाता है। बिना दरवाजे का घर संभव नही है। खाना भी बिना बरतनो के नही बनता उसी तरह बिना प्राण के मानव का अस्तित्व संभव नही है। प्राण अति आवश्यक चीज है। पक्षी सिर्फ आज की जरुरतो का विचार करते है। पक्षी की तरह मनुष्य को सिर्फ आज का विचार करना सिखना चाहिए। भविष्य के लिए बहुत विचार नही करना चाहिए। यह त्याग शुद्ध स्वरुप का

है। पेटी में पडे बीज कभी अंकुरित नही होते। भूमि में उगाये गये बीज को अगर खाद और पानी दिया जाता है तो योग्यरुप से विकसित होता है। हमारा मानस आत्मा के प्रति केन्द्रीत नही होगा तो आत्मसंतोष प्राप्त नही होता। वह पेटी में पके हुए बीज जैसा है। जब मनुष्य आत्मा की ओर ध्यान केन्द्रीत करता है तब आत्मा के परमसुख का अनुभव करता है। ईस के लिए हमे अभ्यास करना चाहिए और अनुभूति करनी चाहिए। हम ही हमारे सुख या दुःख के लिए जवाबदेह होते है। ईश्वर मनुष्य के कार्य में दखल नही करते। हमारे हरएक कार्य के लिए कोई प्रतिक्रिया (रिएक्शन) नही होती। हमारे दुःख या सुख के लिए सिर्फ हम ही जवाबदेह होते है। अच्छे कर्म के परिणाम अच्छे होते है और बूरे कर्म के बूरे होते है। जब मनुष्य निवृति के ऊच्चतम स्तर पर हो तब ईश्वर की परमशक्ति का अनुभव होता है।

198. दीपक की ज्य़ोत को जलती रखने के लिए कोई नात या जात के फर्क की जरुरत नही होती उसी तरह सूर्य जात-पात के फर्क बिना एकसमान रोशनी देता है। सूर्य का दर्शन सभी को एकसमानरुप से होता है। अग्नि सभी को एकसमान दिखता है। बुद्धि और ज्ञान जीन लोगोने अपने आंतरचक्षु का विकास किया है उनके लिए एक ही है।

स्पष्टीकरणः ईश्वर पूर्णरुप से तटस्थ है। वे कीसी को लाडप्यार नही करते और कीसी का तिरस्कार नही करते। उनके लिए सब एकसमान है। वे जगतपिता है, जगत माता है। जो अपने बच्चो के दोषो को माफ करता है और भूल जाते है। जीस तरह दीपक की ज्योत को जात-पात के भेद बिना जलती रख सकते है, सूर्य जात-पात के फर्क बिना एकसमान रोशनी देता है और अग्नि सब को ऐकसमानरुप से सब को दिखता है उसी

तरह ईश्वर का साक्षात्कार सब कर सकते है और वह भी जात-पात के भेद बिना। सब अपनी अपनी मर्यादित शक्ति के हिसाब से उनका साक्षात्कार करना चाहते है। जीन लोगोने खुद में दिव्य चक्षु (तृतिय आंख) का विकास किया है उनके लिए ज्ञान और बुद्धि एकसमान और वही है। बुद्धि और ज्ञान आध्यात्म के ऊच्चतम स्तर को सिद्ध हो तब एक ही होते है।

199. जीन लोगो में सूक्ष्म विवेक नही होता वे सिर्फ कहने के लिए मनुष्य है। मनुष्य प्राणी नही है। स्थूल शरीरभाव है। सूक्ष्म वह आत्मा का विचार है। जीवात्मा स्थूल शरीर भाव है। सूक्ष्म वह आत्मभाव है। जीवात्मा स्थूल है। परमात्मा सूक्ष्म है। स्थूल के बिना सूक्ष्म का साक्षात्कार नही हो सकता। बुनियाद के बिना घर का बांधकाम संभव नही हो सकता। विचारशक्ति (विवेकबुद्धि) को शिवशक्ति कहा जाता है। यह शक्ति जीस तरह तीव्ररुप से विकसित होती है तब मनुष्य (सुपर) महामानव बनता है। महामानव सुखी मानव होता है। वह ब्राह्मण है, जो ब्रह्मवेता होता है। वेद अनुसार बर्ताव अच्छे चारित्र्य को बनाने के लिए आवश्यक है।

स्पष्टीकरणः मनुष्य को मानव बनने के लिए उसमें सूक्ष्म विवेक होना चाहिए। जीन लोगो में सूक्ष्म विवेक नही है वे लोग मानव कहने लायक नही है। मनुष्य प्राणी नही है। मनुष्य और प्राणी के बीच फर्क यह है की मनुष्य मे सूक्ष्म विवेक है, जबकी प्राणी में वह नही है। ईसलिए ही मनुष्य को अपनी ईश्वरदत्त सूक्ष्म विवेकबुद्धि का ज्यादा से ज्यादा उपयोग करना चाहिए और ईश्वरसाक्षात्कार करना चाहिए। आत्मा का विचार सूक्ष्म है। जीवात्मा स्थूल है और वह शरीर के साथ संबंधित है। परमात्मा सूक्ष्म है। फिरभी स्थूल शरीर के बिना ईश्वर जो सूक्ष्म है उसका साक्षात्कार संभव नही है। घर को बाधने के लिए बुनियाद की जरुरत होती है उसी तरह

मनुष्य शरीर ईश्वरसाक्षात्कार का मकान बनाने के लिए बुनियाद है। शिवशक्ति मतलब जीवात्मा और परमात्मा का मिलन। जब मनुष्य में शिवशक्ति का तीव्र विकास होता है तब मनुष्य महामानव बनता है। महामानव सुखी मानव है। वह ब्राह्मण है। जो ब्रह्मवेता है। ऐसा मानवी ईश्वर के परमसुख का अनुभव कर सकते है। वेद अनुसार का बर्ताव मनुष्य के सदचारित्र्य के ऊच्चतम स्तर को प्राप्त करने की स्थिति है।

200. जो ईच्छारहित है वह आचार्य है। ईच्छारहित मानवी संन्यासी होता है। ईस जगत में वह अवधूत है। अवधूत वह है जो संसार में रहकर ईच्छाओ का त्याग करता है। अवधूत ऊच्चतम स्थिति का मानवी है। अवधूत से ऊंची स्थिति नही हो सकती। अवधूत जगत में सर्वोपरी है। आलोक और परलोक जीनके एक हो गये है वह अवधूत है। सचेतन अवस्था-नया आकाश-वास्तव का आकाश-बंधनमुक्ति-आत्मसुख की सरकार-ब्रह्मसुख-सच्चा सुख-योगसुख-मानव जन्म की चरम सिद्धि-मुक्ति के देवता-शहंशाह को ज्ञान देने की शक्ति ये सब अवधूत के लक्षण है।

स्पष्टीकरणः ईच्छारहित व्यक्ति आचार्य कहने के योग्य है, वह पूर्णरुप से ईच्छारहित होता है। संन्यासी ईच्छारहित मानव होता है। ईस जगत में वह अवधूत है, जीसने सभी ईच्छाओ का त्याग किया है। ईच्छारहित दशा जगत की श्रेष्ठ दशा है। अवधूत अतिउत्तम श्रेणी का मानवी है। मनुष्य में वह श्रेष्ठ है। अवधूत से ऊंची स्थिति नही हो सकती। अवधूत सबसे उपर की स्थिति मे होता है। अवधूत के लिए आलोक और परलोक दोनो एक हो जाते है। अवधूत जगत में सर्वोपरी है। सचेतन अवस्था का आकाश-वास्तविक आकाश-बंधनो में से मुक्ति-आत्मसुख की सरकार-ब्रह्मसुख-सतसुख-योगसुख-पापरहित दशा-मनुष्यजन्म के लक्ष्यो की

परिपूर्णता- मुक्ति के देवता-विश्व के शहंशाह को शिक्षा देने की शक्ति-ये सब अवधूत के लक्षण है। अवधूत सर्वशक्तिमान होता है – वह ईश्वर के साथ एक हो जाता है।

201. जो ईश्वर का चिंतन करता है और जो ईच्छारहित है वह जगत का मोक्षदाता है-संरक्षक है। जो ईश्वर का चिंतन करता है वह मुनि है। वह शिव है और शिव वह है। जो सब कुछ दिखता है वह शिवमय है।

स्पष्टीकरणः जो ईश्वर का हरदम चिंतन करता है और ईच्छारहित है वह जगत का मोक्षदाता-मुक्तिदाता-संरक्षक है। ऐसे मानवी जगत के मानवीओ को दिव्यता के मार्ग पर ले जाते है, उन्हें माया के बंधनो में से मुक्त करते है। मुनि वह है जो ईश्वर पर शाश्वत तौर पर चिंतन करता होता है। ऐसे मानव शिव के साथ एकरुप हो जाता है वह शिवरुप है और शिवमय है। उन्हें जो दिखते है वह सब शिव है। सारे ब्रह्मांड में शिव शक्ति की अनुभूति करता है। ऐसे मानव के लिए पृथ्वी पर के कीसी स्थूल शिवरहित नही है। शिव सर्वत्र सर्व मे विद्‌यमान है।

202. सत्य का साक्षात्कार जीस मनुष्यने नही किया वह भिखारी है। जीसने भ्रमणाओ का निरसन (नाश) नही किया वह भिखारी है। जो मानवी अधोमार्ग का त्याग नही करता वह भिखारी है।

स्पष्टीकरणः वह मानवी भिखारी है जीसने शाश्वत सत्य की अनुभूति नही की है। जीसने जगत की ईच्छाओ के अधोमार्ग का त्याग नही किया वह भिखारी है। जीसने भ्रमणाओ का त्याग नही किया वह भिखारी है। भिखारी अर्थात सांसारिक, कामी पशु का जीवन जीना वह है। भिख

मांगता है वह भिखारी नही है लेकिन भिखारी की तरह बर्ताव करनेवाला भिखारी होता है।

203. जो लोग मान-अपमान के लिए दरकार नही करते वे परमसुख का आनंद ले सकते है। ऐसा सुख जो की ब्रह्मानंद जैसा होता है अर्थात ईश्वर के साथ एकाकार हो जाना। हमे हमारी बुद्धि की शक्ति को सिर्फ पांच मिनिट के लिए केन्द्रीत करे तो वह सुख-आनंद प्राप्त कर सकते है। ईस अनादि वजह को जो समझ सकते नही वे जीवनलक्ष्य बिना के है। जो लोग सत्य का साक्षात्कार नही करते वे भ्रमणा की मायाजाल में तितलियां जलते दीपक की ज्योत में गिरकर नष्ट हो जाते है। बारबार दीपक को देखते है फिरभी तितलियां दीपक की ज्योत में गिरकर नष्ट हो जाती है।

स्पष्टीकरणः जो लोग मान-अपमान की ओर एकदम उदासीन होते है। वे लोग ही परमसुख का आनंद प्राप्त कर सकते है। हमारे मस्तिष्क में बुद्धि की शक्तियां सिर्फ पांच ही मिनट मैं केन्द्रीत करे तो दैवी सुख का आनंद प्राप्त कर सकते है। जब बुद्धि ज्ञान के साथ एकाकार हो जाये तब हम परमसुख का आनंद प्राप्त कर सकते है। अनादी काल की ईस वजह को जो लोग नही समझ सके वे जीवन के लक्ष्य को प्राप्त नही कर सके। ईश्वर अनादी काल से सृष्टि के सृजन की वजह है। ईश्वर के साक्षात्कार के बिना जीवन लक्ष्य प्राप्त नही हो सकता। ईश्वर के साक्षात्कार वह जीवनलक्ष्य और अंत है। जीन लोगो को आत्मसाक्षात्कार नही हुआ वे भ्रमणाओ की जाल में फसें रहते है और अंततोगत्वा दीपक की ज्योत में तितलियां गिरकर नष्ट हो जाती है। ये लोग द्वैतभाव के जगत में खो जाते है। तितलियां बारबार दीपक की ज्योत को देखते है फिरभी उसके आसपास जाते है और अंत में वह ज्योत पर गिरकर नष्ट हो जाते है उसी तरह

मनुष्य सांसारिक जीवन की क्षणजीवी स्थिति को अपनी आंखो से देखते है फिरभी उसमें मग्न रहते है। आत्मा का साक्षात्कार किये बिना वे दुःखपूर्ण मृत्यु प्राप्त करते है।

204. जो लोग प्राणायाम का अभ्यास नही करते वे योगसिद्धि प्राप्त नही कर सकते। रस्सी के बिना कूएं में से पानी खिंचना असंभव है। जो लोग बंधनो से मुक्त नही हुए उन्हें शांति नही होती। पानी पीये बिना कोई जी नही सकता। जीन लोगोंने मन का नाश किया है वे ईच्छारहित है। छः महिने का बच्चा राजयोगी कहा जाता है लेकिन उस बच्चे के मन का विकास होता है तब बच्चा हठयोगी बन जाता है। ऐसे बच्चो का मन चंचल होता है, क्योंकी उनकी विवेकशक्ति कम होती है और ईसलिए वे मिट्टी और सक्कर को एकसमान मानते है। फल हरदम पैड की टोच पर रहता है उसी तरह मनुष्य में भी फल उसके मस्तिष्क में होता है। नारियल के बीज को भूमि में लगाया जाये तो भी उसके फल नारियल के पैड की टोच पर ही ऊगता है। हरएक वृक्ष के लिए फल उपर ही होता है।

स्पष्टीकरणः जो लोग प्राणायाम के अभ्यास नही करते वे योगी नही होते। योग का अर्थ ही मनुष्य के प्राण को नियंत्रित करना वह है। जीस तरह कूएं में से पानी खिंचने के लिए रस्सी अनिवार्य है उसी तरह मूलाधार में से कुंडलिनी को सहस्त्रार की ओर ले जाने के लिए प्राणायाम जरूरी है। जो लोग बंधन से मुक्त नही होते उन्हें शांति नही होती। पानी पीये बिना कोई मनुष्य जी नही सकता उसी तरह प्राण के बिना कोई जी नही सकता। जब मनुष्य का मन अंकुशित हो जाये तब मनुष्य ईच्छारहित हो जाता है। मनुष्य का मन मनुष्य में ईच्छाएं पैदा करने के लिए जिम्मेवार है। बच्चा छः महिने का होता है तब तक वह ईच्छारहित होता है। वह खुद को

पहचान नही सकते ईसलिए राजयोगी है। मनुष्य के मन का जैसे जैसे विकास होता है वैसे वैसे एक के बाद एक नयी चीजो को सिखता है। ईसलिए वह हठयोगी बनता है। बच्चो के मन चंचल होते है। जब उनके दीमाग का विकास नही हुआ हो। ज्ञानी भी बच्चे जैसे है। ज्ञानी के लिए सोने का या मिट्टि का टुकडा दोनो समान है। जीस तरह फल पैड पर ऊगते है उसी तरह ज्ञान मनुष्य की सुषुम्ना नाडियों में होता है। ज्ञान हरदम शरीर में ऊर्ध्वगति करता है, क्योंकी उसका केन्द्र मस्तिष्क में है। जीस तरह नारियल के पैड पर नारियल की टोच पर होते है। उसी तरह दूसरे पैडो के फलो का भी होता है। ज्ञान मनुष्यशरीर में ऊपर की दिशा की ओर जाता है क्योंकी उसका केन्द्र सहस्त्रार में है।

205. जीस तरह छाता मनुष्य को धारण नही करती लेकिन मनुष्य छाता धारण करता है उसी तरह मन मनुष्य को पकड के रखता है लेकिन मन की वृतियां ही नष्ट हो जाये बाद में भेद नष्ट हो जाती है। ऐसे मनुष्य को कोई ईच्छा नही रहती। वह संन्यासी है, वह योगी है। मनुष्य जीसके पास में मन है वह सब चाहते है लेकिन मनुष्य जीसका मन नही उसका सब उसीमें है। जीस तरह स्टीमर में सभी तरह का सामान होता है उसी तरह मनुष्यमन के जीसने जीता है उनमें सारा जगत समाया हुआ है।

स्पष्टीकरणः जीस तरह मनुष्य छाते को धारण करता है, छाता मनुष्य को धारण नही करता उसी तरह मनुष्य माया को चिपके रहता है, माया नही। माया के पास मनुष्य को पकडने के लिए हाथ या पांव नहीं है। मानवी का मन है। माया का शिकार बनता है लेकिन जैसे ही मनुष्य मन का नाश करता है वैसे ही सब भेद नष्ट हो जाते है। मन जैसे ही नष्ट होता है तब मनुष्य ईच्छारहित हो जाता है। ईच्छारहित मनुष्य ही संन्यासी

है। वही योगी है लेकिन जीस मनुष्य के पास मन है उसे सभी चीजो की जरुरत होती है लेकिन जीस मनुष्य को मन नही उसे कीसी बात की जरुरत नही होती। ऐसे मनुष्य में सारा ब्रह्मांड समाया हुआ है। वह परम शांति प्राप्त और आत्मसंतुष्ट होता है। जीस तरह स्टीमर मे सब तरह की चीजें होती है उसी तरह मन जीतनेवाले मनुष्य में सारा ब्रह्मांड समाया हुआ है। ऐसा मनुष्य परमशक्ति का विकास करता है, जो सारे ब्रह्मांड को नियंत्रित करता है।

206. जब नांव चलती हो तब हमारे आसपास का सबकुछ चलता हुआ लगता है उसी तरह मनुष्य का मन जब अद्रश्य होता है तब हमारे आसपास का सब चलता हो ऐसा लगता है। हम जो चीजो का अनुभव निद्रा में करते है उसका जागृ अवस्था में अनुभव नही करते। अगर अग्नि पर बरतन पानी के बिना रखा जाये तो कोई आवाझ नही पैदा होती। जीस तरह आवाझ पैदा करने के लिए बरतन में पानी डालना जरूरी है उसी तरह सूक्ष्म विवेक बिना के मनुष्य को कोई लाभ प्राप्त नही होता। निंद में सोए मनुष्य को नाग डसेगा तो मनुष्य मरता नही है। निंद मे सोये मनुष्य का मन शांत है-सुषुप्त है लेकिन मन जागृत हो तब सब होता है, जीसे सृष्टि कहते है वह हकिकत में मन का लगाव है लेकिन पूर्ण आत्मदर्शन करनेवाले को सृष्टि नही होती।

स्पष्टीकरणः मनुष्य का मन जब अद्रश्य होने लगता है अर्थात ईच्छारहित होने लगता है तब वह जो कुछ देखता है वह सब घूमता हो ऐसा लगता है। मनुष्य उस स्थिति में एक के दर्शन सब में करता है। मन जब पूर्णरुप से नष्ट हो तब सब एक-अजोड बन जाता है। जब नांव तैरती है तब नांव के आसपास का सब कुछ घूमता हो ऐसा लगता है लेकिन

हकिकत में नांव ही आगे जाती है उसी तरह मनुष्य के मन का परिवर्तित होता है तब सब बदला हुआ लगता है। निंद में जीसका अनुभव होता है वह अनुभव जागृत अवस्था में नही होता या जागृत अवस्था में जीसका अनुभव नही होता वह अनुभव सुषुप्तावस्था में नही होता उसी तरह आत्मा के साथ एकाकार हुई अवस्था में जो अनुभव होता है वह अनुभव मनुष्य सांसारिक जीवन में व्यस्त व्यक्ति को नही होता। बिना पानी का बरतन अग्नि पर रखा जाये तो आवाझ पैदा नही होती लेकिन आवाझ पैदा करने के लिए बरतन में पानी रखना जरुरी है। जो लोग बिना सूक्ष्म विवेक के होते है उन्हें ज्यादा लाभ प्राप्त नही होता। उन्हें आध्यात्मिक अभ्यास से भी कोई लाभ नही होता। आत्मा के साक्षात्कार के लिए सूक्ष्म विवेक जरुरी है। निंद में हमें सर्प डसता है तो हमारी मृत्यु नही होती क्योंकी हमारा मन शांत होता है-सुषुप्त होता है। मन को नष्ट किया जाये तो सृष्टि जैसा कुछ नही रहता। जीसे सृष्टि कहा जाता है वह हकिकत में मन का लगाव है। जब मन आत्मा में एकाकार हो जाता है तब सब में एक होता है। सृष्टि भी 'एक' हो जाती है। आत्मा सर्वेसर्वा बन जाता है। सब आत्मा में ही होता है।

207. अभ्यास के प्रारंभ में नये अभ्यासु (जिज्ञासु) को निंद कम करनी चाहिए। आहार का नियंत्रण करते वक्त ठंडे पानी से नहीं नहाना चाहिए। दिन में चार-पांच घंटे में ठंडे पानी से रक्तसंचार नियमित नही रहेगा। नाटक के कलाकारो शुरु में नेपथ्य में अभिनय करते है। शुरु में रहस्य रखना चाहिए, बाद में उसकी जरुरत नही रहती। पूरे भरे पानी के घड़े में पानी डाला जाये तो उसमें से पानी बाहर नीकल जाता है उसी तरह पूर्ण शांति सिद्धि करनेवाले योगी का अस्तित्व सब को मालूम हो जाता है।

ऐसा व्यक्ति ईच्छारहित होता है। अशांति पूर्णत्व का लक्षण है। पूर्ण शाति का अर्थ ईश्वर के साथ एकात्मक्ता प्राप्त करना वह है।

स्पष्टीकरणः अभ्यास के प्रारंभ में नये अभ्यासुओ को निंद कम करनी चाहिए। अभ्यास के साथ आहार का नियंत्रण करते वक्त ठंडे पानी से स्नान नही करना चाहिए क्योंकी ठंडे पानी से बारबार नहाने से रक्तसंचार अनियमित हो जाता है। शुरु में नवदिक्षित को गुप्त तौर पर अभ्यास करना चाहिए। नाटक के कलाकार प्रारंभ में पृश्ठभूमि में अभिनय करते है बाद में ऐसा करने की जरुरत नही रहती। पूर्णरुप से भरे घडे में ज्यादा पानी डाला जाये तो अतिरिक्त पानी छलक जायेगा उसी तरह पूर्ण शांति के स्तर पर पहुंचने के बाद आसपास के लोगो को उसका ज्ञान हो जाता है। परम शांति के स्तर पहुंचने के बाद शरीर का महत्व कम हो जाता है। परम शांति के स्तर पर कोई ईच्छाए रहती नही है। ईच्छारहित शांति श्रेष्ठ है। परम शांति मतलब ईश्वर का साक्षात्कार। ईससे ज्यादा शांति जीवन में नही हो सकती।

208. शांति वह ईश्वर का स्वरुप है। ओम और शांति उसके स्वरुप है। ईश्वर आकाररहित है। वह परिवर्तनरहित है। वह भेद से पर है। वह सुख है, वह पूर्ण है। बच्चे जैसे पालने में सोने के लिए रोते है उसी तरह हमे आंतरिक मानस का तकिया बना लेना चाहिए। हम कसो़टी मे उतिर्ण नही होते है तो नौकरी प्राप्त नही कर सकते। ईंग्लिश बोलना आता है लेकिन लिखना न आये तो ईंग्लिश का पूर्ण ज्ञान है ऐसा नही कह सकते।

स्पष्टीकरणः ईश्वर परम शांति है। ईश्वर ओमकार है। वह स्वरुपहीन है, परिवर्तनहीन है। वह भेद से पर है। ईश्वर परम सुख है। बच्चे जैसे पालने में सोने के लिए रोते है उसी तरह हमे भी अंदरुनी निद्रा के लिए

मानस के तकिये का आधार ले कर सो जना चाहिए। मन की वृतियो का नाश करके मनुष्य को आत्मा का साक्षात्कार करना चाहिए। मनुष्य नौकरी प्राप्त करना चाहता उसे विविध तरह की कसोटी में उतीर्ण होना पडता है। ईंग्लिश बोलना आता हो लेकिन लिखना आता न हो तो ईंग्लिश का पूरा ज्ञान है ऐसा नही कह सकते उसी तरह वेदांत की चर्चा करने से आत्मा का साक्षात्कार नही होता। हमे आत्मा के परमसुख का आनंद प्राप्त करना चाहिए।

209. गला मूलाधार का स्थान है। जहां से “स्पर्शशक्ति” कुंडलिनी पैदा होती है। ह्रदयाकाश-चिदाकाश का स्थान गले मे मतलब मूलाधार में है। चिदाकाश(ह्रदयाकाश) आंखो के बीच दो भ्रमरो के मध्य में होता है। स्वाधिष्ठान दीमाग में होता है। “अग्न” त्रिकोणाकार होता है। जीसे राजयोग कहा जाता है। वह गले के उपर होता है। “अग्न” ऐसा स्थान है जहां से मनुष्य को मुक्ति मिलती है। यह जगत जीससे कहा जाता है वह जीवात्मा है। ईस के बाद का जगत जीसे कहा जाता है वह परमात्मा है। ईन दोनो का एक होना वह चेतना के लिए स्थान है। चित्त वह मन की स्थिति है। सत एक और अविभाज्य है।

स्पष्टीकरणः जीसे ‘राजयोग’ कहा जाता है वह गले के ऊपर है। कुंडलिनी जीसे सर्वशक्ति कहा जाता है। सुषुम्ना के द्वारा गले के ऊपर जाता है तब योग का अभ्यासु “राजयोग” के प्रदेश में प्रवेश करता है। कुंडलिनी गले से नीचे की ओर होती है तब योग की स्थिति को हठयोग कहा जाता है। हमारे शरीर में सात कमल (चक्र) मूलाधार से शरू कर के होते है। मूलाधार बुनियाद है। सहस्त्रार अंतिम-चक्र हजारो पत्तीओवाला कमल दीमाग में है। ईसी तरह राजयोग में भी सात कमल होते है। जो सब

गले के उपर होते है। राजयोग में मूलाधार गले के स्थान में होता है। दूससरे योगशास्त्र से यहां पर थोडा अलग है। ईसलिए राजयोग में कुंडलिनी गले में से जागृत हो कर सहस्त्रार की ओर जाती है। ह्रदयाकाश-चिदाकाश-गले में है और कुंडलिनी तब जागृत होकर जाती है। कुंडलिनी को ह्रदयाकाश में जरुर पहुंचना है। ह्रद्याकाश- दो आंखो की भ्रमर के मध्य में है और उसे भ्रूमध्या कहा जाता है। स्वाधिष्ठान-शरीर का तृतीय चक्र दीमाग में होता है। जीसे अग्न कहा जाता है वह छठ्ठा कमल है और वह त्रिभूजाकार है। 'अग्न' ऐसा स्थान है, जहां से मनुष्य को मुक्ति मिलती है। मनुष्य की जागृत हुई कुंडलिनी छठ्ठे स्थान पर पहुंचती तब मनुष्य समाधि का अनुभव करता है। ह्रदयाकाश-अग्न में है।। 'यह जगत' जीसे कहा जाता है वह जीवात्मा है और 'बाद का जगत' जीसे कहा जाता है वह परमात्मा है। दोनो का एकाकार होना चेतना के विश्व में होता है, जीसे 'चिदाकाश' कहा जाता है। चित्त मतलब ज्ञान है वह मन की स्थिति है। 'सत' एक है और अविभाज्य है। 'चित और सत' दोनो को आत्मा में एकाकार करना चाहिए और मुक्ति सिद्ध होनी चाहिए।

210. 'पूरक' अर्थात सांस को ऊपर की ओर खींचना। कुंभक मतलब सांस को टिकाकर रखना। रेचक मतलब सांस को अंदर से बाहल निकालना। चावल में से अनेक तरह के व्यंजन तैयार होते है। ईसी तरह प्राणायाम से सब सिद्ध हो जाता है। प्राणायाम के कार्य अलग अलग होते है। प्राणायाम जीसे कहा जाता है। वह सब 'अंदरुनी कार्य' है। यह मनुष्य में बसी शिवशक्ति है। जब यह शक्ति ब्रह्मरंध्र से प्रेरित होती है तब वह ईश्वर से साक्षात्कार में परिवर्तित होती है।

स्पष्टीकरणः प्राणायाम में सांस को ऊपर लेने की प्रक्रिया को 'पूरक' कहा जाता है। कुंबक अर्थात सांस को रोक कर रखना वह है। रेचक मतलब सांस को अंदर से धीरे धीरे बाहर निकालना। जीस तरह चावल के आटे में से अनेक तरह व्यंजन तैयार होते है उसी तरह प्राणायाम से मतलब प्राण से सब कुछ सिद्ध किया जा सकता है। जब प्राण को नियंत्रित कर के सहस्त्रार की ओर ले जाते है तब सारा ब्रह्मांड मनुष्य को खुद में द्रष्टिगोचर होता है। ऐसा मनुष्य पूर्ण-पुरुष है, क्योंकी ऐसा मनुष्य पूर्ण है और पूर्ण वह है। प्राणायाम जीसे कहा जाता है वह अंदरुनी प्रवृति है। शिवशक्ति का विकास प्राणायाम से मनुष्य में होता है। जब शिवशक्ति ब्रह्मरंध्र की ओर जाती है और उसका वहन सुषुम्ना से होता है तब मनुष्य को ईश्वर का साक्षात्कार होता है। ऐसा मनुष्य परमसुख को प्राप्त करता है।

211. शिवशक्ति एक अविभाज्य है। शिवशक्ति को पाने के लिए मोक्षप्राप्ति। शिवशक्ति मतलब सांस को उपर की ओर खिंचना। शिवशक्ति अर्थात प्राणवायु। वह ओमकार है, वह प्रणव है। प्रणव से सृष्टि होती है। प्रणव शरीर के चेतना है। ओमकार आत्मा की चेतना है। ओमकार नारियल के कोपरे जैसा है। अंत-वाला अनंत में एक हो जाता है। नदी समुद्र में एक हो जाती है। मन की वृतियां नदी जैसी है। अविभाज्य शिवशक्ति वह समुद्र है। जीस तरह कागज को आग में जला दिया जाता है तब वह अपना आकार खो देता है। मन अपना व्यक्तित्व आत्मा में खो देता है। 5-6 रास्तो के लिए मिलन का स्थान एक है। हम ईस रास्ते पर सडक से या ट्रेन में जा सकते है। शरीर एक ऐसी ट्रेन है की जीसके द्वारा हम आ – जा सकते है।

स्पष्टीकरणः शिवशक्ति एक और अविभाज्य है। शिवशक्ति मोक्ष का साधन है। शिवशक्ति वह प्राण को ऊपर खिंचना वह है। शिवशक्ति प्राणवायु है। शिवशक्ति ओमकार है। शिवशक्ति प्रणव है। शिवशक्ति जीसने उसका साक्षात्कार किया है उसके लिए सर्व है। शिवशक्ति से ऊर्ध्व कुछ नही है। सृष्टि का उदगम प्रणव है। प्रणव ओमकार की सक्रिय शक्ति है। ओमकार (सुप्रीम शक्ति) परम शक्ति है, जो पूर्ण निवृति के स्तर पर होती है। प्रणव शरीर की चेतना का नाम है। जब की ओमकार आत्मा की चेतना का नाम है। ओमकार सुखे नारियल के कोपरे जैसा है। जो कीसी भी चीज के साथ बंधता नही है। ओमकार सर्वव्यापक है। अंतवाली चीज अनंतवाली चीज के साथ एक हो जाती है। जीस तरह नदीयां सागर में विलीन हो जाती है। मन की वृतियो की नदी के साथ तुलना करें तो शिवशक्ति की सागर के साथ तुलना कर सकते है। आत्मा का साक्षात्कार होता है तब मन आत्मा में विलीन हो जाता है। मन अपना व्यक्तित्व-अलग अस्तित्व खो देता है और यह एक साथ हो जाते है। आग से जला हुआ कागज आग साथे एकरुप होकर अपना अस्तित्व खो देता है। जीस तरह आत्मा और मानस एक हो जाते है तब मन अपना अस्तित्व खो देता है। पांच या छः रास्तो का मिलन स्थान एक होता है। उस रास्ते पर हम पांव से चलकर जा सकते है या ट्रेन में जा सकते है। शरीर एक ऐसी ट्रेन है जीससे मनुष्य आ – जा सकता है। मनुष्य शरीर के साथ पैदा होता है, जब शरीर नष्ट होता है तब मनुष्य जगत छोड देता है। शरीर आत्मा तक पहुंचने की ट्रेन है, जो की ईस जगत में छोटी यात्रा के लिए है।

212. योगाभ्यास के लिए शरीर को अकडकर रखे तो शरीर में जडता आ जाती है। योगाभ्यास के लिए बैठते वक्त सुगम तरीके से बैठना चाहिए। ईसे राजयोग कहते है। आसन मतलब बैठक की रीत है।

स्पष्टीकरणः योगाभ्यास में बैठते वक्त बैठने की रीत महत्वपूर्ण है। बैठने की रीत रेलवे स्टेशन की तरह अचल होनी चाहिए। रेलवे स्टेशन पर ट्रेन आती जाती रहती है लेकिन रेलवे स्टेशन स्थिर रहता है। राजयोग में बैठने की रीत आसान होनी चाहिए। आसन मतलब बैठने की रीत या बैठक।

213. समाधि मतलब अपनी शक्तियों को नियंत्रित करना। समाधि मतलब प्राण को ऊपर की ओर खिंचना उपर की ओर सांस को खिंचना मतलब उसे तारक ब्रह्म कहा जाता है। ऊपर की ओर सांस को खिंचने की प्रक्रिया परिपूर्ण हो जाती है तब सारा विश्व हमारे अंदर समा जाता हो ऐसा लगता है। ऊपर की ओर सांस खिंचना सभी प्राणीओ में एकसमान होता है। राजयोगी वह है जीसने एक और अविभाज्य का साक्षात्कार किया है। वह ईश्वर के साथ एकाकार हो जाता है। जब बोले, बैठे और सोता है। राजयोग मतलब ऊपर की मंझिल पर बैठकर चारो ओर की सृष्टि देखने जैसा है। राजयोग को राजयोग ईसलिए कहा जाता है की वह सभी योग का राजा है। जब हमारी बुद्धि ईश्वर के साथ एक हो जाती है तब उसे राजयोग कहा जाता है। वह परम शांति है – वह स्वरुपहीन है, वह गुणहीन है। यह सुख गुणरहित है। ईसे जीवनमुक्ति कहा जाता है।

स्पष्टीकरणः समाधि मतलब अपनी शक्तियो को नियंत्रित करना वह है। जब मनुष्य अपनी शक्तियो को पूर्णरुप से अंकुशित करके सहस्त्रार जीसका दीमाग है उसकी ओर दौड जाता है तब समाधि का पूर्ण सुख प्राप्त

होता है। समाधि प्राण को ऊपर की ओर खिंचने से ससमाधि सिद्ध हो सकती है। तारक ब्रह्म मतलब प्राण को ऊपर की ओर खिंचना वह है, प्राण जब ऊच्चतम स्तर पर पहुंचता है तब सारा विश्व हमारे अंदर आ जाता है। हम हमारे अंदर ऐसी शक्ति का विकास कर सकेंगे की जो सारे ब्रह्मांड को नियंत्रित कर शके। प्राण सभी प्राणीओ में एकसमान है। फर्क सिर्फ स्वरुपो का है। मूलतत्व का नहीं। राजयोगी वह है जीसने उच्चतम स्तर प्राप्त किया है। सोते, बैठते, बोलते वक्त राजयोगी हरदम ईश्वर के सांनिध्य मे रहते है। राजयोग मतलब मकान के सबसे ऊपरवाले हिस्से में बैठना और नीचे की चारो ओर फैली सृष्टि को देखने जैसा है। राजयोग जब सिद्ध होता है तब दीमाग में मन ऊपर की बैठक का अनुभव करता है। मन उसके बाद सुख का महासागर बन जाता है। राजयोग को राजयोग ईसलिए कहा जाता है की वह योग के विविध प्रकारो का राजा है। जब बुद्धि और ज्ञान एक जाये तब ईश्वर का साक्षात्कार होता है। राजयोग सिद्ध होता है। राजयोग मतलब परमशांति। वह स्वरुपहीन, गुणरहित है। परमसुख तब सिद्ध होता है जब राजयोग सिद्ध होता है। ये सुख के कोई चिह्न या गुण नही है। सुख आकाररहित है। जीवनमुक्ति तब सिद्ध होती है जब परम शांति और परम सुख सिद्ध होता है।

214. सृष्टि का विलय अनंत प्रकृति में हो जाता है और आदि प्रकृति में से फिर बाहर आना उसे सृजन ककहा जाता है। ईसमे पुनःप्रवेश को नाश कहा जाता है। जब आप सिर्फ शरीर के लिए सचेत बने और सब भूल जाएं तो उसे सृजन कहा जाता है। राजयोग के लिए कीसी निश्चित तरह के कर्म-क्रिया सूचित नही की जाती। कोई शिवभक्ति भी की नही जाती। ईसके लिए कोई निश्चित स्थान बताया नही जाता। यह सब

राजयोगी के मस्तिष्क-दीमाग में होता है। उसका प्रारंभ दीमाग से होता है। अगर व्यक्ति अपने दीमाग में यह अनुभूति करे तो उसका प्रभाव सारे शरीर में होती है।

स्पष्टीकरणः सृजन प्रकृति में अद्रश्य हो जाता है। प्रकृति वह ईश्वर की सक्रिय शक्ति है। ईश्वर वह निवृति ऊच्चतम स्तर पर होती है। प्रकृति के मूल स्वरुप में से बाहर आना उसे सृजन कहा जाता है और पुनः उसमें विलीन होना उसे नाश कहा जाता है। जब व्यक्ति सिर्फ अपने शरीर के बारे में सचेत हो और दूसरी बातो में न हो तब उसे सृजन कहा जाता है। आत्मा जब परमात्मा में विलीन हो जाए तब (विनाश) लय कहा जाता है। राजयोग में कीसी प्रकार का भक्ति का विशेष स्वरुप नहीं है। कीसी प्रकार की विशेष प्रक्रियाएं बताई नही जाती। कोई निश्चित स्थान बताया नही जाता। राजयोग निश्चित प्रकार के विधि-विधानो से मुक्त है। कोई शिवभक्ति विशेष प्रकार की नही होती। ये सब मस्तिष्क में होता है। राजयोग में ईश्वर अनुभूति दीमाग में केन्द्रीत होती है। ईस अनुभूति का प्रभाव चारों ओर पहुंचता है। ईस प्रकार का प्रभाव वैश्विक (सार्वत्रिक) प्रकार का होता है।

215. ब्रह्मत्व मतलब अपनेआप में 'एकसाथ एकत्व' की अनुभूति। पिंड बाहरी ओर से देखा जाता है। ब्रह्मानंद का अंदरुनी तौर पर अनुभव किया जा सकता है। यह ब्रह्मनाद सृष्टि से पर है। सृष्टि मानसिक स्थिति है। आत्मा अजन्मा है। मन को सर्व प्रकार के भय होते है। सभी सृष्टि का अनुभव अंदरुनी तौर पर हौता है। यह ब्रह्मनाद सृष्टि से पर है। सृष्टि मानसिक स्थिति है। आत्मा अजन्मा है। मन को सब तरह के भय है। सृष्टि के अनुभव सिर्फ देहधारी को होता है। जब बाह्यत्व को आंतरतत्व में

तबदील किया जाये तो तब सभी तरह के भय का नाश होता है। हमारे शरीर पर ऐसे अलंकार नही होते उसमें दुःख की कोई वजह नही होती। वे लोग एक प्रकार की द्रष्टि रखते है। ईच्छाएं उन लोगो की होती है, जीसके पास भौतिक आंख होती है। वे लोग भेदद्रष्टि से देखते है। ईच्छाएं मनुष्य को काम करने के लिए प्रेरित करती है। ईच्छारहित दशा मतलब मुक्ति। फल की अपेक्षा न रखें वह जीवनमुक्ति है। यह अवधूत की स्थिति है। यह स्थिति सूक्ष्म है। ज्ञानीओं को आंतरद्रष्टि होती है। ऊन्होने मन को नियंत्रित किया होता है। वे एक द्रष्टि रखते है। उन लोगो को कोई भेद नही होता। उन्होंने एक अविभाज्य का साक्षात्कार किया होता है। स्थूल स्थिति में भेद होता है। अंदरुनी सांस का विभाजन न हो सके वह अविभाज्य है।

स्पष्टीकरणः ब्रह्मतत्व मतलब अपनी आत्मा में एकत्व की अनुभूति। ब्रह्म सर्वत्र सर्व में दिखता है। सारी सृष्टि ब्रह्म से व्याप्त है। सृष्टि उसका स्वरूप है। पिंड (शरीर के अंश) जो बाहरी तौर पर दिखते है वह है। भौतिक आंख को जो दिखता है वह पिंड है। ब्रह्मांड सृष्टि से ऊपर है। ब्रह्मांड अजन्मा है। सृष्टि ए मानसिक भाव है। मन को नष्ट किया जाये मतलब मनोवेगो को अंकुशित कर लिया जाएं तो ईच्छारहित दशा पैदा होती है और तब सृष्टि का अस्तित्व नही रहेगा। आत्मा अजन्मा है। आत्मा खुद का सर्जक है। मन को सभी तरह के भय होते है। जब मन का नाश किया जाये तो भय का नाश हो जाता है। सारी सृष्टि देहधारीओ को दिखती है। जब बाहरी स्थितियां अंतरमुख हो जाएं तब सभी भय का नाश होता है। समाधि निर्भिक्ता की स्थिति है। अगर लोगो के पास ऐसे अंलकार हो तो उसे चोर का भय रहता है लेकिन जीसके पास ऐसे अलंकार न हो

उनके लिए दुःख का कोई कारण नही होता उसी तरह सृष्टि में सर्वत्र ब्रह्मदर्शन करनेवाले को कोई भय की वजह नही होती। एक ब्रह्म को दूसरे ब्रह्म के भय में रहने की कोई वजह नही है। ऐसे लोग एक द्रष्टिवाले होते है। ऐसे लोगो के लिए सब 'एक' होता है। ईच्छा उन लोगो में होती है, जो भौतिक द्रष्टि से देखते है। ईच्छाएं मानवी को काम करने से प्रेरित करती है। मनुष्य ईस जगत में खुद को पसंद हो उसे प्राप्त करने के लिए प्रयास करता है लेकिन अगर मनुष्य ईच्छारहित दशा पर पहुंचा है तो वह पूर्णरुप से निवृति के स्तर पर पहुंचता है। पूर्णरुप से ऊच्छारहित होने की स्थिति जीवनमुक्ति की स्थिति है। कर्मफल की अपेक्षा न हो वह जीवनमुक्ति है। यह स्थिति अवधूत की है। यह स्थिति अति सूक्ष्म है। ईस चीज का अनुभव किया जा सकता है लेकिन विवरण नही दिया जा सकता।

ज्ञानीओ को आंतरद्रष्टि होती है। ज्ञानीओने मानस को जीता है। ईसलिए ज्ञानीओ सर्वत्र एक (मन) तत्व के अनुभव करते है। ज्ञानीओ सृष्टि के सृजनकर्ता के दर्शन सृष्टि मे करते है और सारी सृष्टि का दर्शन ईश्वर में करते है। ज्ञानीओ में भेदबुद्धि नही होती। ज्ञानीओने एक अविभाज्य ईश्वर का साक्षात्कार किया होता है। स्थूल स्थिति में भेद होता है। सूक्ष्म स्थिति में सब एक होता है। प्राण एक और अविभाज्य होता है। प्राण सृष्टि के सभी प्राणीओ मे एकसमान होता है।

216. स्थूल का विचार मानसिक है। सूक्ष्म स्थिति आण्विक है। ज्ञानी योगनिद्रा में मस्त रहते है। वे बैठते-ऊठते ईसी स्थिति में रहते है। ज्ञानी की तुलना कछुए के साथ कर सकते है। कछूएं अपने अंगो की सुरक्षा जबब जरूरी हो तब अपनी पीठ से करता है उसके सिवां वे अपने अंगो को खुल्ला रखते है।

स्पष्टीकरणः मनुष्यमन दुन्यवी बातो में होता है वह मनुष्य की स्थूलवृतियो का सूचक है। ईस तरह स्थूल का विचार मानसिक है। सूक्ष्म स्थिति आण्विक है। आत्मा की सूक्ष्म स्थिति पर पहुंचनेवाले व्यक्ति को ही दर्शन होते है। ज्ञानी लोग वे है जो योगनिद्रा में मस्त रहते है। योगनिद्रा वह समाधि की स्थिति है मतलब पुर्णरुप से निर्भीक्ता की स्थिति है। ज्ञानी हरदम समाधि में रहते है। ज्ञानीलोग ऊठते-बैठते या शरीर की कीसी भी प्रक्रिया करते करते समाधि में रहते है। ज्ञानी कछूए जैसे होते है। कछूआ अपने अंगो को जब जरुरत हो तभ दिखाता है नही तो वह अपनी पीठ के पीछे छूपाकर रखता है। ज्ञानी भी उसी तरह हरदम ईश्वर के साथ जुडा रहता है और ईस स्थिति में से अनिवार्य हो तभी बाहर आता है। बाकी के समय में ज्ञानी ईश्वर में लीन रहते है।

217. रेलवे की ट्रेन सामान्य गति की हो या गति से चलनेवाली हो लेकिन दोनो में शक्ति एकसमान ही उपयोग में ली जाती है, लेकिन दोनो के गंतव्य स्थान पर पहुंचने के समय में फर्क पडता है। संन्यासी वह मेल ट्रेन (ज्यादा गतिवाली ट्रेन) जैसा है। संन्यासी हरदम बाहरी विश्व को खुद में देखता है, लेकिन सांसारिक जीवन में रत रहनेवाले लोग (लोकल ट्रेन) सामान्य ट्रेन जैसे होते है। ट्रेन में प्रवेश करना मुश्किल होता है लेकिन एकबार प्रवेश कर लेने के बाद कोई मुश्किल नही होती। ट्रेन में प्रवेश ककरने के बाद मनुष्य अपने सामान की चिंता नही करता। हम ट्रेन में बैठकर कोई चीज खरीदते है तो भी हमारा ध्यान ट्रेन की ओर ही रहता है उसी तरह सब से पहले विवेक – बाद में नाद – सुनना वह है। हम कर्म कुछ भी करें तो भी हमारा ध्यान चित्त पर रहना चाहिए। देखना, सुनना, बाते करनी वह सत्यार्थ में कर्म नही है लेकिन नासिका से सासे ग्रहण

करना वह वास्तविक (एक्शन) कर्म है। ‘शुभकर्म’ कहना वह अधोमार्ग का सूचक है।

स्पष्टीकरणः मनुष्य सभी आत्मा का साक्षात्कार करता है लेकिन एक समय पर ही सब का साक्षात्कार नही करता। सामान्य गतिवाली ट्रेन और ज्यादा गतिवाली ट्रेन दोनो में शक्ति का उपयोग एकसमान ही होता है लेकिन सिर्फ गंतव्य स्थान पर पहुंचने के समय में ही फर्क रहता है उसी तरह सभी लोग आज या कल ईश्वर का साक्षात्कार करेंगे। सवाल सिर्फ समय का है। प्राण सभी में एकसमान होता है। संन्यासी मेल ट्रेन (ज्यादा गतिवाली ट्रेन) जैसा होता है। संन्यासी वह है जो आजीवन काल में ही ईश्वर का साक्षात्कार करता है। संन्यासी के लिए सारा विश्व अपने हृदय में होता है। उसने अपनेआप में ऐसी शक्ति का विकास किया होता है जीससे वह सारा ब्रह्मांड नियंत्रित करता है। जो व्यक्ति अपनी शक्तियों को सांसारिक जीवन में केन्द्रीत करता है वह लोकल ट्रेन जैसे है। ऐसे लोग जीवनलक्ष्य में देर से पहुंचते है। ट्रेन में दाखिल होना मुश्किल होता है लेकिन बाद में कोई मुश्किल नही होती। उसके बाद मनुष्य अपने सामान के बारे में चिंतित नही होता। उसी तरह मनुष्य के लिए आत्मा पर ध्यान केन्द्रीत करना मुश्किल होता है लेकिन एकबार आत्मा पर ध्यान केन्द्रीत हो जाता है तब सांसारिक जीवन का कोई आकर्षण नही रहेगा हम जब ट्रेन मे बैठकर चीजें खरिदते है तब हमारा पूरा ध्यान ट्रेन पर ही रहता है। हम ट्रेन कब चलेगी ऐसा ही सोचते रहते है, नहीं तो हमारा कोई सौदा अधूरा रह जायेगा उसी तरह हमारा प्राथमिक ध्यान विवेक पर ही होना चाहिए। हमे उसके बाद ‘नाद’ के बारे में सोचना है। जो भी हम देखे और सुनें उसके पर हकीकत में देखना, सुनना, बाते करना वह कर्म नही है लेकिन

सांस अर्थात 'प्राण' का अंदर बाहर होना उसके ऊपर ही सभी प्रक्रियाओ का आधार है। सांस अटक जाती है तो सभी क्रियाओ का अंत आ जाता है। ईसलिए नासिका से सांस ले वही सही प्रक्रिया है। ये सब क्रियाएं बंधन है। अच्छे और बूरे कर्म दोनो बंधन है। एकमात्र प्राण स्थान सच्चा कर्म है, जीसमे कोई बंधन नही होते। प्राण सृष्टि के सभी प्राणीओ में एकसमान होता है। जीस तरह लोकल ट्रेन और एक्सप्रेस ट्रेन दोनो में एकसमान शक्ति होती है।

218. मौन जीसे कहा जाता है वह 'मन' के संदर्भ में है जिह्वा के संदर्भ में नहीं। बुद्धि और ज्ञान जब आथ्मा के साथ एकाकार हो तब किया जाये वह कर्म नहीं है। मौन मन का वास्तविक विस्तार है। जिह्वा का नही। मौन से योग सिद्ध होता है। वह योगी है, जीसने बुद्धि और ज्ञान दोनो एक किये है। जो मनुष्य मन को बुद्धि के अधीन करता है, बुद्धि मन को अंकुशित करे वह योगी है। जीसे मौन का व्याप (मर्यादित विस्तार) कहा जाता है वह सुषुम्ना का दूसरा नाम है, जो ईडा और पींगला का मिलनस्थान है। शरीर की तीन महत्वपूर्ण नाडियां है। ईडा, पिंगला और सुषुम्ना कुंडलिनी बैठक है।

स्पष्टीकरणः मौन हकीकत में मन के संदर्भ में होता है और जीवन के संदर्भ में नही। सिर्फ एक शब्द बोले बिना जिह्वा को ताला लगाकर रखना वह मौन नही है। मौन सच्चा होना चाहिए और वह मन से होना चाहिए। मन परम शांति में होना चाहिए। मन यहां-वहां भटकना नही चाहिए। बुद्धि और ज्ञान जब आत्मा के साथ एकाकार हो जाते तभी जो

किया जाता है वह कर्म नही है। कर्म सिर्फ दुन्यवी बातो-भौतिक बातो के लिए होता है। बुद्धि और ज्ञान एकाकार हो जाये तब सृजनकर्ता के साथ

एकत्व स्थापित होता है। यह उच्चतम स्थिति जब सिद्ध होती है। तब वह दैवी होती है उसमें सांसारिक जीवन का कोई तत्व नही होता। ईसलिए उसे कर्म नही कहा जा सकता। मौन मन का विस्तार है, जिह्वा का नही। सच्चा मौन तब सिद्ध हो सकता है जब मन मस्तिष्क में उसके सच्चे स्तर पर होता है, आम मनुष्य की तरह निम्न स्तर पर नही। मन विचारो से मुक्त हो जाता है। ऐसी स्थिति में मन परम शांति का अनुभव करता है। ऐसी स्थिति में मन पूर्णरुप से मौन का अनुभव कर सकता है। योग में सब मौन से सिद्ध होता है। हम हमारी शक्ति बोलते बोलते बिगाडते है और जिह्वा को ज्यादा काम देते है। जब ईस शक्ति का संवर्धन करते है और ईश्वर साक्षात्कार की दिशा मे आते है तब हमारा लक्ष्य कुछ ही समय में गौरवप्रद तरीके से सिद्ध कर सकते है। योगी वह है जीसने मन और बुद्धि को एक में शामिल किया है। जो मनुष्य मन को बुद्धि के अधीन करे और बुद्धि को मन से अंकुशित करे वह योगी है। ऐसे मनुष्य अपने कार्य में बहुत अचूक-निश्चिंत होते है। हम पूर्णरुप से मौन तभी सिद्ध कर सकते है जब हमारा मन भ्रूमध्या हमारे भ्रमरो के मध्य में केन्द्रीत करेंगे। भ्रूमध्या ईडा और पिंगला नाडी का मिलन स्थान है। मौन तभी सिद्ध हो सकता है जब हम सुषुम्ना में ध्यान केन्द्रीत कर सकेंगे। सुषुम्ना मनुष्य में रहनेवाली कुंडलिनी की बैठक है। मनुष्य की तीन महत्वपूर्ण नाडीयां है – ईडा, पिंगला और सुषुम्ना।

219. सभी तत्वो का मूल तत्व परब्रह्म है। जब परब्रह्म का साक्षात्कार होता है तब जीवनमुक्ति सिद्ध होती है। हमे नदी को उसके उदगम स्थान में देखना चाहिए, सागर में मिल जाने के बाद नही। हमें वृक्ष के प्रमुख जडों का देखना चाहिए। जीस तरह सभी पेड एक प्रमुख जडों

रखते है उसी तरह सभी के लिए एक और एक ही ईश्वर होते है। जब मनुष्य को सब एकसमान अनुभव होते है तब ईस स्थिति को जीवनमुक्ति की स्थिति कहा जाता है।

स्पष्टीकरणः परब्रह्म सभी तत्वो का मूलतत्व है। जब सिद्धि होती है तब उसे जीवनमुक्ति कहा जाता है। जीवनमुक्ति अर्थात ईसी मनुष्य जीवन में बंधनो से मुक्त हो जाना। हम परब्रह्म में से पैदा हुए और परब्रह्म का साक्षात्कार हमारा फर्ज़ है। परब्रह्म का साक्षात्कार करना मतलब हमारे अस्तित्व की जडें देखना वह है। हमे नदी को देखना हो तो उसके उदगम स्थान में देखनी चाहिए, सागर में विलीन हो जाने के बाद नही। हमे पैड की प्रमुख जडें देखनी चाहिए उसी तरह हमे परब्रह्म के साथ एकत्व रखना चाहिए। परब्रह्म सृष्टि का उद्‌गम स्थान है। जीस तरह ईश्वर सभी के लिए एक है उसी तरह सभी पैडो के लिए प्रमुख जडें एक ही होती है। हम जब अनुभव करते है की जो कुछ हो रहा है वह ईश्वर की करनी है तो हम मुक्ति सिद्ध की है ऐसा कह सकते है।

220. नाटक के कलाकारो पृष्ठभूमि में प्रथम (परदे के पीछे) नाटक का अभ्यास करते है और बाद में वे मंच पर अभिनय करते है। ऐसा ही योग के अभ्यास में है। प्रथम उसका गुप्त तरीके से अभ्यास किया जाता है और जब सिद्धि प्राप्त होती तब वह स्वयंप्रकाशित होता है। जब हम कला का अभ्यास करते है तब एकसाथ ही पूरा अनुभव नही मिलता। अभ्यास जीतना ज्यादा किया जाता है उतना अनुभव भी बढता है।

स्पष्टीकरणः योग के प्रारंभ में गुप्त तरीके से अभ्यास करना चाहिए लेकिन जब योगसिद्धि प्राप्त होती है तब स्वयं लोगो के ध्यान पर आती है। नाटक के कलाकारो परदे के पीछे नाटक का पूर्वप्रयोग करते है और

बाद में मंच पर वास्तविक तौर पर प्रस्तुत करते है। योग भी ईन आम नियमो में अपवाद नही है। मनुष्य जब कला सिखता है तब उसे एकही बार में सब अनुभव नही मिल जाता। ज्यादा से ज्यादा अभ्यास किया जाये तो ज्यादा से ज्यादा अनुभव प्राप्त होता है उसी तरह नवदीक्षित योगी जीस तरह योग का अभ्यास ज्यादा करता है उसी तरह उसे ईश्वर के परम सुख की अनुभूति होती है। फल मनुष्य के प्रयासो के हिसाब से होता है।

221. बनाया हुआ आहार सिर्फ सूंघने से व्यक्ति की भूख मिटती नही है। ईसके लिए आहार खाना पडता है और तभी भूख मिटती है। उसी तरह अनुभव एक सिद्धि है। आपने जीस सत्य का अनुभव किया हो उसका कोई विरोध नही कर सकता। हाथ में शक्कर रखने से शक्कर की मीठास का पता नही चलता। शक्कर की मीठास पाने के लिए उसके टुकडे को जिह्वा पर रखना पडता है। यह अनुभूति है। पुस्तक का ज्ञान शंका-विवादो को जन्म देते है लेकिन स्वानुभव को नहीं। अपना अनुभव नागरिको के लिए राज्य की आज्ञा समान होता है लेकिन पुस्तक का ज्ञान नागरिको जैसा है। जीवनमुक्ति उसे कहा जाता है जो योग का लक्ष्य और घर है। यह चीज सिद्ध करनी है। गुफा में रहना वह मनुष्यजीवन में सिद्ध करने जैसी बात है। बुद्धि एक गुफा है। जब जीवात्मा बुद्धि में रहना सिखता है तब जीवन का लक्ष्य सिद्ध होता है। ह्रदयाकाश आत्मा के रहने का स्थान है और आत्मा तृतीय (दिव्य) आंख का स्थान है। ह्रदयाकाश एक गुफा है। भेद की वजह से पुरुष स्त्री बनता है और स्त्री पुरुष बनता है लेकिन हकीकत में सिर्फ बाहरी शरीर और उसके कार्य का फर्क पैदा होता है लेकिन उसमें रहनेवाली सूक्ष्म-वस्तु एक ही है। सूक्ष्म भेद बिना का पुरुष वह स्त्री है। स्त्री के अंदर बुद्धि और ज्ञान जब एक हो गये हो तबब वह पुरुष बन

जाती है। कूएं के पंप में से स्क्रू घूमानेवाली स्त्री हो या पुरुष पानी एकसमान तरीके से नीकलता है। भक्ति में स्त्री या पुरुष का कोई भेद नही होता। स्त्री और पुरुष का भेद सिर्फ शारीरिक होता है। शिवशक्ति पुरुष और स्त्री दोनो में एकसमान होती है।

स्पष्टीकरणः मनुष्य को सत्य का स्वानुभव होना चाहिए। अनुभव किताबी ज्ञान से ज्यादा अच्छा है। व्यक्ति सिर्फ आहार सूंघकर अपनी भूख मिटा नही सकता। उसके लिए आहार खाना जरूरी होता है। मनुष्य को शक्कर का स्वाद चखने के लिए उसके टुकडे को जिह्वा पर रखना पडता है उसी तरह परमसुख क्या है वह समझने के लिए मनुष्य को खुद को अनुभव करना पडता है। सत्य का अनुभव ही सच्ची सिद्धि है – और कुछ नही। ईश्वर के परमसुख का अनुभव कोई शंका की वजह नही बनता। किताबी ज्ञान शंका-विवादो की वजह बन सकता है। व्यक्ति अपनी ईश्वर की चर्चा में अधिकृत तौर पर तभी बात कर सकता अगर उसने खुद अनुभव किया हो। व्यक्ति अपने अनुभव की वजह से राजा अपने नागरिको को जीस अधिकार से हुक्म देता है उसी तरह अपने स्वानुभव की बातें कर सकता है। अनुभव राजा की आज्ञा जैसा होता है तो पुस्तक का ज्ञान नागरिको जैसा है। पुस्तक का ज्ञान स्वानुभव की तुलना में नही आ सकता। जीवनमुक्ति व्यक्ति के अपने ही घर जैसा होता है और उसके योग का अंत है। यही चीज सिद्ध करनी होती है। बुद्धि एक गुफा है। जब जीवात्मा बुद्धि में रहना सिखता है तब जीव का ध्येय सिद्ध होता है। जब बुद्धि आत्मा में विलीन हो जाता है तब जीवन का लक्ष्य सिद्ध होता है। जब बुद्धि आत्मा में मिल जाती है तब ‘परम’ की सिद्धि होती है। यह गुफा में रहना ही सिद्धि करना है। हृदयाकाश वह आत्मा के रहने की जगह है और

आत्मा तृतीय आंख (दिव्य) का स्थान है। ह्रदयाकाश एक गुफा है। जीवात्मा को परमात्मा की गुफा में रहना है। पुरुष और स्त्री शारीरिक भेदभाव है। भेद की वजह से स्त्री पुरुष बनती है और पुरुष स्त्री बनता है। स्त्री और पुरुष में बाहरी शरीर और कार्य का फर्क होता है लेकिन दोनो में सूक्ष्म तत्व एकसमान रहता है। अगर स्त्री में बुद्धि और आत्मा एक हो गये हो तो पुरुष बन जाती है। पुरुष या स्त्री बनना उनके आंतरिक स्वभाव पर निर्भर होता है, उनके स्थूल शरीर पर नही। भक्ति स्त्री-पुरुष के भेद बिना सिद्ध हो सकती है। कूएं के पंप में से स्क्रू पुरुष या स्त्री कोई भी घूमाएं तो भी पानी एकसमान ही बाहर आता है उसी तरह भक्ति जीन लोगो का मन शुद्ध हो उस स्त्री या पुरुष कीसी से भी सिद्ध हो सकता है। ज्ञानीओ को लिंगभेद नही होते। उनके हिसाब से सब समान होते है। शिवशक्ति पुरुष या स्त्री दोनो में एकसमान ही होती है। ईश्वर की शक्ति मनुष्य स्त्री या पुरुष हो लेकिन समान ही होती है।

222. जो लोग ईच्छारहित है उन्हें भय नही है। जो लोग ईच्छारहित होते है वें सुखी होते है। जीन लोगो की विवेकबुद्धि तेज है वे महान है। मनुष्य भूमि और संपति एकत्रित करने से महान नही बनता। थोडी संपति और पहाड अपने पास होने से मनुष्य महान नही बनता। शूद्र की विवेकबुद्धि वही हो तो वह महान है। ब्राह्मण उसे ही कहा जाता है जीसके पास बुद्धि होती है। बडा महल, संपति, हीरे-हार-हीरे की अंगूठीयां मनुष्य को महान नही बनाते सिर्फ जीनकी विवेकबुद्धि होती है वही महान है। भौतिक तौर पर संपन्न व्यक्ति महान नही है। सोने का भंडार रखनेवाला मनुष्य महान नही होता।

स्पष्टीकरणः जो लोग ईच्छारहित है उन्हें भय नही होता। ईच्छा भय की वजह है। ईच्छारहित मनुष्यों सुखी होते है। ऐसे लोग ईश्वर के परम सुख को प्राप्त करते है। महानता भौतिक संपति एकत्रित करने से मिलती नही है। वह महान मानवी जीसके पास विवेकबुद्धि है। विवेकहीन मानवी महान नही है। संपति रखनेवाला, भूमि-पहाडो, बडे घर-हीरे-हार-हीरे की अंगूठीयां सोने की अंगूठीयां मनुष्य को महान नही बनाते। शूद्र भले ही गरीब हो लेकिन विवेकबुद्धि रखता हो तो वह महान है। ब्राह्मण वही है जीसके पास विवेकबुद्धि है। सोने के भंडार रखनेवाला महान नही है। महानता सिर्फ आत्मा की होनी चाहिए, देह की नही। जीसने आत्मा को सिद्ध किया है वह महानतम मनुष्य है।

223. सभी विज्ञानो में ब्रह्मविज्ञान श्रेष्ठ है। यह रहस्य अगर मनुष्य समझे नही तो कर्म के बंधनो से मनुष्य मुक्त नही होता।

स्पष्टीकरणः सभी विज्ञानो में श्रेष्ठ विज्ञान ब्रह्मज्ञान है। यह रहस्य समझ में आता है तो ही कर्म के बंधन टूटते है। फूल फल की वजह है। फल पकता तब फूल स्वयं गिर जाता है उसी तरह ज्ञान सिद्ध होता है तब कर्म के बंधन स्वयं तूट जाते है।

224. हे भिखारी! योग के अग्नि में मन की भ्रमणाओ को जला दो। जीन लोगोने ब्रह्म सिद्ध किया नही है वे सत्य समझते नही है। वे लोग सच्चा आनंद प्राप्त नही कर सकते। अहंकारी वृतियां नष्ट नही होती। आनंद के बंधन को मजबूत बनाओ। ईच्छाओ को मन के भीतर रख दो। ईच्छाएं फलरहित है, उसे आंतरिक तौर पर नष्ट करो।

स्पष्टीकरणः हे भिखारी जैसे लोगो, योग के अभ्यास से मन की भ्रमणाओं को योगाग्नि में जला दो। योग के सतत अभ्यास से मन को जा दो। जीन लोगोने ब्रह्म का साक्षात्कार नही किया वे लोग सत्य समझते नही है। ब्रह्म सत्य है, परमसत्य के अनुभव के बिना व्यक्ति सच्चा आनंद प्राप्त नही कर सकता। आत्मा के साक्षात्कार के बिना अहंभावी वृतियां नष्ट नही होती। हे मानवी-आनंद के बंधन मजबूत बनाओ। आनंद में रहो। आपकी ईच्छाओ को मानस के भीतर डाल दो। ईच्छाओ का कोई उपयोग नही है। वह फलरहित है। ईच्छाओ को आंतरिक तौर पर नष्ट करो। आंतरिक तौर पर मतलब मन को आत्मा में विलीन करके।

225. जब जीव मनुष्य में रहनेवाली शिवशक्ति को अंदरुनी तौर पर दीमाग के केन्द्र (ब्रह्मरंध्र) की ओर ले जाता है और वहां वह शिव के साथ एक हो जाता है, अविभाज्य हो जाता है तब मुक्ति सिद्ध हो जाती है। ब्रह्मानंद वे लोगो के लिए है, जीसने मुक्ति सिद्ध की है। हरदम शिव पर ध्यान केन्द्रीत करो। शुरु में शिव थे, शुरु में सिर्फ शिवशक्ति थे। शाश्वत आनंद है वही रक्षक है। जो ईच्छारहित है वह त्रिगुणरहित है, वही सच्चा गुण है। हम ही हमारे राजा है। आप ही मुक्ति के देव हो। सच्चा स्वरुप मनुष्य स्वरुप है। प्राणीसृष्टि में मनुष्य सर्व से आगे है। ईस सृष्टि में मनुष्य से आगे कुछ नही है। मनुष्य ही सभी देशो का सृजन करता है।

स्पष्टीकरणः मनुष्य में रहनेवाली कुंडलिनी को सहस्त्रार – जो हजार पत्तीओवाला कमल है उसकी ओर मूलाधार में भी अर्थात शरीर के मूल-कमल में ले जानी चाहिए। यह सिद्ध हो तब मुक्ति सिद्ध होती है। मनुष्य शिव के साथ एक हो जाता है। ईसी तरह प्राप्त हुई मुक्ति एक-अविभाज्य है। ब्रह्मानद तभी प्राप्त होता है जब मुक्ति सिद्ध होती है। हे मनुष्य!

हरदम शिव पर ध्यान केन्द्रीत करो। शिव शुरु में एक ही थे। शुरु में सिर्फ शिवशक्ति एक ही थे। शाश्वत आनंद वह ईश्वर संरक्षक है। ईच्छारहित स्थिति ही शाश्वत आनंद है। जो त्रिगुणरहित है वह ईच्छारहित है। ईच्छा हकीकत में मनुष्य में रहनेवाले तीन गुणो का परिणाम है। ईच्छारहित स्थिति का एक सच्चा गुण विकसित करना है। आत्मा शरीर का राजा है। आत्मा मुक्ति का देवता है। आत्मा का दर्शन स्व में करो। मनुष्यजन्म ईश्वर की सृष्टि में श्रेष्ठ है। विश्व में मनुष्य से बडी कोई योनि नही है। अरे! खुद ईश्वरने भी परमात्मा के साक्षात्कार के लिए मनुष्यजन्म लिया था। मनुष्यजन्म सच्चा जन्म है। मनुष्य जो की देश के भेद बनाता है वह स्व का श्रेष्ठ उपयोग करे तो सर्वशक्तिमान है।

226. ब्रह्मानंद का अनुभव करनेवाले को ब्राह्मण कहा जाता है। हमारी माया नाशवंत है। हे हरि! अहं को जला दो। जीसने मानस (मन) का नाश किया है उसने माया का नाश किया है। माया ईश्वर नही है। शिव ईश्वर है। सब लोगो को मालूमे है की मख्खन दूध में छूपा है। मख्खन प्राप्त कर सके ऐसे लोग बहुत कम होते है। भक्ति दूध है। विवेक के अग्नि पर भक्तिस्वरुप दूध को गरम करे। बुद्धिस्वरुप बरतन में गर्म करके ईश्वररुपी मख्खन प्राप्त कर सकते है। विवेक का अग्नि मतलब योग का अग्नि। ईस विवेक के अग्नि से मनुष्य के दूश्मनो का नाश हो सके। ये षडरिपु मतलपब गुस्सा, ईच्छाएं, ईर्ष्या, काम, लोभ। और तभी ईश्व साक्षात्काररूपी मख्खन मिल सकता है।

स्पष्टीकरणः जीसने ब्रह्म का साक्षात्कार किया हो और उसके परम्सुख प्राप्त किया हो वही ब्राह्मण है। माया नाशवंत है। ईश्वर शाश्वत है। हे हरि! मनुष्य के अहं को जलाकर नष्ट करो। अहं सभी दूषणो की जड

है। जीसने मानस का नाश किया उसने माया का नाश किया है। माया मानसिक लगाव है। मन का नाश होता है तब माया का अस्तित्व नही रहता है। माया ईश्वर नही है। शिव ही ईश्वर है। सब लोग जानते है की मख्खन दूध में फैला हुआ है। मख्खन प्राप्त करने के लिए दूध को उबालना पडे। मख्खन प्राप्त करनेवाले लोग बहुत कम होते है उसी तरह सब लोगो को ईश्वर है ऐसा मालूम है लेकिन बहुत कम लोग ही उसे प्राप्त कर सकते है। भक्ति एक प्रकार का दूध है। दूध को विवेक की अग्नि पर गर्म करना चाहिए। जीस तरह दूध में से मख्खन प्राप्त करने के लिए अग्नि का उपयोग करना पडता है उसी तरह विवेक की अग्नि से भक्तिरूपी दूध में से ईश्वर का साक्षात्कारुपी अमृत प्राप्त होता है। बुद्धि विवेक के लिए बरतन है। विवेक बुद्धि में होता है। योगाग्नि मतलब विवेक की अग्नि। हमे हमारे शरीर को विवेक के अग्नि से प्रशिक्षित करना चाहिए। इस विवेक के अग्नि से मनुष्यशरीर के छः दुश्मनो – क्रोध, ईच्छा, काम ईर्ष्या, लोभ और मोह का नाश होता है और निर्वाण का नवनीत (मख्खन) – मुक्ति प्राप्त होती है।

227. जैसे दीपक बिना तैल के जल नही सकता उसी तरह सांस बिना शरीर चल नही सकता। बिना पतवार नांव लक्ष्य तक पहुंच नही सकती। स्टीमर भांप की ऊर्जा से चलती है और बुद्धि केप्टन है, नांव स्टीमर की तरह चल नहीं सकती। संन्यासी स्टीमर जैसे है, जो लोगो में सारा विश्व हो वे स्टीमर जैसे होते है। जो लोग सांसारिक आनंदो में लीन रहते है वे नांव जैसे होते है। स्टीमर की टोच पर मार्गदर्शक प्रकाश (दीपक) होता है उसी तरह ब्रह्मरंध्र संन्यासी के मार्गदर्शक (दीपक) जैसा है। सन्यासी का मन हृदयाकाश में लीन हो गया होता है। सन्यासी प्रकाश है।

गाय अश्व की गति से दौड नही सकती। जीसका मन आत्मा में विलीन हो गया है वह अश्व जैसा है। जीनका मन सांसारिक जीवन में अटका है वे गाय जैसा होते है। सभी लोग एकसाथ राजा हो नही सकते। सब लोग एकसाथ व्यापारी नही बन सकते। उसके लिए उपभोक्ता होना जरुरी है।

स्पष्टीकरणः प्राण शरीर की सबसे महत्वपूर्ण शक्ति है। शरीर जीस तरह बिना प्राण के नही चल सकता उसी तरह दीपक बिना तैल के जल नही सकता। जीस तरह नांव को किनारे तक ले जाने के लिए पतवार आवश्यक है उसी तरह सांसो पर एकाग्रता प्राप्त किये बिना मनुष्य मन को नियंत्रित नही कर सकता और वे बिना मन से आत्मा में लीन नही कर सकता। स्टीमर स्टीम एनर्जी और कप्तान की बुद्धि से चलती है। नाव स्टीमर की तरह चल नही सकती उसी तरह सांसारिक जीवन में अटका मनुष्य संन्यासी के रास्ते और रीत समझ नही सकता। संन्यासी स्टीमर जैसे होते है उनकी सभी ईन ईन्द्रिया विवेकबुद्धि से नियंत्रित होती है और आत्मा की ओर रहती है। जीस व्यक्ति में सारा विश्व हो वह स्टीमर जैसा होता है। ऐसे मनुष्य का मन सुनियंत्रित होता है लेकिन जीस मनुष्य का मन सांसारिक जीवन में अटका हो वह नांव जैसा होता है। सांसारिक जीवन में अटका मानवी स्थिर नही होता और अपना लक्ष्य नही जानता। सांसारिक जीवन में रहनेवाले लोगो का मन बिना अंकुश की नांव की तरह यहां-वहां भटकता रहता है। स्टीमर का मार्गदर्शक दीपक उसकी टोच पर होता है उसी तरह संन्यासी का ब्रह्मरंध्र है। ब्रह्मरंध्र वह सहस्त्र सूर्य के प्रकाश का स्थान है। कुंडलिनी का प्रकाश उनके मस्तिष्क में फैलता रहता है। संन्यासी का मन ह्रदयाकाश में लीन होता है। संन्यासी हरदम ब्रह्म के साथ एकाकार रहता है। ईस तरह संन्यासी स्वयं प्रकाश है। संन्यासी वह है

जो सर्वज्ञानी है। गाय अश्व की तरह दौड नही सकती। जीसका मन आत्मा में लीन है वह अश्व जैसा है। सांसारिक जीवन में अटका मनुष्य गाय जैसा है। अश्व गति के तौर पर गाय से अच्छा है उसी तरह संन्यासी सांसारिक जीवन में अटकते मनुष्य से अच्छा है। सब लोग एक समय पर राजा नही बन सकते उसी तरह सब लोग एक समय पर व्यापारी बन नही सकते उसी तरह सब लोग एकसमय पर ज्ञानी नही बन सकते। थोडे अज्ञानी लोग ज्ञानीओ का लाभ लेने के लिए आवश्यक होते है। अंधकार के बिना प्रकाश नही है। प्रकाश और अंधकार दोनो जरुरी है।

228. अंधकार में चलते है तब डर लगता है लेकिन रोशनी में कीसी तरह का भय नही होता। अज्ञान अंधकार है। ज्ञान प्रकाश है। गुरु एक प्रकाश है। प्रकाश वह गुरु है।

स्पष्टीकरणः जब हम अज्ञानता में अटकते है तब हमें डर लगता है लेकिन प्रकाश में होते है तब कोई भय नही होता। जब आत्मा का साक्षात्कार हो और ज्ञानप्राप्ति हो तब हमे भय नही लगता। अज्ञानत अंधकार है। ज्ञान वह प्रकाश है। गुरु ज्ञानदाता है। गुरु दीपक जैसे है, जीनकी उपस्थिति से अंधकार दूर हो जाता है। गुरु एक प्रकाश है और प्रकाश गुरु है।

229. गाढ निद्रा में मनुष्य सब भूल जाता है। दस माईल चलने के बाद थककर सो जाये तो सारे विश्व का अस्तित्व हम भूल जाते है उसी तरह भूखे हौ तब अपना आहार खा कर भूख संतुष्ट करनी चाहिए।

स्पष्टीकरणः समाधि एक परम सुख की स्थिति है, जीसमें मनुष्य ईश्वर के साथ एकाकार हो जाता है। समाधि में मनुष्य अति जागृत

अवस्था में होता है और सांसारिक जीवन को भूल जाता है। दस माईल चलकर थका हुआ मनुष्य गाढ निद्रा में सो जाता है तब सारे विश्व को भूल जाता है उसी तरह समाधिस्थ व्यक्ति ईश्वर में लीन हो जाने से उसी बात में सचेत रहता है। मनुष्य भूखा हो तब उसे तृप्ति के लिए स्वयं आहार ग्रहण करना पडता है उसी तरह समाधि सिद्ध करने के लिए मनुष्य को खुद प्रयास करना चाहिए।

230. रास्ते की दोनो ओर पानी को बहने के लिए नाली होती है उसी तरह सांस को उपर की ओर ले जाना जरूरी है। पत्थर को उपर की ओर ले जाने के लिए ज्यादा प्रयास करना पडता है लेकिन उसे नीचे गिराने के लिए ज्यादा महेनत नही करनी पडती ऐसा ही ध्यान का है। जन्म लेना सरल है लेकिन शरीर छोडना कठिन है। हमे नदी के मूलस्थान को ढूंढना चाहिए। नदी सागर में मिल जाये बाद में नदी को देखना उसका कोई मतलब नही है। पैडो के लिए मातृ मूल महत्वपूर्ण है। बाकी सब जडें गौण जडें है। हम कुर्सी उठाते है तो सांस उपर की ओर जाता है। यह ऊर्ध्व सांस की बैठक है। हम खाना बनाते है तब चूल्हे की ज्योत उपर की ओर जाती है। प्रज्जवलित चीमनी में गर्म हुई हवा हरदम उपर की ओर जाती है उसी तरह हृदयाकाश में सांस की गति उपर की ओर होती है। हमे आनंद होने की वजह वायु की गति है। ईस हवा के अभिसरण की वजह से रक्तसंचार होता है। पानी की नाली में रुकावट आती है तो नाली का अंत आ जाता है। ईसी तरह हमारे शरीर में यह अवरोध वात-पित्त-कफ से उत्पन्न होता है, जीसे त्रिदोष कहा जाता है।

स्पष्टीकरणः प्राण जो की मनुष्य की शिवशक्ति है। उसे शरीर में ऊर्ध्व दिशा में जाना है। रास्ते की दोनो ओर पानी को बहने के लिए नाली

होती है जीससे पानी सरलता से बह सके उसी तरह हमे प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए और शरीर की नाडीओं को शुद्ध करनी चाहिए। जीससे दीमाग में रहनेवाला सहस्त्रार मार्ग शुद्ध रह सके। यह जब सिद्ध हो तब ईश्वर के परम सुख का स्वयं अनुभव होगा। पत्थर को शिखर (पहाड) की टोच पर ले जाने के लिए ज्यादा प्रयास करना पडता है लेकिन कोई ज्यादा प्रयास बिना उसे नीचे फेंक सकते है उसी तरह मन को आत्मा में केन्द्रीत करना कठिन है।

231. मस्तिष्क ऐसा स्थान है जीसमें कर्पूर, कर्पूर का अर्क, चंदन का लेप-कस्तूरी की खुश्बू का अनुभव होता है। चींटी जहां पर चीनी हो वहां पर ईक्कठ्ठी होती है। ओमकार का अनुभव होता है तब अज्ञानता का अनुभव नही होता। आध्यात्मिक चक्षु से जो दिखता है वही सच्चा ह्रदय है। भौतिक आंख से जो देखा जाता है वह सच्चा ह्रदय नही है। मस्तिष्क अति महत्वपूर्ण है। सांस का मूल सत्य आनंद में है। सच्चा आनंद ह्रदयाकाश मे है। प्राण का घर कुंडलिनी है और वही शिव का घर है। यही हमारा परमशांति धाम है। यही ससत्व गुण का घर है। ईसी घर में रहनेवाले को मान-अपमान की चिंता नही होती। यह योगी का घर है, जीसने ससाब कुछ छोड दिया है। यह ऐसे लोगो का घर है, जीनमें सूक्ष्म विवेक है। यह कुंडलिनी धाम है यह घर चित्त-ह्रदय का धाम है।

स्पष्टीकरणः जब योगाभ्यास से कुंडलिनी को मस्तिष्क तक ले जाते है तब सब तरह की खुश्बू का अनुभव होता है। ईसलिए मनुष्य का मन एक ऐसा स्थान है जहां कस्तूरी-चंदन लेप कर्पूर-कर्पूर अर्क की खूश्बू का अनुभव होता है। चींटीयां चीनी जहां होती है वहां ईक्कठ्ठी होती है। जीन योगीओ को ओमकार के नाद का अनुभव होता है वे ही ज्ञानी है और जब

ओमकार नाद का अनुभव हो तब अज्ञानता रहती नही है। चिदाकाश ऐसा स्थान है जो आध्यात्मिक चक्षु से ही दिखाई देता है, जो स्थूल आंख से दिखता है वह सच्चा चित्त-हृदय नही है। मनुष्य का मस्तिष्क या मन उच्चतम है, अगर मनुष्य में आनंद-कुंडलिनी का स्थान है प्राण का सच्चा मूल सत्य आनंद है। सच्चा आनंद-कुंडलिनी का स्थान है प्राण का सच्चा मूल सत्य आनंद है। सच्चा आनंद चिदाकाश (हृदयाकाश) में है। चिदाकाश शिव का स्थानक है। वह परम शांति का धाम है। जो सत्वगुण का धाम है वह कुंडलिनी का सत्यधाम है। कुंडलिनी जब चिदाकाश में एक हो जाती है तब मुक्ति मिलती है लेकिन मन को आत्मा से दूर ले जाना बहुत ही सरल है। जन्म लेना ज्यादा सरल है लेकिन ईश्वरसाक्षात्कार से ईश्वर का ऋण चूकाना बहुत ही मुश्किल है। मे नदी के मूलस्थान को ढूंढना चाहिए। नदी सागर में मिल जाये बाद में उसे ढूंढने का कोई मतलब नही है। उसी तरह हमारे उद्गम का मूलस्थान ढूढना चाहिए। ईश्वर का साक्षात्कार हमे करना चाहिए। यह ईश्वर जो की सारी सृष्टि के उदगम की वजह है। ईश्वर मनुष्य के लिए मातृ मूल की तरह है। ईश्वर का साक्षात्कार मनुष्य के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है। प्राण की बैठक मनुष्य के शरीर में ऊपर की ओर है। हम कुर्सी उठाते है तब हमारी सांस की गति ऊर्ध्व होती है। प्राण की ऊर्ध्वगति वह प्राण की सच्ची दिशा है। हम खाना बनाते है तब चूल्हें की ज्योत ऊपर की ओर जाती है। धुआं भी ऊपर जाता है उसी तरह हृदयाकाश में सांस की गति उपर की ओर होती है। जब कुंडलिनी मनुष्य के हृदयाकाश-चित्त में पहुंचते है तब मनुष्य की एक ही सांस और वह ऊर्ध्व सांस चलती है। मनुष्य को आनंद-हवा की गति-हिलनेडूलने से मिलता है। ईस वायु का हिलनाडूलना ही रक्तसंचार की वजह बनता है। रक्तसंचार

बंध हो जाता है तब शरीर काम करना बंध कर देता है। जब पानी की नाली में बंध बांधा जाता है तब पानी का मार्ग अटक जाता है। उसी तरह शरीर में वात-पित्त-कफ जो की त्रिदोष है वह रक्तसंचार के लिए शरीर में बाधा उत्पन्न करते है। वे शरीर के बांध है, ईन तीनो दोषो को प्राणायाम के निरंतर अभ्यास से अंकुशित करने चाहिए। जो लोग चिदाकाश में रहते है वे लोग मान-अपमान के लिए चिंता नही करते। ऐसे लोग जगत के द्वैषो से पर होते है। चिदाकाश योगी का धाम है, जहां वे हरदम निवास करते है। चिदाकाश ऐसे लोगो का धाम है, जीनके पास सूक्ष्म विवेक है। चेतना का आकाश वे लोग सिद्ध करते है जो लोग आध्यात्म के उच्चस्तर पर पहुंचते है।

232. जो लोग प्राण के ऊपर ध्यान केन्द्रीत नही करते वे ध्येयविहिन होते है। वे कोई स्थिति के होते नही है। कोई बुद्धि नही होती। कोई सिद्धि का संतोष नही होता। प्राण को अंदर और बाहर की ओर ले जाने के लिए ध्यान केन्द्रीत करें। अंदर की ओर सांस योग्यरुप से लें। सांस जो नाद उत्पन्न करती है उसके उपर ध्यान केन्द्रीत करें। अंतरनाद और प्राण के उपर श्रद्धा रखें। अंदर सांस लो। गहरी और ज्यादा गहरी सांस लिजीये। गहरी और ज्यादा गहरी सांस लेने से आंतरनाद कान को सुनाई देगा। दूसरी कोई चीजो का चिंतन न करें। खाना, पीना, आना, खडा रहना और खाते रहना ये सब आत्मा का उद्धार नही करते। अपना आहार अपने लिए पकाएं। दूसरोने पकाया हुआ खाना खाने की ईच्छा न रखें। हे मन! जो कुछ करो वह परम श्रद्धा से करो।

स्पष्टीकरणः आत्मा के साक्षात्कार के लिए प्राण का ध्यान केन्द्रीत करना सबसे महत्वपूर्ण है। जो लोग प्राण के ऊपर ध्यान केन्द्रीत नही करते

वे लोगो का कोई लक्ष्य नही होता। उनकी कोई स्थिति नही होती। बुद्धि नही होती और कोई साक्षात्कार के लिए संतुष्टि नही होती। उन लोगो के मन अंकुशित नही होने की वजह से आध्यात्मिक बातो में कुछ खास सिद्ध नही कर सकते। ईसलिए मनुष्य को मन पर ध्यान केन्द्रीत करना चाहिए और ईश्वर चिंतन करना चाहिए। हे मनुष्य! प्राण के आवागमन पर ध्यान केन्द्रीत करें! प्राण को योग्यरुप से अंदर लो। सांस लेते वक्त नाद पर ध्यान केन्द्रीत करो। वह नाद जो की सांस की गति में से उत्पन्न होता है उस सांस की गति पर ध्यान केन्द्रीत करो। जो सांसे हम अंदर की ओर लेते है। अंतरनाद और अंतरप्राण पर विश्वास रखें। गहरी और ज्यादा गहरी सांस लो जीससे अंतरनाद जो की सांस की गति से पैदा होता है वह कान को सुनाई देता है। सिर्फ और सिर्फ प्राण का विचार करो ओर कोई बात का नही। खाना, पीना, आना-खडा रहना ये सब आत्मा के उद्धार के लिए उपयोगी नही है। शाश्वत आत्मा का साक्षात्कार किजीये। खाना बनाओ लेकिन अपने लिए। दूसरोने पकाया हुआ खाना खाने की ईच्छा न रखें। अनुभव खुद करो। स्व के प्रयासो से ही आत्मा का सक्षात्कार करें। दूसरे लोग आपका उद्धार करे उसके बारे में न सोचे। खुद ही प्रयास करे और लक्ष्य को प्राप्त करे। हे मन! जो करो वह श्रद्धा से करे। श्रद्धा से महान और कुछ नही है। श्रद्धा महानतम है।

233. सुखे पत्तो बिना के पैड के साथ वायु टकराता है तो कोई आवाझ पैदा नही होती। मृतशरीर में कोई प्राण नही होता, कोई नाद नही होता। बिना प्राण के कोई प्राणी ईस जगत में जीवित नही रह सकता।

स्पष्टीकरणः प्राण मनुष्य का जीवनआधार है। प्राण के बिना कोई नाद उत्पन्न नही होता। कोई शरीर का हिलना नही होता। सुखे पत्तो के

बिना के पैड पर वायु टकराता है तो कोई आवाझ नही उत्पन्न होता उसी तरह मृत-प्राणविहिन शरीर में से कोई प्रतिभाव मिलता नही है। ईस स्थूल जगत में बिना प्राणो के कोई प्राणी जीवित नही रह सकता। प्राण ही प्राणी के लिए सर्वेसर्वा है।

234. जीस तरह रेलवे का ईन्जिन बिना भांप के न चल सके उसी तरह शरीर प्राण के बिना नही चल सकता। नारियल के पैड पर अमरुद नहीं उगते। मनुष्य अनुभव के बिना कुछ भी बोले तो वह निरर्थक है। न्यायाधीश वादी और प्रतिवादी दोनो को सुनने के बाद ही मामले के बारे में सोचते है लेकिन मामले के सत्य को वे जानते नही। हाथ में चीनी हो उतना पर्याप्त नही है उसकी मिठाश को प्राप्त करने के लिए उसे जिह्वा के ऊपर रखकर उसका स्वाद लेना चाहिए। पृथ्वी के गर्भ में खूब सारा पानी है लेकिन पानी प्राप्त करने के लिए कूआं खोदना पडता है। मूल चीज वह आंतरिक अभ्यास है और प्राण का परब्रह्म के साथ दीमाग में एक होना वह है। यही ईश्वर का साक्षात्कार है और वही योगसिद्धि है। यही परम शांति है।

स्पष्टीकरणः शरीर को चलाने के लिए प्राण अनिवार्य है। जीस तरह स्टीम ईन्जिन चलाने के लिए भांप अनिवार्य है। भांप ईन्जिन के लिए है वह प्राण शरीर के लिए है। नारियल के पैड पर अमरुद नही उगते उसी तरह सांसारिक जीवन में अटकता मानवी दूसरो को ईश्वर का साक्षात्कार नही करा सकता। ईश्वर का साक्षात्कार करनेवाले गुरु ही मनुष्य को ईश्वरदर्शन कराने के लिए अनिवार्य है। स्वानुभव बिना ईश्वर की चर्चा कोई उपयोग की नही है। पुस्तक के ज्ञान से ईश्वर का सत्य हम समझ नही सकते। जीस तरह न्यायाधीश वादी-प्रतिवादी दोनो को सुनने के बाद ही

मामले के बारे मे अपना अभिप्राय दे सकते है उसी तरह ईश्वर और ईश्वर के सुख का अनुभव करने के बाद ही उस बारे में अभिप्राय दे सकते है। चीनी की मिठास को समझने के लिए चीनी को हाथ में रखने से समझ नही आती उसे जिह्वा पर रखकर उसका स्वाद लेना पडता है। पृथ्वी के गर्भ में खूब सारा पानी होता है लेकिन उसे बाहर न निकालने के लिए हमे खुद अभ्यास और अनुभूति करनी पडती है। हमे स्वयं अंदरुनी तौर पर अभ्यास करते रहना चाहिए और प्राण को ब्रह्मरंध्र मे ले जाना चाहिए और प्राण परब्रह्म के साथ एक हो जाना चाहिए। ईसे ही ईश्वर का साक्षात्कार कहते है। ईसे ही योगसिद्धि कहते है। ईसे ही परम शांति कहते है।

235. योग के प्रारंभिक अभ्यासु के लिए कोई निश्चित आहार नही बाताया गया है। अभ्यासु के लिए मन की शांति ही आहार है। सभी कला मे श्रेष्ठ कला वह ब्रह्मविद्या है। वह कला जीसके द्वारा ईश्वर की अनुभूति होती है। यह कला धन से नही खरीदी जाती। यह कला मान या अपमान से नही खरीदी जाती तो बाहरी कीर्ति से भी प्राप्त नही कर सकते। वह सिर्फ अचल भक्ति से ही प्राप्त की जा सकती है। भक्ति के बिना मुक्ति नही है। मुक्ति सिर्फ सूक्ष्म भक्ति के द्वारा ही मिल सकती है। ब्रह्मानंद सिर्फ बातें नही है लेकिन ठोस अनुभव है। ईसे ही सत-चित-आनंद कहते है। निरंतर और ज्यादा से ज्यादा अनुभव से ही वह सिद्ध हो सकता है। ब्रह्मानंद का जीसने साक्षात्कार किया है उसके लिए सर्व है मतलब की ईश्वर स्वयं है।

स्पष्टीकरणः राजयोग में नवदीक्षित साधक के लिए कोई निश्चित

आहार नही बताया गया है. जरुरत सिर्फ अभ्यासु के लिए शांति प्राप्त करने की है। सभी विद्याओं में श्रेष्ठ ब्रह्मविद्या है। वह कला परमब्रह्म को

सिद्ध करने की है। यह कला धन से नही खरीदी जा सकती। यह सांसारिक जीवन के मान-अपमान से नही खरीदा जा सकता। वह बाह्य कीर्ति से नही खरीदा जा सकता। वह गुरु से ही अचल भक्ति से सिद्ध हो सकता है। भक्ति के बिना बंधनमुक्ति नही है। मुक्ति सिर्फ सूक्ष्म भक्ति से सिद्ध हो सकती है। ब्रह्मानंद सिर्फ बातें नही है लेकिन ठोस अनुभव है। ब्रह्मानंद वह सत-चित्त-आनंद है। ब्रह्मानंद प्राणायाम के निरंतर अभ्यास से सिद्ध होता है। जब ईश्वर का साक्षात्कार सिद्ध हो तब ब्रह्मानंद सिद्ध होता है। सारे ब्रह्मांड में उसके बाद ईश्वर के परमसुख का दर्शन होगा।

236. हे मन! द्वैत का विचार छोड दे! सूक्ष्म विवेक पाने के लिए द्वैत का विचार छोडने के बाद सिर्फ सोचो की सारा ब्रह्मांड शिवमय है। शिव मतलब दागरहित। कोई प्रच्छन्न बात नहीं। सब आप ही में है। जो श्रद्धा है वह निरंतर है। हे मन! सांस का नियंत्रण कर। अंदरुनी जीवन जीयो। सत्य की शोध-सूक्ष्म विवेक से करो। सूक्ष्म विवेक के साथ जो जुडा हुआ है वह शाश्वत है। हरएक प्राणी का मूल तत्व शाश्वत आनंद है। शाश्वत आनंद प्राप्त करो। शाश्वत आनंद मतलब शाश्वत मुक्ति। मन के अंदर होते आसन राजा की गद्दी है। शाशअवत बैठक मतलब शाश्वत आनंद, जब सत चित मिल जाये तब परमानंद प्राप्त होता है। ईसे चैतन्य आनंद कहा जाता है।

स्पष्टीकरणः हे मन! द्वैत का विचार छोडो। सूक्ष्म विवेक प्राप्त करो। द्वैत का विचार छोडकर सोचो की सारा विश्व शिवमय है। जो पूर्णरुप दागरहित है। हे मन! सब कुछ खुद में ही अनुभव करो। सारा ब्रह्मांड आप में ही है वह अनुभव करो। आप उस शक्ति को विकसित करो जो की ब्रह्मांड को नियंत्रित करता है। मनुष्य में श्रद्धा अचल है। श्रद्धा स्थिरता से

बढें और आत्मा का साक्षात्कार हो। हे मन! प्राण को नियंत्रित करो, जीससे मन ईच्छारहित हो। अंदरुनी जीवन सूक्ष्म विवेक से जीयो। सत्य की शोध सूक्ष्म से करो। सूक्ष्म विवेक के साथ जूडी बातें ईश्वर की शक्ति शाश्वत होती है। जगत में सभी प्राणी का मूल तत्व शाश्वत आनंद है। शाश्वत आनंद प्राप्त करें! शाश्वत आनंद से शाश्वत मुकित मिलती है। मन के अंदर रहे आसन राजगद्दीयां है। मनुष्य के मस्तिष्क में मन के लिए विविध तरह की बैठक होती है, जीसकी अनुभूति प्राण को ह्रदयाकाश की ओर-दीमाग में ले जाये तब होती है। मन की बैठक राजा की गद्दी जैसी होती है। शाश्वत आनंद तभी मिलता है जब मन उसका स्थान सहस्त्रार में लेता है। सहास्त्रार मतलब सहस्त्र पत्तीओवाला कमल। जब सत अर्थात अस्तित्व औरचित (ज्ञान) दोनो ह्रदयाकाश मे मिलते है तब परमानंद सिद्ध होता है। परमानंद और चैतन्य आनंद सिद्ध होता है। चैतन्य आनंद शाश्वत चेतना का परम सुख है।

237. सृष्टि के सभी सृजन मानसिक है। शरीर सिर्फ ध्येय को प्राप्त करने का साधन है। शक्ति आत्मा की है। मनुष्य के मस्तिष्क में उच्चतम टोच है। यह आत्मा की बैठक है। यह चेतना का आकाश है। यह एक ही सब से बडा आधार है। अग्न शरीर का छठ्ठा कमल आधार है। कुंडलिनी की बैठक ह्रदयाकाश में है। आत्मा की यात्रा का विचार ट्रेन की यात्रा जैसा है। ट्रेन दो तरह की होती है। एक मेल और दूसरी लोकल। हठयोगीओ मेल ट्रेन जैसे है और राजयोगीओ लोकल ट्रेन जैसे है। शांति मिले वही सुख है। फर्क सिर्फ समय का होता है। प्रवेग एकसमान होता है फिर भी समय का फर्क रहता है। यह फर्क भी मन की भ्रमणा है।

स्पष्टीकरणः सृजन मन का लगाव है लेकिन मन का नाश कर दीया जाये तब सृष्टि का अस्तित्व नही रहता। उस वक्त सब एक और अद्विवितिय होता है। शरीर सिर्फ लक्ष्य प्राप्त करने का साधन है, साध्य नही। मनुष्य का लक्ष्य ईश्वर का साक्षात्कार है। शक्ति आत्मा की होती है। जगत के सबसे ऊंचा शिखर बाहर नही लेकिन मनुष्य के दीमाग में होता है। ब्रह्मरंध्र जो की दीमाग में है वह सबसे ऊंचा शिखर है। ब्रह्मरंध्र आत्मा की बैठक है। यह चेतना का आकाश है। मनुष्य का सबसे बडा आधार चिदाकाश का है। कुंडलिनी की बैठक चिदाकाश में है। अग्न वह छठ्ठा कमल है, जो कुंडलिनी का आधार है। अग्न से शुरु करके कुंडलिनी सहस्त्रार की ओर गति करती है। सहस्त्रार हजारो पत्तीओवाला दीमाग में रहनेवाला कमल है। ट्रेन में यात्रा करना वह आत्मा का विचार है। ट्रेन दो तरह की होती है – एक मेल और दूसरी लोकल ट्रेन। मेल ट्रेन मतलब हठयोगी और लोकल ट्रेन मतलब राजयोगी। हठयोगी में जुनुन होता है और गुस्सा होने की छोटी सी भी वजह मिले तो वह गुस्सा हो जाता है। राजयोगी लोकल ट्रेन की तरह धीमा लेकिन शांत होता है। सुख वह ओर कुछ नही, मन की शांति मिलना वह है। लोकल ट्रेन और मेल ट्रेन का फर्क सिर्फ समय का ही होता है। दोनो में एकसमान शक्ति हो ऐसा ही हठयोगी और राजयोगी का है। दोनो में शक्ति एकसमान होती है। फर्क सिर्फ उस शक्ति का विकास है। राजयोगी हठयोगी से भी ज्यादा अच्छा होता है। लोकल ट्रेन और मेल ट्रेन दोनो का प्रवेग समान है लेकिन समय का ही फर्क होता है उसी तरह राजयोगी और हठयोगी दोनो के बीच समय का फर्क होता है। साधना के प्रारंभ में सब हठयोगी होते है लेकिन पूर्णत्व के स्तर पर वे राजयोगी होते है। साधना का समय पूरा हो और नवदीक्षित योगी पर्याप्त अनुभव प्राप्त

कर ले तब पूर्णत्व के उच्चतम स्तर पर वह राजयोगी होता है। फर्क सिर्फ समय का होता है। ईस समय का फर्क सिर्फ मन की भ्रमणा है। जब मनुष्य माया को नष्ट करते है तब सब कुछ उसे एकसमान लगता है। फर्क सिर्फ माया की वजह से पैदा होता है।

238. मनुष्य का जन्म माता-पिता से होता है। वह प्रथम बच्चा होता है बाद में वह पुरुषत्व प्राप्त करता है और बाद में बच्चो के माता-पिता बनते है। फर्क सिर्फ समय का होता है। बच्चे का स्वभाव माता-पिता उनके मिलन के वक्त जो विचार करते है उस हिसाब से होता है। माता-पिता मिलन के वक्त भक्ति, धमाल, गुस्सा, प्रवृति, ईच्छाओ का विचार करें तो तब बच्चे में भी वही विचार प्रवेश करते है। माता के गर्भ में वायु के प्रवेश से ही सृष्टि का सृजन होता है। ईसलिए माता-पिता मिलन के वक्त सांसारिक जीवन के बारे मे सोचे तो बच्चे में भी वही विचार आरोपित होते है। अगर आध्यात्मिक विचार हो तो बच्चे को प्रकाश तुरंत मिलता है। प्राथमिक जरुरत बच्चे के जन्म के बाद ईच्छारहित दशा में रहने की है। जन्म-मृत्यु के बीज का नाश करने का बाद में आता है। जब मनुष्य निरंतर दुःख का अनुभव करता है तब सूक्ष्म विवेक से उसको अंत में प्रकाश का दर्शन करना चाहिए। अपानवायु मतलब सृजन का नाश। अपानवायु और प्राणवायु दोनो को आत्मा में एक कर देने चाहिए। जब ये दोनो मिलकर एक हो जाये तब सभी स्थितिओ का नाश होता है। प्राण का नाश हो उससे पहले मनुष्य को मुक्ति प्राप्त करने के लिए प्रयास करना चाहिए। मुक्ति मिले ईसके लिए वह एक अविभाज्य बन हो जाता है और द्वैत का नाश होता है।

स्पष्टीकरणः मनुष्य का जन्म उसके माता-पिता से होता है। वह प्रथम बच्चा होता है बाद में पुरुषत्व प्राप्त करता है और बच्चों के माता-पिता बनता है। मनुष्य में फर्क सिर्फ समय की वजह से होता है। बच्चे का स्वभाव उसके माता-पिता उनके मिलन के वक्त जो सोचते है उसके अनुसार होते है। अगर माता-पिता भक्ति, गुस्सा, प्रवृति, ईच्छाएं ऐसे विचार करे तो बच्चे में भी वही गुण आते है। अगर उनके मिलन के वक्त माता-पिता सांसारिक जीवन के विचार करे तो बच्चे के संस्कार मे वही विचार मिलते है लेकिन अगर माता-पिता आध्यात्मिक करे तो उसमें भी वही विचार प्रवेश करते है। जन्म-मृत्यु के बीज का नाश ईच्छारहित दशा की वजह से होता है। जब मनुष्य को निरंतर दुःख का सामना करना पडे तो तब सूक्ष्म विवेक से खुद को प्रकाशित करना चाहिए। अपानवायु मतलब सृजन का नाश। अपानवायु मनुष्य की अंदर की गंदगी को बाहर निकालता है। प्राण और अपानवायु दोनो को आत्मा मे एकाकार करना चाहिए। जब आत्मा में दोनो एकाकार हो जाये तब सभी स्थितिओ का नाश हो जाता है। ऐसा मनुष्य सर्वोत्तम होता है। मनुष्य को मृत्यु से पहले मुक्ति प्राप्त करनी है। मुक्ति एक, अविभाज्य, द्वैतभाव से पर है जो ईसी जीवन में ही सिद्ध करनी चाहिए।

239. उपनयन जीवन का लक्ष्य है। 'उप' अर्थात नजदीक रहना। जीवात्मा को परमात्मा में एकाकार हो जाना। उपनयन अंदरुनी होना चाहिए। उपनयन सूक्ष्म होना चाहिए। 'उपधि' अर्थात तीसरी आंख। मूल लक्ष्य ईश्वर के नजदीक जाने का है। उपनयन शरीर का विचार नही है। वह आत्मा का विचार करता है। ईस जगत में जीसने उपधि की है वह ब्राह्मण

है। 'उपधि' मतलब सुषुम्णा नाडी। ये वह ब्रह्मनाडी है, जहां देवी-देवता का वास होता है।

स्पष्टीकरणः उपनयन जीवन क लक्ष्य है। 'उप' अर्थात नजदीक रहना। उपनयन अर्थात ईश्वर का साक्षात्कार करके उनके नजदीक जाना। उपनयन तीसरी आंख है। जीसके द्वारा ईश्वर को प्रत्यक्ष देख सकते है। उपनयन अंदरुनी बात है, वह सूक्ष्म बात है स्थूल नही है। लक्ष्य ईश्वर के साक्षात्कार का है और शाश्वत तौर पर उसके नजदीक रहना है। उपनयन शरीर का स्थूल विचार नही है। उपनयन आत्मा का विचार है। उपधि वह तृतीय आंख है, ईस जगत में ब्राह्मण वही है, जीसने 'तीसरी आंख' की शक्ति का विकास किया है। ब्राह्मण वही है जीसने ब्रह्म का साक्षात्कार किया है। उपधि अर्थात शरीर में सुषुम्ना नाडी। सुषुम्ना ब्रह्मनाडी है, जीसमें देवी-देवताओ का वास है। सुषुम्ना नाडी शरीर की सबसे महत्वपूर्ण नाडी है। सुषुम्ना नाडी से ही कुंडलिनी दीमाग में रहनेवाले सहस्त्रदल कमल की ओर आगे बढती है। सहस्त्रार मतलब मूलाधार (शरीर का मूल कमल) तक की कुंडलिनी शक्ति की यात्रा।

प्रथम विभाग समाप्त

श्री कृष्णार्पणम अस्तु

ओम् ओम् ओम् ओम् ओम्

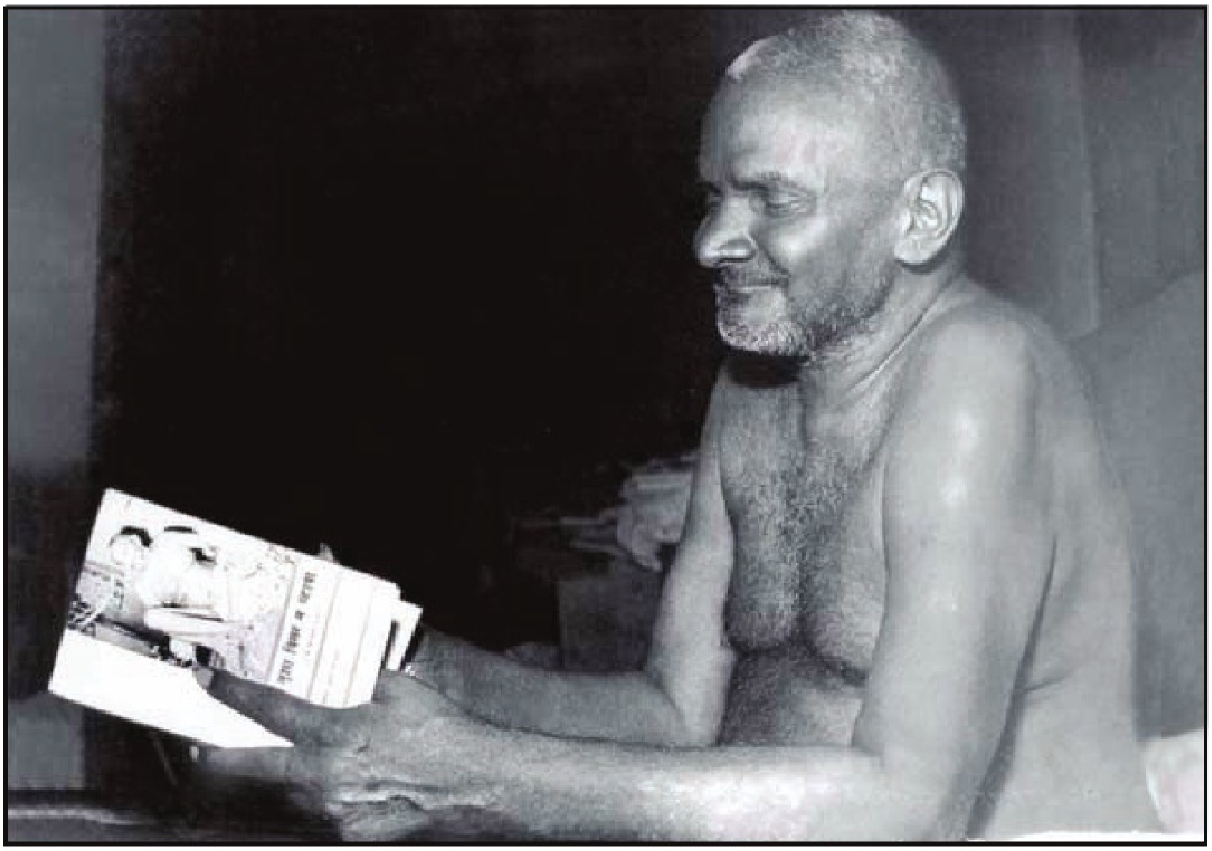

ॐ नमो भगवते नित्यानंदाय

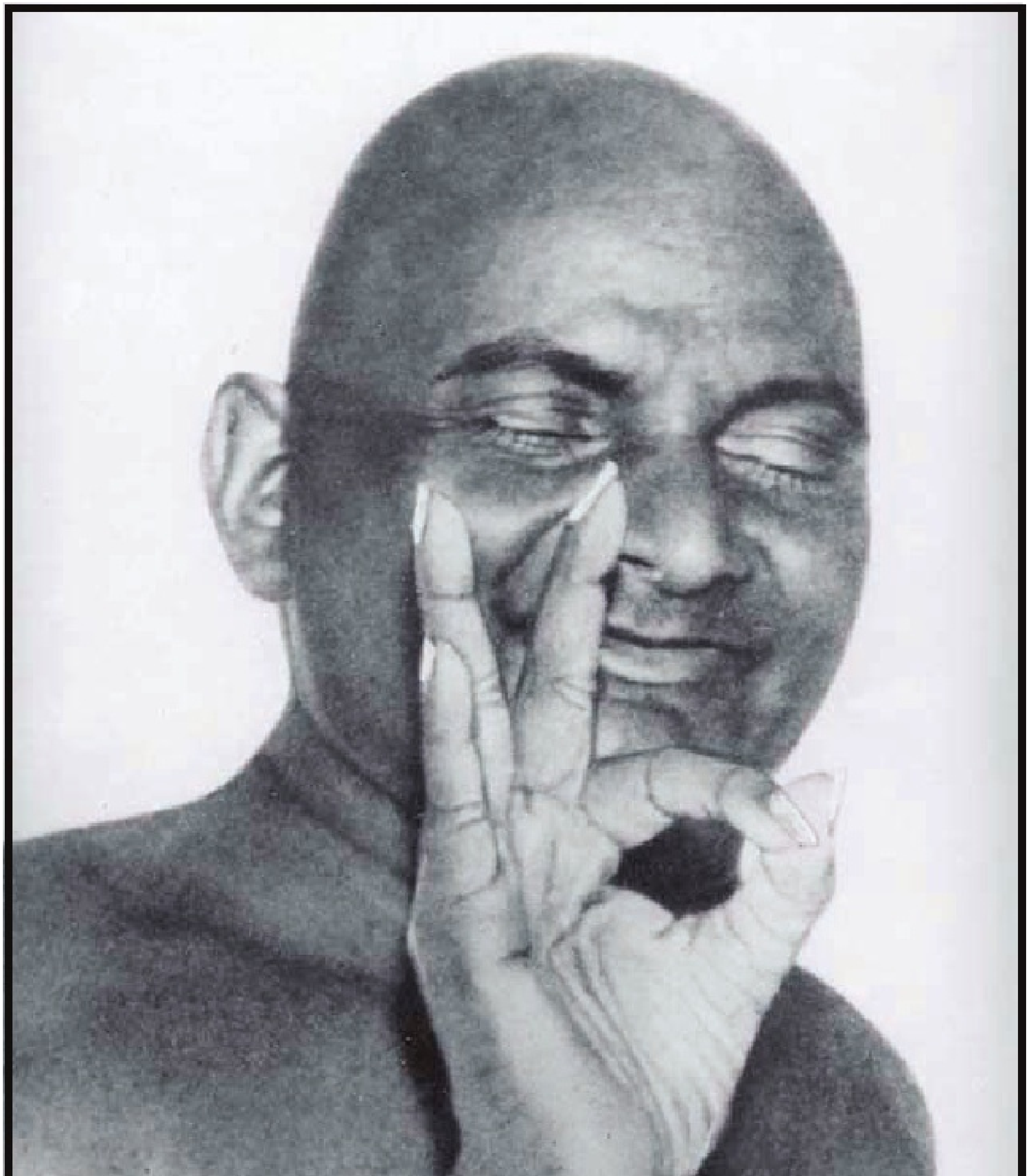

ॐ नमो भगवते नित्यानंदाय

ॐ

नमो भगवते नित्यानंदाय

दूसरा खंड (चिदाकाश गीता)

240. शब्द का जन्म आकाश में होता है। आकाश में जो उत्पन्न होता है वह जीवन ऊर्जा है। जीसे आकाश कहा जाता है वह मस्तिष्क में है। आकाश मतलब ह्रदयाकाश। जीवन ऊर्जा सिर्फ एक है। नदी और सागर में जीसतरह फर्क है उसी तरह जीवात्मा और परमात्मा के बीच फर्क है। वह सिर्फ एक कक्षा का है और कोई प्रकार का नही है। व्यक्ति को 'मैं' और 'मेरा' का त्याग करना चाहिए। यह पुनःजन्म की वजह है। वह व्यक्ति शुद्ध बुद्धि का है, जो 'मैं' और 'मेरे' बारे में सोचा करता है। ऐसे विचारो की वजह से वह नीच योनि में जन्म लेता है। मनुष्य में रहनेवाली शक्ति तेज की तरह दिखती है उसी तरह वह गेसलाईट के प्रकाश में शक्ति होती है, जीन लोगोने दिन और रात का भेद मिटा दिया हो उनके लिए सूर्य और गेसलाईट के बिच कोई फर्क नही होता। दोनो के बिच कोई फर्क नही है, व्यक्ति की श्रद्धा उच्चतम बात है। श्रद्धा से उपर कोई ईश्वर नही है। ईस विश्व में श्रद्धा से ऊपर कोई नही है। मनुष्य श्रद्धाविहिन हो तो दूसरो की चाल से मूर्ख नही बनता। मनुष्य को जीस विषय में श्रद्धा हो उस वस्तु में आनंद होता है। अंदरुनी श्रद्धा अपनी (सांस) प्राण पर केन्द्रीत करनी चाहिए। जीन लोगो में श्रद्धा नही होती उन लोगो को दूसरी चीजो के बारे में कोई विचार नही होता। श्रद्धाविहिन लोगो को साधु और संन्यासीओ के लिए कोई सम्मान की संवेदना नही होती। वे लोग ऐसे ही गलत तरीके से सोचते है की वे हजारो साधुओ से भी अच्छे है।

स्पष्टीकरणः नाद अंतरिक्ष में पैदा होता है। जीवन ऊर्जा भी आकाश में पैदा होती ह. जीस तरह बृहदाकाश हमारे शरीर से बाहर आता है उसी तरह हमारे शरीर में भी आकाश होता है। उसका स्थान मस्तिष्क में है, उसका स्थान ह्रदय में है, जीवन ऊर्जा एक और सिर्फ एक ही है लेकिन पशु सृष्टि में विशाल फर्क होता है। यह फर्क नदी और सागर में रहता है वैसा ही होता है। वह गुणवत्ता में नही है लेकिन थोक में है। सागर और नदी में दोनो के बीच खाड़ी की वजह से फर्क पैदा होता है। जीवात्मा और परमात्मा माया के पतले आवरण से अलग पडते है। व्यक्ति को 'मैं' और माया के बारे में विचार नहीं करना चाहिए। व्यक्ति को अहं का पूर्णरुप से त्याग करना चाहिए। अह् की वजह से नये जन्म की वजह उत्पन्न होती है। जीस व्यक्ति में 'मैं' और 'यह मेरा' जैसी भावना हो वह बुद्धि की कमी दर्शाती है। अहं भाव निम्न योनि की वजह बनता है। सूर्यप्रकाश और गेसलाईट दोनो में एक शक्ति है, जो दोनो में दिखती है। जो लोग सूर्य और गेसलाईट-दिन और रात दोनो के बीच का फर्क भूल गये है उनके लिए दोनो एकसमान है। निःशंकरुप से एकदूसरे से बडा नही है। व्यक्ति की श्रद्धा उसे ईच्छित लक्ष्य की ओर ले जाता है। श्रद्धाहीन (नास्तिक) व्यक्ति को जगत के कपटी लोग धोखा नहीं दे सकते। मनुष्य को जीसमें श्रद्धा होगी उसीमें आनंद आता है। श्रद्धा मनुष्य की प्रगति या अधोगति के लिए जिम्मेवार होती है। यह श्रद्धा क्या है? श्रद्धा कैसे पनपती है? श्रद्धा हमसे बाहर की ओर नहीं है। श्रद्धा हमारे अंदर है। श्रद्धा बाहरी चीज नहीं है लेकिन अंदरुनी है और उसका विकास प्राण पर ध्यान केन्द्रीत करने से हो सकता है। श्रद्धाहीन व्यक्तिओ को साधु और संन्यासीओ के लिए सम्मान नहीं होता। वे लोग गलत तरीके से सोचते है। हजारो साधुओ से वे ज्यादा

अच्छे है। वे लोग खुद को ज्ञानी समझते है और अहं उनमें उच्च स्तर पर रहता है।

241. अंध व्यक्ति के लिए दिन और रात के बीच कोई फर्क नही होता। उन्हें बाह्य प्रकाश का कोई महत्व नही होता। उसमें ज्ञान का प्रकाश बहुत ज्यादा होता है। अंध व्यक्ति के लिए शारीरिक स्वरुप का कोई महत्व नही होता। अंध व्यक्ति की भौतिक आंख देखती नही है। ईसलिए उनके दिव्य चक्षु तेजोमय होते है। अंध व्यक्ति पागल का विवरण उसके स्पर्श से अनुभव करके नही कर सकता।

स्पष्टीकरणः अंध व्यक्ति के लिए दिन और रात के बीच कोई फर्क नही होता उसी तरह अज्ञानी व्यक्ति मतलब शाश्वत सत्य के ज्ञान बिना का मनुष्य - ईश्वर के ज्ञान बिना का मनुष्य को ज्ञानी और सांसारिक जीवन में लीन व्यक्ति - के बीच कोई फर्क नही है। ऐसे मनुष्य के लिए दोनो एकसमान है। नाशवंत और चिरंजीवी दोनो के बीच कोई अंतर नही है। सभी चीजो को अपने द्रष्टिकोण से देखने की आदत हो जाती है और अनत ईश्वर को सम्मान-मर्यादास्परुप व्यक्ति समझते है। वह ईश्वर और विश्व के बीच में कोई फर्क महसूस नहीं करता। अंध व्यक्ति के लिए बाहरी प्रकाश कोई मायने नहीं रखता। अंध होने की वजह से वह बाहरी प्रकाश का अनुभव नही कर सकता। अज्ञानी व्यक्ति खुद को स्वनिर्भर व्यक्ति समझता है और बाहरी मदद की जरुरत नही है ऐसा मानता है। अज्ञान क वजह से वह ऐसा मानने के लिए प्रेरित होता है की सांसारिक जीवन से छोटी-मोटी चीजो के ज्ञान के आधार पर खुद ईश्वर को पूर्णरुप से समजता है ऐसा दिखावा करता है। ईसलिए वह दूसरो की मदद नही लेता है। अंध व्यक्ति को भौतिक आंख नही होती लेकिन उसमें ज्ञान का प्रकाश अति

तेज होता है लेकिन देखने की द्रष्टि चली जाती है लेकिन ज्ञानी को आम आदमी जैसी ही ईन्द्रीयां होती है फिर भी वे पूर्णरुप से अंकुशित होती है। वह आत्मा के अंकुश में होती है। ज्ञानी की सभी वृतियां नष्ट हो जाती है लेकिन ज्ञान का तेज ज्यादा होता है। ज्ञानी का ध्यान हमेशां एक शाश्वत सत्य की ओर होता है और वह अन्य के प्रति अंध होता है। अंध व्यक्ति की भौतिक आंख देख नही सकती फिर भी उनकी दिव्य आंखे अति तेजोमय होती है। अंध व्यक्ति गाडी का विवरण उनके स्पर्श से नही कर सकती उसी तरह अज्ञानी व्यक्ति जिन्हें ईश्वर के परम सुख का अनुभव नही है, वे दैवी सुख क्या है वह जानते नही है और वे ईश्वर के सुख का किताबें पढकर अनुभव प्राप्त कर सकते है। यह परम सुख का अनुभव पुर्णरुप से आवश्यक है और वह उनके लिए है जीनको दैवी सुख क्या है वह समजना है।

242. क्या नाद में से ब्रहम का सृजन हुआ है या ब्रहम में से नाद उतपन्न हुआ है? कारण में से परिणाम का उदभव हुआ है या परिणाम में से कारण पैदा हुआ है। ब्रहम (जगत) नाद में से पैदा हुआ है। नाद में से स्वरूप का जन्म हुआ है और जगत जीसका स्वरुप है उसका जन्म नाद में से हुआ है। कारण में से परिणाम है। परिणाम आत्मा मतलब 'स्व' में से है। ईसलिए कारण और परिणाम दोनो एक 'स्व' के गुलाम है। ये दोनो स्व (आत्मा) में से पैदा होते है। यह स्व (आत्मा) कारण एवं परिणाम दोनो को समा लेता है और एक (अविभाज्य) बनते है। 'स्व' जो की माया का सृजन करता है वह 'स्व' से ही माया का नाश होता है। असत्य, असत्य ही है। अगर आप असत्य को मानेंगे तो आपको असत्य बोलना पडेगा। अगर आप सत्य को मानेंगे तो आपको सत्य कहना पडेगा। जो लोग जुठी बाते करते

है उनका अपना कोई सत्य नही होता। उनसे असत्य अलग नही होता। वह उनके साथ एक हो जाता है। वे लोग जुठ्ठी बातो को अपने से अलग नहीं मानते। अगर जुठ्ठ बूराई है या दोष है ऐसा वो लोग समजे तो वे जुठ्ठ की ओर नही जायेंगे। ऐसी स्थिति में उनको अनुभव होगा की एक स्वतंत्र बात की जीसे सत्य कहा जाता है वह है। ऐसा हो तो वे सतकर्मो की ओर मुडेंगे।

स्पष्टीकरणः नाद में से ब्रह्म (विश्व) पैदा हुआ है या ब्रह्म (विश्व) नाद में से पैदा हुआ है? कारण परिणाम में से पैदा होता है की परिणाम कारण में से। विश्व नाद में से पैदा हुआ है और नाद स्वरुप में से पैदा होता है और जगत का वही स्वरुप है। कारण में से परिणाम का उदभव होता है। बिना वजह कोई परिणाम नही होता। ईश्वर सृष्टि के सृजन की वजह है और सृष्टि वह परिणाम है। यह कारण कहां है। यह कारण 'स्व' मतलब आत्मा में है और परिणाम 'स्व' में से अर्थात आत्मा में है। ऐसे, कारण और परिणाम दोनो जुडवें है। जो की आत्मा में से पैदा होते है और आत्मा में एकाकार हो जाते है। जहां से पैदा होते है वहां वे एकाकार हो जाते है। ईसलिए व्यक्ति को कारण और परिणाम दोनो को अंकुशित करने चाहिए। माया की जिसका जन्म आत्मा में से हआ है उसे आत्मा में समा लिया जाता है। माया का नाश करने के लिए दूसरा कोई रास्ता नही। माया को छोडने के लिए दूसरा कोई स्थान नहीं है। ईश्वर अंदर और बाहर की ओर रहते है। असत्य हरदम असत्य ही रहता है। आप असत्य में मानते हो तो आपको असत्य बोलना पडेगा और सत्य में मानते हो तो सत्य कहना पडेगा। जो लोग जुठ्ठ बोलते है उनमें सत्य होता नही है। उन लोगो के लिए जुठ्ठ अलग नही होता। वे जो देखे, बोले और करते है वह जुठ्ठ होता है।

उसी तरह अज्ञानी मानवी के लिए जगत में कोई ज्ञानी नही है। सभी उसके जैसे जीवन के सही लक्ष्य से अज्ञान, जुठ्ठेपन की वजह क्या होती है? वे जूठ्ठ को ही सत्य समजते है, क्योंकी उनके मन को जुठ्ठे की आदत हो गई है। वे जूठ्ठ के साथ एकरुप हो गये है। रंगीन ऐनक पहननेवाले को जगत रंगीन दिखता है, वह जैसा है वैसा नही दिखता है। मनुष्य अगर अपनी कमजोरी को समजे तो उसमे वापिस गलती नही करता। ऐसा मनुष्य सत्य क्या है वह अनुभव करने के बाद समज सकता है। सत्य का अस्तित्व (जूठ्ठा) असत्य से अलग होता है। ईसी पल से उसके दिव्य चक्षु खुल जायेंगे। सूक्ष्म विवेकवाला मनुष्य खुद के लिए क्या अच्छा है या क्या बूरा है उसका अनुभव प्राप्त कर सकता है। ऐसा मनुष्य राजमार्ग क्या है वह समजेगा और सही दिशा में आगे बढता हुआ अंततोगत्वा ईच्छित लक्ष्य को प्राप्त करेगा।

243. जीस तरह नदीयां सागर में प्रवेश करती है उसी तरह अच्छी और बूरी दोनो चीजें आत्मा में प्रवेश करती है। दोनो चीजें आत्मा को समर्पित होती है। अच्छा और बूरा दोनो आत्मा में से पैदा होते है। वे जहां से आये है वहीं प्रवेश करते है। मन जगत में शुभ-अशुभ कर्म का कारण है। मन आत्मा की शक्ति है। आत्मा की शक्ति कोई ज्यादा या कम नही कर सकता। जो होनेवाला है वह होकर ही रहता है। शाश्वत कायदे के अनुसार वह होगा।

स्पष्टीकरणः जीस तरह सभी नदीयां समुद्र में प्रवेश करती है उसी तरह अच्छा-बूरा सब कुछ आत्मा में प्रवेश करता है। जीस तरह सभी नदीयों का लक्ष्य सागर होता है। सागर जो की अपरिवर्तनीय और शाश्वत है उसमें मिल जाने का लक्ष्य है उसी तरह अच्छा-बूरा दोनो ही आत्मा में

शामिल हो जाते है। अच्छे-बूरे का जन्मस्थान आत्मा है और ईसलिए ही उन्हें आत्मा के सामने त्याग देना चाहिए। शुभ और अशुभ उसी में विलीन हो जाते है, जीसमें से वे आये है। मन अच्छे-बूरे की वजह है। शुभ और अशुभ एकदूसरे के सापेक्ष में रहते है। आदमखोर शेर मनुष्य के ऊपर हमला करता है तो उसके लिए तो वह एक खेल है लेकिन एक मनुष्य दूसरे को मारता है तो उसे खून कहते है। आदमखोर के लिए जो खेल है वह मनुष्य के लिए खून है। मन का अर्थघटन एक चीज का अच्छा अर्थघटन करने के लिए और दूसरी चीज में बूरे अर्थघटन के लिए जिम्मेवार है। मन ईश्वर की शक्ति है। उसमें कोई बढोतरी या कमी नही ला सकता। जो होना है वह होकर ही रहता है। कुछ निश्चित तौर पर ईश्वर के अगम रास्ते या ब्रह्मांड के अगम कायदे के अनुसार होकर ही रहता है। मनुष्य वह सृष्टि के उत्कृष्ट कायदे में कोई भूमिका नही निभा सकता।

244. बीज पैड में से पैदा नहीं होता। बीज की शरूआत है। बीज पैड पर से गिरता है और वह बीज छोटा पौधा और बाद में पैड बनता है। उसी तरह सृष्टि का है। बीज एक शुरुआत है उसका अंत नही है। आप जहां भी देखोगे वहां बीज ही दिखेंगे।

स्पष्टीकरणः बीज वृक्ष में से पैदा नहीं होता। बीज जैसे एक शुरुआत है उसी तरह ईश्वर ब्रह्मांड में से उत्पन्न नहीं होते। ब्रह्मांड का प्रारंभ ईश्वर से ही हुआ था। बीज पैड पर से गिरता है और वह बीज छोटा पौधा और बाद में बडा पैड बनता है उसी तरह मनुष्य का आत्मा ईश्वर का सूक्ष्मातिसूक्ष्म भाग है। आत्मा जो की शरीर के देहमांस में बंधा हुआ है। उसे अपनी सभी कमजोरीओ के साथ क्रमशः प्रगति करनी है और वह तब

तक की वह सृजनकर्ता में मिल न जाये तब तक! यह सृष्टि की प्रक्रिया है। बीज की शरुआत है, लेकिन अंत नहीं है। आप जहां तक देखोगे वहां आपको वही बीज दिखेगा जैसे बीज पैड की और भविष्य के बीज का प्रारंभ है वैसे ही मूलभूत प्रकृति सृष्टि के प्रारंभ की वजह है।

245. जो लोग शंकारहित है उन्हें एहसास होता है की यह शंकारहित दशा मन की एकाग्रता का रास्ता है। आशंकित मनुष्य की बुद्धि मर्यादित होती है। जहां वह देखे वहां शंका के बिना कुछ दिखता नही है। व्यक्ति अपने स्वभाव के लिए जिम्मेवार हौता है। जो गुण व्यक्ति में न हो वह ढूंढने के लिए प्रयास करना अयोग्य है। कंपते पानी में व्यक्ति अपना प्रतिबिंब देख नही सकता। शांत जल में व्यक्ति अपना प्रतिबिंब ठीक से देख सकता है। चंचल मन का मानवी अपना सच्चा स्वभाव देख नही सकता। स्थिर मनवाला मनुष्य जहां भी देखता है वहां सिर्फ एक और अविभाज्य ऐसे ईश्वर के दर्शन करते है। वह उनके दर्शन सभी में करता है। अगर आंखो पर लाल ऐनक लगाओ तो ससब कुछ लाल ही दिखेगा। लाल ऐनक पहनकर हरा रंग नही दिखाई देता, हर एक व्यक्ति अपने विचार अनुसार देखता है।

स्पष्टीकरणः जो लोग शंकारहित मानस रखते है वे मन की एकाग्रता के लिए रास्ता उनकी शंकारहित मानस दशा है ऐसा महसूस करते है। आशंकित व्यक्ति की बुद्धि सीमित होती है। उसका मन शंका से घिरा होने की वजह से उनकी द्रष्टि में ईश्वर और उनकी सृष्टि का सत्य आंखो के सामने नहीं आता। वह जो भी देखता है उसमें शंका ही होती है। उनका स्वभाव उसे घेर लेता है। मनुष्य को अपने में न हो ऐसे गुण दूसरो में दिखते नही है। कंपन होते पानी में मनुष्य अपनी परछाई देख नहीं सकता

लेकिन अगर पानी स्थिर हो तो वह खुद की परछाई स्पष्ट देख सकता है। उसी तरह चंचल मन का मानवी आशंक्ति हो तो अपना स्वभाव देक नहीं सकता। शंका का आवरण उसे सही मार्ग से दूर रखता है। ऐसा मनुष्य अपने स्वभावगत दोषो से अज्ञात होता है लेकिन जो मनुष्य स्थिर बुद्धिवाला है उसको सब में एक और अविभाज्य के दर्शन होते है वह खुद में ऐसी शक्ति का विकास करते है जो जगत में सर्वत्र खुद में आंतर और बाहरी तरीके सै देख सके उसका दर्शन करते है। वह खुद में अन्य के और अन्य में खुद के दर्शन करता है। स्थिर दीमागवाला व्यक्ति ईश्वर के दर्शन सर्वत्र करते है। जो लाल रंग के ऐनक आंखो पर पहने तो सब कुछ लाल ही दिखता है। उसी तरह हमारे मन के विचार ईस जगत में अच्छे या बूरे के लिए जिम्मेवार होते है। हर एक व्यक्ति अपनी विचारधारा के अनुसार सब देखता है।

246. हम छाता क्यों रखते है? हमारे ऊपर बारिश गिरे और हम भीग न जाएं ईसलिए। बारिश मतलब माया। चित्त अर्थात छाते का हेन्डल। सत्य सर्वत्र व्याप्त है लेकिन सत्य की अनुभूति प्राप्त की हो ऐसे मनुष्य जगत में बहुत कम होते है। माया आत्मा से है लेकिन आत्मा माया में नहीं है। प्रधानमंत्री राजा का होता है। प्रधानमंत्री राजा नहीं है। मन है तो आत्मा नहीं है। मन आत्मा का प्रतिबिंब है। मन आत्मा से दो अंगुल नीचा है। मन विनाश का विषय है मतलब नाशवंत है। आत्मा अविनाशी है। मन ईन्द्रीयों के विविध विषयो से प्रेरित होता रहता है लेकिन आत्मा भ्रमणा से प्रेरित नही होता। आत्मा गुणो की भ्रमणाओं का विषय नहीं है। मन त्रिगुणात्मक प्रकृति का विषय है। हम जब कहते है की मन आत्मा का अंश है तब हमें मन जो की आत्मा के लिए वैसे ही है जैसे की नदी समुद्र

के लिए होती है। आत्मा महासागर है और उसकी जलराशि अमाप है और अनंत है उसी तरह आत्मा का प्रारंभ या अंत नही होता। आत्मा का उदगम स्थान नही है और उसका अंत स्थान भी नहीं है। आत्मा सार्वत्रिक है। आत्मा चिरंजीवी है। हमसे पहले और बाद में भी सृष्टि है। यह हकीकत हमे मालुम नहीं है।

स्पष्टीकरणः हम छाता क्यों रखते है? बारिश से हम भीग न जाये ईसलिए। बारिश अर्थात माया है। सत्य छाता है। चित्त (द्रढ मन) छाते का हेन्डल है। छाते का हेन्डल (हाथा) ईसलिए महत्वपूर्ण है की उसके बिना छाता खूलता नही है। उसी तरह सत्य को प्रकाशित करने के लिए हमारा मन मक्कम होना जरूरी है। मन मक्कम हो तो हम सत्य को समज सकते है और सत्य का ज्ञान हमे माया के मार से बचाता है। सत्य सार्वत्रिक है लेकिन सत्य समजनेवाले लोग बहुत ही कम होते है। ईश्वर सर्वत्र और समस्त सृष्टि में है। माया आत्मा में से पैदा होती है। आत्मा माया में से पैदा नही होती। अविनाशी आत्मा में से नाशवंत माया का जन्म होता है। प्रधानमंत्री कीसी भी राष्ट्र या देश में राजा का नौकर होता है लेकिन वह स्वयं राजा नहीं है। मन आत्मा नही है लेकिन आत्मा का प्रतिबिंब है। आत्मा राजा है और मन प्रधानमंत्री है। आत्मा मन के ऊपर प्रकाश गिराता है। मन का स्थान आत्मा से नीचा है। मन नाशवंत है। आत्मा अविनाशी है। मन को ईन्द्रीयो के विषय भ्रमित करते है। मन मर्कट के जैसा है। मन जगत के अनेकविध भोग-उपभोगो का चाहता है लेकिन आत्मा भ्रमणाओं से परे है। आत्मा समय, स्थान, कारण, परिणाम से परे और सभी बातो से अछूती है। आत्मा निर्दोष, भोला और त्रिगुण से परे है लेकिन मन त्रिगुण से पर नहीं है। वह दोषरहित भी नही है। मन का स्थान आत्मा के लिए

वह है जो की नदी का सागर के लिए होता है, मन आत्मा का अंश है। मन की शक्तियां मर्यादित है, लेकिन आत्मा असीमित शक्ति रखती है। आत्मा का प्रारंभ भी नही है और अंत भी नही है। आत्मा का उदगम स्थान भी नही है औक गंतव्यस्थान भी नही है। आत्मा सार्वत्रिक है। दुसरा कोई अस्तित्व नही है, सिर्फ आत्मा का अस्तित्व है। जीनका वर्णन या व्याख्या न हो सके वह ब्रह्मांड और आत्मा के उपर राज करता है। फर्क सिर्फ स्तर का है और ईसलिए ही ज्ञानी आत्मा की उपस्थिति जगत में सार्वत्रिक महसूस करता है। हमसे पहले और बाद में समग्र सृष्टि है वह हकीकत हमे मालुम नही है। ईस सत्य का ज्ञान तभी होता है जब हम ब्रह्मांड को चलाने के कानुन के साथ एकाकार हो जाए।

247. जब जीवन ऊर्जा बाह्य दिशा की ओर गति करती है तब सांसारिक जीवन की चीजो के लिए ईच्छा जागृत होती है। वह मन के स्वरुप में दिखती है और उसका विभाजन दो भाग में भी गौण विभाजन दो-तीन या छः भागो में होता है और उसे जगत 'दुनिया' कहा जाता है। ईस जगत में ही सभी अच्छे-बूरे गुणो का सृजन होता है। पांच कर्मेन्द्रीयो पृथ्वी के साथ जुडी है। पांच मुख्य ईन्द्रीयां 'आकाश' के साथ जुडी है। कर्मेन्द्रीया सतगुणो की होती है। जो ईन्द्रीयो को जीत ले वह मुक्त मानव है। ऐसे व्यक्ति को संतुष्टि-स्व में से मतलब आत्मा में से प्राप्त होती है।

स्पष्टीकरणः जब जीवन ऊर्जा बाहरी दिशा में आगे बढती है तब हमारे शरीर में विविध ईच्छाएं पैदा होती है। ईच्छा मन के स्वरुप में अभिव्यक्त होती है। मन का विभाजन- गौण विभाजन दो-तीन या छः भागो में होता है। ईसे "जगत" कहा जाता है। ईस जगत में से सभी अच्छे-बूरे गुणों का सृजन होता है। मनुष्य अपने मन को बाहरी दिशा में ले जाकर विविध

सांसारिक आनंद के लिए ईच्छा जागृत करता है। मन को नियंत्रित करने के बजाय वह ईच्छापूर्ति के लिए अनुमति देता है। परिणामस्वरुप वह ईच्छाओं, आनंद का जगत अपनेआप में बनाता है। ईच्छाएं गौण ईच्छाएं विभाजन गोण विभाजन होता रहता है। ईस जगत में से पांच प्रमुख ज्ञानेन्द्रीयां अस्तित्व में आती है। पांच कर्मेन्द्रीयां पृथ्वी के साथ जुडी हुई है। वह अस्तित्व में आती है। पांच ज्ञानेन्द्रीयां आकाश के साथ जुडी हुई है। यह पांच ज्ञानेन्द्रीयों के लक्षण 'चित्त' जैसे है। पांच कर्मेन्द्रीयां सत्तगुण के साथ जुडी हुई है। जो ईन्द्रीयो को जीत लेता है वह मुक्त मानवी है। ऐसे मनुष्य के संतोष स्व में से मतलब आत्मा में से प्राप्त होता है। पूर्ण ज्ञानी होने के लिए पुर्णरुप से वैराग्य आवश्यक है। पूर्णरुप वैराग्य मतलब ओर कुछ नही सिर्फ ईन्द्रीयो का विजय। ईच्छारहित मनुष्यो ही मुक्ति सिद्ध कर सकते है।

248. ब्रह्म और सिर्फ ब्रह्म के बारे में सोचिए। मन देखने में अलग दिखता है फिर भी सिर्फ एक और एक ही है। मन जब एकाग्र हो तब महानता की चरमसीमा पर होता है। यह मन शाश्वत मन है। यह शाश्वत मन परमानंद है। यह शाश्वत मन को चिदाकाश कहा जाता है। शुद्ध मन, शुद्ध आकाश, शुद्ध चिदाकास वही सिद्धि है। स्वच्छ चिदाकाश मतलब योग-मतलब ईश्वर के साथ संमिलन! जब शुद्ध चिदाकाश में प्रवेश करे तब एक संतोष सिद्धि प्राप्त होती है। जब ईस शुद्ध आकाश में प्रवेश करते है तब मेरा और तुम्हारा ऐसा फर्क खो जाता है। ईस स्वच्छ चिदाकाश में ही मुक्ति, भक्ति, शक्ति और अनुकूल मार्ग है। चिदाकाश बुद्धि में है। जब जीव शुद्ध चिदाकाश में रहता है, तब सांसारिक जीवन के बंधन नष्ट हो जाते है। ईन्द्रीया एवं उसके संबधित भोग जल जाते है। यह स्वच्छ

चिदाकाश ब्रह्मरंध्र है। ब्रह्मरंध्र मतलब ऐसी गुफा जिसमें ब्रह्म रहता है। राजयोग जीसे कहा जाता है। वह गले के उपर के भाग में होता है, जीसे 'रंग गुफा' कहा जाता है वह गले के उपर होता है।

स्पष्टीकरणः अपने चित्त में हरदम ब्रह्म के बारे में चिंतन करो। अलबता, मानवी के मन अलग दिखते है लेकिन हकीकत में वह एक और एक ही होते है। जो भेद दिखता है वह भ्रमणा है। एक अनुभूति करना मतलब आत्मा को सब में देखना। जब ईच्छाएं नष्ट हो जाएं तब सभी मन एकसमान हो जाते है। मन का कोई आकार नही है। मन वायु स्वरुप हे, लेकिन मन जब एकाग्र होता है तब महानता की चरमसीमा पर होता है। एकाग्र मन शाश्वत मन है। शाश्वत मन ओर कुछ नही लेकिन परम आनंद का स्वरुप है। शाश्वत मन को चिदाकाश कहा जाता है। शुद्ध मन हरदम शुद्ध चिदाकाश में होता है। चिदाकाश की अनुभूति मनुष्य के जीवनलक्ष्य की सिद्धि है। चिदाकाश अर्थात योग अर्थात वह स्थान जहां जीव शिव का साक्षात्कार करता है। जीसे चिदाकाश कहा जाता है वह ह्रदयाकाश है। चिदाकाश-ह्रदय पर ध्यान केन्द्रीत करने से मनुष्य मुक्ति सिद्ध सकता है। ह्रदयाकाश पर ध्यान केन्द्रीत करने से मनुष्य अपना अहंकार छोड सकता है ऐसा भाव जिसमे यह आप हो, यह मैं हं। यह जीव जब ह्रदयाकाश में शिव के साथ एक हो जायेगा तब अद्रश्य हो जायेगा। यह स्वस्थ स्थान में मुक्ति मतलब बंधनो में से मुक्ति, भक्ति, शक्ति और अनुकूल पथ है। शुद्ध स्थान! आकाश बुद्धि में है। जब जीव चिदाकाश के शुद्ध स्थान में रहता है तब सांसारिक जीवन के साधनो का आकर्षण-लगाव नीकल जायेगा। यह शुद्ध स्थान मतलब ब्रह्मरंध्र (करोडरज्जू की सुषुम्ना नाडी के अंत भाग में रहती जगह) जीसे राजयोग कहा जाता है। वह गले के ऊपर के भाग में है।

जब जागृत हुई कुंडलिनी शक्ति सुषुम्ना नाडी से गले के उपर जाती है तब मनुष्य राजयोग के महाराज्य में प्रवेश करता है लेकिन कुंडलिनी गल के ऊपर न जाये और नीचे की ओर सीमित रहे तब उसे हठयोग कहा जाता है। जीसे योग की परिभाषा में 'वर्णरंध्र' कहा जाता है। सादी भाषा में 'रंग गुफा' कहा जाता है वह भी गले के उपर है। जब कुंडलिनी वर्णलंध्र में पंहुचती है तब मस्तिष्क में विविध रंग दिखाई देते है।

249. ब्रह्मरंध्र मतलब 'मंत्र'। मंत्र मतलब प्राण का प्रधानमंत्री है। प्राण का प्रधानमंत्री आत्माबिंदु है। आत्मा का वह बिंदु समयातीत, कालातीत, कारणरहित है। ईस सब के मध्य में शाश्वत मंत्र है और उसके मध्य में यह चिदाकाश है। यह चिदाकाश मतलब 'चित्त'। यह परमानंद की कक्षा है। यह रामबाण (परम ईलाज) दवा अर्थात परम गुरु है, जीसका मंत्र है 'तत त्वन असि' मतलब आप हो और आप ही वही हो।

स्पष्टीकरणः मंत्र अर्थात 'ब्रह्मरंध्र'। मंत्र का मूल उद्देश और अंत ईश्वरसाक्षात्कार है। जब कुंडलिनी ब्रह्मरंध्र में पहुंचती है तब ईश्वर का साक्षात्कार पूर्णरुप से होता है। ईसलिए ब्रह्मरंध्र मंत्र है। मंत्र वह प्राण का मंत्री (प्रधान) है। जीस तरह प्रधान राज्य के कार्य में राजा को मदद करते है उसी तरह ईश्वरसाक्षात्कार के विषय में प्राण को मंत्र मदद करता है। प्राण का प्रधानमंत्री 'आत्मबिंदु' है। आत्मबिंदु एक ऐसा स्थान है, जो अवकाशरहित, समयरहित कारणरहित है। ईसके मध्य में शाश्वत मंत्र है। हरदम अभ्यास से आत्मबिंदु दिव्य चक्षु को दिखता है। नाद निरंतर सुनाई देता है। 'नाद' एक शाश्वत मंत्र है। ईस मंत्र के मध्य में चिदाकाश है।

चिदाकाश अर्थात चित्त, चेतना-चिदाकाश अर्थात परमानंद। चिदाकाश मतलब आत्मसाक्षात्कार का आनंद। जीवनमृत्यु के चक्र को भेदने का

रामबाण ऊपाय है। हमारी तमाम वासनाएं जब परमानंद का साक्षात्कार होता है तब अद्रश्य हो जाते है। ईसलिए ही परमानंद ही रामबाण ईलाज है। दवाओ की तरह गुरु भी शिक्षण की क्षतियां दूर करते है। गुरु का मंत्र है- ‘तत त्वम असि’ मतलब आप ही वही हो और वही आप स्वयं गुरु भी वही है जो अनुयायी को ईश्वरसाक्षात्कार की ओर ले जाते है।

250. मानवी को मानव क्यों कहा जाता है। सही मानव वह है की जो हरदम मनन करता रहता है। अगर ब्रह्मज्ञान का रास्ता हमे मालूम ही न हो तो बार बार हमें जन्म लेना पडता है। अगर ब्रह्मज्ञान का सही रास्ता खराब न हो तो हमें संतुष्टि प्राप्त नही होती। यह संतोष अपना फर्झ-परिणाम की एपेक्षा रखें बिना निभाया जाये तो मिलता है और वह भी उसके लगाव के बिना। ईन परिणामो की अपेक्षा के बगैर कर्म किया जाये उसे ही मुक्ति कहा जाता है। ईसे ही परम आनंद कहा जाता है। ईच्छाएं नर्क है। ईच्छारहित दशा परम आनंद की स्थिति है। उच्चत्तम स्थान शिवशक्ति की स्थिति है। शिवशक्ति द्रश्य और अद्रश्य दोनो के ज्ञाता है।

स्पष्टीकरणः मनुष्य को मानव क्यों कहा जाता है। मनुष्य को मानव ईसलिए कहा जाता है की वह मनन करता रहता है। सही मानव वही है, जो हरदम मनन करता रहता है। मनुष्य को मानव बनने के लिए ईश्वरचिंतन करते रहना चाहिए। अगर वह ऐसा न करे तो वह पशु से विशेष नही है। अगर हमें ब्रह्मज्ञान का मार्ग न मिले तो बार बार जन्म लेना पडता है। ब्रह्मज्ञान का रास्ता जिसे पता नही है उसे संतुष्टि मिलती नही है। अगर हमें ब्रह्मज्ञान का रास्ता पता है तो मन की शांति मिलती है। संतुष्टि मायारहित होने में है। मन माया की वजह से असंख्य चीजो में बंधा रहता है और ईसलिए मन की शांति रहती नही है लेकिन वही मन

अगर कीसी चीज में लगाव नही रखता तो परम शांति प्राप्त होती है। ईसलिए ही संतलोग बार बार कहते है की शांति निष्ठा में है अर्थात आनंद त्याग में है। मायारहित-लगावरहित (नोन-अटेचमेन्ट) दशा में ही मुक्ति है। मायारहित-लगावरहित दशा में परम आनंद है। ईच्छाओं से बडा कोई नर्क नही है। ईच्छाएं ही ईस जगत के दुःख की वजह है। ईच्छाएं अनंत है। ईच्छाओं में बढौतरी होती रहती है और असंतुष्ट रहनेवाली ईच्छाओं की वजह से मन हरदम दुःखी रहता है। ईसलिए ही ईच्छारहित दशा परम आनंद की वजह बनता है। परम आनंद शिवशक्ति में है। शिवशक्ति वह द्रश्य और अद्रश्य दोनो के ज्ञाता है। शिवशक्ति सर्वशक्तिमान और सार्वत्रिक है।

251. आत्मा का चिंतन ईन्द्रीयों से नही हो सकता। आत्मा ईन्द्रीयों से पुर्णरुप से अलग है। उसे ज्ञान से समजा जा सकता है। शरीर विचार से वह एकदम अलग है। योगी वह है जो की ईन्द्रीयों के सही स्वरुप को समजते है और वह ज्ञान अनुसार बर्ताव करते है। ऐसे लोगो को महात्मा कहा जाता है और वे जो बोलते है वें 'वेद वाक्य' बन जाते है। वह ईमली के बीज जैसे होते है। ईमली के गर्भ का स्पर्श करते है तो चीकना लगतै है लेकिन उसके बीज शुद्ध होते है। महात्मा का ह्रदय ईमली के बीज जैसा होता है। जो एकदम शुद्ध होता है। ऐसे महात्मा सदाकाल युवान रहते है। वें ज्ञानी है और ज्ञानी चिरंजीव होता है।

स्पष्टीकरणः आत्मा ईन्द्रीयों से नही समजी जा सकती। आत्मा ईन्द्रीयों से पर है। आत्मा सिर्फ ज्ञान से समजी जा सकती है। आत्मा शरीर विचार से परे है। जो लोग ईन्द्रीयो के सही स्वरुप को समजते है और वह ज्ञान के हिसाब से बर्ताव करते है वे योगी है। ऐसे लोग ईन्द्रीयों के आनंद

का शिकार नही होते। ऐसे लोग महात्मा होते है। वे लोग जो बोलते है वे वेदवाक्य होते है। यें लोग दिव्यता के ऐसे स्तर पर होते है की वे परम सत्य के सिवां कुछ बोल ही नही सकते। ऐसे महात्मा ईमली के बीज की तरह होते है। ईमली का गर्भ स्पर्श से चीकना लगता है लेकिन उसके बीज ईमली शुद्ध रहते है। ज्ञानीलोग ईस जगत में रहते हुए भी और सांसारिक जीवन के अतिआवश्यक हो वैसे ही आनंद प्राप्त करते है फिर भी वे निःस्पृह होते है। महात्मा का ह्रदय ईमली के बीज जैसा होता है-एकदम शुद्ध। ऐसे महात्मा सदाकाल युवा रहते है। ज्ञान के लिए कोई आयु नही होती। ईश्वर के लिए ज्ञान जो सत्य है वह समय, स्थान और कारण से परे हो जाता है क्योंकी ईश्वर 'समयरहित' कालातीत, कारणरहित और स्थानरहित है।

252. दीपक को तैल से भरें और ज्योत जलाओ। जैसे जैसे तैल घटता जायेगा वैसे वैसे दीपक की बाती छोटी होती जाती है और प्रकाश क्रमशः कम होने लगता है लेकिन फिर से दीपक में तैल भरा जाये और ज्योत जलाई जाये तो दीपक का तेज पूर्ववत् हो जाता है। ऐसा ज्ञानी के अंदरुनी जीवन का है। योगी का मानसिक जीवन पानी में रहे मख्खन की तरह है। मख्खन पानी में डूबता नही है और पानी के ऊपर तैरता रहता है। शरीर पानी के जैसा है और आत्मा मख्खन जैसा है। सूक्ष्म बुद्धि को मस्तिष्क में केन्द्रीत करनी चाहिए। बुद्धि को सुषुम्ना के सिर पर केन्द्रीत करनी चाहिए। मन और बुद्धि दोनो मस्तिष्क में होने चाहिए। मन बुद्धि मे होना चाहिए और बुद्धि मन में होनी चाहिए। विवेक सिर्फ बुद्धि से ही पैदा होता है और यह विवेक ही जीवात्मा और परमात्मा की एकात्मक्ता को प्रभावित करता है।

स्पष्टीकरणः दीपक मे तैल भरें और उसकी बाती जलाओ। जैसे जैसे दीपक में तैल कम होता जायेगा वैसे वैसे बाती क्रमशः छोटी होती जायेगी और प्रकाश क्रमशः कम होगा लेकिन अगर दीपक में फिर से तैल भरा जाये तो और बाती को जलाई जायें तो दीपक पुनःप्रकाशित हो जायेगा। ऐसा ही ज्ञानी के अंदरुनी जीवन का है। श्रद्धा वह ज्योत है और भक्ति (ईश्वर के लिए निःस्वार्थ प्रेम) दीपक का तैल है। जीस तरह भक्ति क्रमशः बढती जाती है उसी तरह ज्ञान का प्रकाश क्रमशः बढता जाता है। ईससे उलटा भी होता है। ज्ञानीओ का हृदय पानी में रखे मख्खन जैसा है। वह पानी में डूबता नही है लेकिन तैरता रहता है। ज्ञानीलोग जगत में रहते है फिर भी अस्पृश्य (बंधनरहित) रहते है। शरीर पानी जैसा है और हृदय मख्खन जैसा है। सूक्ष्म बुद्धि मस्तिष्क में होती है। बुद्धि सुषुम्ना नाडी के ऊच्चत्तम बिंदु पर होती है। मन और बुद्धि मस्तिष्क में होने चाहिए। यही ज्ञानी का सही लक्षण है। मन मस्तिष्क में होता है। बुद्धि मन में होती है और मन बुद्धि में होता है। मन और बुद्धि एक होने चाहिए और तभी दिव्यता की ऊच्चतम स्थिति का अनुभव हो सकता है। विवेक बुद्धि में से पैदा होता है और विवेक की वजह से ही जीवात्मा और परमात्मा की एकात्मक्ता सिद्ध होती है।

253. एक नारियल में से असंख्य नारियल पैदा होते है। अगर नारियल की जडे काटो तो नारियल पैदा होना बंध हो जाता है। वासना नारियल की जडों जैसी है। उसे विवेक की कुल्हाडी से जड से काटना चाहिए और तभी शांति प्राप्त होती है। साधुगुण, सत्वगुण, शांति और ऐसे सदगुण मायारहित दशा में से प्राप्त होते है। बुद्धि जब स्थिर होती तब उसे

सत्वगुण कहा जाता है। सत्य-पत्थर में लिखे अक्षरो जैसा है। सांसारिक जीवन की बातें स्लेट पर चाक से लिखे गये अक्षरो की तरह होती है।

स्पष्टीकरणः एक नारियल में से अनेक नारियल पैदा होते है। एक ज्ञानी में से अनेक ज्ञानी पैदा होते है। नारियल की जडें काटी जाये तो नारियल का पैदा होना बंध हो जाता है। वासना नारियल की जड की तरह होती है। उसे जड से काटनी चाहिए और उसके लिए विवेक का ऊपयोग करना चाहिए। वासना जब पूर्णरुप से नष्ट न की जाये तब तक पूर्णरुप से शांति प्राप्त होती है। मनुष्य साधुगुण, सत्वगुण, शांति और सभी गुणो तबी प्राप्त कर सकते है जब निःस्पृहिता (नोन-अटेचमेन्ट) के स्तर पर पहुंचता है। जब बुद्धि स्थिर हो तब सत्वगुण कहा जाता है। सत्य पत्थर पर लिखे अक्षरो जैसा है। सांसारिक जीवन की बातें पत्थरपाची पर लिखे चाक के लक्षणो जैसी है। सत्य हरदम सामान्य रहता है लेकिन सांसारिक बातें तुरंत ही भूला दी जाती है।

254. कुएं को एक बार उसके पानी से पुर्णरुप से खाली कर देना चाहिए। पूरा किचड निकाल देना चाहिए। बाद में कुएं में से आनेवाला पानी शुद्ध होता है। ज्ञान ईस शुद्ध पानी जैसा है। एक बार मैं और मेरे विचारो को जला देने से ईन्द्रीयों के विषय पर उदासीनता स्वयंभू प्रकट होगी।

स्पष्टीकरणः कुएं को शुद्ध करने के लिए उसमें पानी पूर्णरुप से निकाल देना चाहिए। कीचड़ निकाल देना चाहिए। उसके बाद कुएं में जो पानी आता है वह शुद्ध होता है। मनुष्य प्रारंभ में शुद्ध नहीं होता लेकिन सतत साधना से अपनी गंदकी, अस्वच्छताएं जल जायेंगी उसके मन को वासनाओं से शुद्ध करना चाहिए। उसके बाद पैदा होनेवाला ज्ञान बहुत ही शुद्ध होता है। उसी तरह जीस तरह कुएं में से कीचड़-पुराना बासी पानी दूर करने से शुद्ध

पानी मिलता है। सदा के लिए मैं और मेरा की संवेदनाएं जला देनी चाहिए। जब ऐसा होता है तब परम सत्य का ज्ञान अपनेआप ही पैदा होता है। साधुगुणो, सत्तगुणो, शांति और अन्य गुणो कोई भी प्रयास के बिना पैदा होगे। ईश्वर का दर्शन हर एक चीज में होगा। ईस स्थिति को सिद्ध करने के लिए सांसारिक जीवन के आनंदो का पूर्णरुप से त्याग जरूरी है।

255. मनुष्य कागज पे लिखना सिख जाता है बाद में रेत में अक्षर लिखने की जरुरत नही रहती और भूमि पर लिखने की भी आवश्यक्ता नही रहती। उसी तरह मनुष्य एक बार ब्रह्म दर्शन करे – जो ब्रह्म गुणातीत है बाद में उसे पंख जैसे हलके ब्रह्म के साथ उतरने की आवश्यक्ता नही है। दूध एक बार छांछ बन जाये बाद में छांछ को दूध में परिवर्तित कर सकते है?

स्पष्टीकरणः एक बार मनुष्य कागज पे लिखना सिख जाता है बाद में उसे रेत में अक्षर लिखने की जरुरत नही है। उसी तरह जो मनुष्य एक बार गुणातीत ब्रह्म को सिद्ध करे बाद में उसे गुणोवाले ब्रह्म की ओर जाने की जरुरत नही है। एक बार ऊच्च स्तर पहुंचने के बाद वापिस नीचले स्तर पर जाने की आवश्यक्ता नहीं है। एक बार दूध छाँछ बन जाता है बाद में छांछ को दूध में परिवर्तित नहीं कर सकते।

256. जो लोग दूध खरीदने जाते है उन्हें गाय की किंमत नही पूछनी चाहिए उसी तरह जो लोग आत्मा की खोज में होते है उन्हें शरीर के चीजों की चिंता नहीं करनी चाहिए। जीसने आत्मा को सिद्ध किया है वह नारियल के सुखे कोपरे जैसा है मतलब उसे शरीर से लगाव नही होता। अगर रस्सी को जला दिया जाये तो वह खाक हो जाती है बाद में उसकी रस्सी नहीं

बना सकते। कोई व्यक्ति दूसरे का बूरा नही कर सकता। मनुष्य अच्छा या बूरा अपने विचारो से होता है। हम किसी व्यक्ति को कीसी बात के लिए वजह माने तो उसका सूक्ष्म अर्थ है नांव को चलाने के लिए हाथ से धक्का मारना पडे उसी तरह कोई ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जो आत्मज्ञान के लिए गुरु बन सके। जब नांव दूसरे किनारे पर पहुंचती है तब नाविक की जरुरत नहीं होती। पानी में नांव किस तरह होती है। जीस तरह आत्मा शरीर में होती है। हमारे पांव किचड़ से गंदे हुए है तो वह साफ करने के लिए जहां पानी होता है वहां जाना पडता है। जब हम दो हाथ से ताली बजाते है तब हमे एक शक्ति का अनुभव होता है और आवाझ आती रहती है। सभी ऊंगलियां एकसमान नही होती फिर भी जब हम खाने के लिए हाथ मुंह की ओर ले जाते है तब सभी ऊंगलियां एक हो जाती है उसी तरह जैसे अनुभव बढ़ता जाता है वैसे अविभाज्य के दर्शन होते है। गुरु पर की श्रद्धा लोमडी की आवाझ जैसी होती है। जीस तरह सब लोमडीयों की आवाझ एकसमान होती है उसी तरह सभी संतो के ह्रदय एकसमान होते है। कुएं मे जल हर सतह पर एकसमान होता है। एक कुएं में दो तरह के जल नहीं होते। उसी तरह जीवन ऊर्जा गतिमान और असल दोनो चीजों में एक समान ही होती है। उसी तरह सूर्य चंद्र की शक्ति एक समान होगी। आत्मा अवकाश में और अवकाश आत्मा में है। जीन लोगों ने यह अनुभूति की होगी वें आनंद से गायेंगे। 'आनंद की कुंडलिनी' क्या है उसका ज्ञान उन्हें मालुन होता है। आनंद कुंडलिनी मतलब मनुष्य में आनंद करनेवाली सर्पाकार गति से आगे बढती शक्ति। ऐसे मनुष्य कुंडलिनी कहां है वह ढूंढने के लिए प्रयास करेंगे। कुंडलिनी ढूंढने के बाद उसे प्राणायाम से जोडा जायेगा और उन लोगो को फिर से प्राणायाम के साथ जोडने का प्रयास करना चाहिए। उन लोगो को

भक्ति का अनुभव करना चाहिए। उन लोगो को मुक्ति का साक्षात्कार ककरना चाहिए। उन लोगो को जन्म और मृत्यु पर विजय प्राप्त करना चाहिए और सब भूल जाना चाहिए। व्यक्ति को मौत और उसके साथ जुडी हुई बाते के लिए विजय प्राप्त करना चाहिए। व्यक्ति को माया के सत्य स्वरूप को समझना चाहिए। हे मन! शाश्वत आनंद के साथ एकाकार हो जाओ। ऐसी मनःस्थिति का अनुभव करें की जो शाश्वत आनंद से भरा हो।

परमात्मा महाराजा के साथ एकाकार हो जाओ। हे मन! बाहरी जगत पिघल जाओ और परम आत्मा महाराज के साथ एकाकार हो जाओ। जिसने परमात्मा के साथ एकात्मक्ता प्राप्त की है उसने अपना जीवन लक्ष्य प्राप्त कर लिया है। व्यक्ति को परमात्मा के साथ एकाकार हो जाना चाहिए। जागृति, स्वप्नअवस्था सब परमात्मा में लीन हो जाना चाहिए और

एकाकार हो जाना चाहिए। आत्मज्ञान के लिए ऐसी विवेकबुद्धि है। यह चाबी हरदम हाथ मे रहनी चाहिए। खजाना रखनेवाले को अपने खजाने की चाबी के लिए सतर्क रहना चाहिए उसी तरह बुद्धि को दीमाग में केन्द्रीत करनी चाहिए। पानी जब तक अग्नि पर हो तब तक ही गर्म रहता है लेकिन पानी का बरतन जैसे ही भूमि पर रखा जाता है तो वह ठंडा होने लगता है। हमारी बुद्धि अग्नि पर रखे गर्म पानी जैसी होनी चाहिए उसी तरह श्रद्धा अचल होनी चाहिए। जीव कमरे में बंधे बछडे जैसा होता है। बछडा हर दम कमरे में से बाहर निकलने के लिए तत्पर रहता है उसी तरह जीव ज्ञान का अमृत पीने के लिए हर दम तत्पर रहता है।

स्पष्टीकरणः गाय के दूध खरीदने के लिए जानेवाले मनुष्य को गाय की किंमत नहीं पुछनी चाहिए उसी तरह आत्मा की खोज में नीकले मनुष्य को शरीर के बारे में चिंता करने की कोई आवश्यकता नहीं है। उसके लिए

शरीर के बारे सोचने के लिए धर्म ही नही है। साक्षात्कार करनेवाला मानवी नारियल के कोपरे जैसा कठोर है मतलब उसे शरीर से लगाव नही होता। एक बार रस्सी जलाकर खाक कर देते है तो उसक फिर से उपयोग नही कर सकते। एक बार ईच्छाओं को जला दिया जाये तो वें फिर से हमे परेशान नही करती। एक बार मनुष्य पूर्णरुप से ज्ञानी बन जाता है तो वह वापिस भौतिकवाद में नही जायेगा। हकीकत यह है की कोई भी मनुष्य कीसी का बूरा नही कर सकता। वास्तव में अच्छा-बूरा हमारे खुद के सृजन होते है। दूसरो को दोष देना वह बहुत ही नाजुक बात है। नांव को गति देने के लिए शुरु में धक्का दिया जाता है। आध्यात्मिक मार्ग पर आगे बढने की ईच्छा रखनेवाले मनुष्य को शुरु में गुरु की आवश्यक्ता रहती है। जब नांव नदी के दूसरे किनारे पर पहुंचती है तब पतवार चलानेवाले को नाविक की जरूरत नहीं होती। एक बार ईश्वर का साक्षात्कार हो बाद में गुरु की जरुरत नही रहती। नांव पानी में कैसे तैरती है? उसी तरह आत्मा शरीर में होती है। नांव पानी में होती है फिर भी पानी से अलग है उसी तरह आत्मा शरीर में रहती है फिर भी वह शरीर से अलग है। आत्मा को शरीर का ललगाव नहीं होता। हमारा शरीर किचड़ से गंदा हुआ हो तो उसे कादवरहित करने के लिए हमे जहां पानी हो वहां जाना पडता है। हम पानी के पास जाते है और डरते है तो किचड़ कीस तरह धो सकते है? उसी तरह मनुष्य का मन अशुद्ध है। वह अशुद्धियां दूर करने के लिए हमे कीसी भी प्रकार की साधना करनी चाहिए। अगर मनुष्य को योगाभ्यास करने से डर लगता हो तो मन की शुद्धि कीस तरह हो सकती है। ऐसा मनुष्य ईश्वर का साक्षात्कार कैसे कर सकता है? ताली बजाने के लिए दो हाथों की आवश्य़क्ता रहती है। एक हाथ से ताली की आवाझ नही आती। दोनो हाथ साथ मिले तो ही ताली की

आवाझ होती है। जीव और शिव दोनो अलग है मन और बुद्धि अलग हो तो मनुष्य साक्षात्कार नही कर सकता और ईश्वर के परम सुख की प्राप्ति नही होती। ईश्वर का जीव और शिव जब एक हो तब मनुष्य उसके चारो ओर ब्रह्मांड को अंकुशित करनेवाले सर्वशक्तिमान की उपस्थिति का अनुभव करता है। वैसे तो हाथों की सभी ऊंगलियां एकसमान नहीं होती पर जब मनुष्य अन्न का निवाला मुंह तक लाता है तब एकदूसरे के साथ मिलकर ही एकसमान हो जाती है। उसी तरह हमारी ईन्द्रीयां शुरु में अलग होती है लेकिन वें जीव और शिव का साक्षात्कार होता है तब एक हो जाती है। ईन्द्रीयां उस स्थिति में आत्मा में विलीन हो जाती है। गुरु में श्रद्धा एक लोमडी की आवाझ जैसी है। एक लोमडी रोती है तब सभी लोमडीयां रोना शुरु करती है। एक शिष्य जब अपने गुरु में अतूट विश्वास दिखाता है तब दूसरे शिष्य उसका अनुकरण करते है। सभी लोमडीयों की आवाझ एकसमान होती है। उसी तरह सभी साधु अंदरुनी तौर पर एकसमान होता है। कुएं में पानी का स्तर एकसमान होता है। एक ही कुएं में दो तरह का पानी नही होता। ईसी तरह जीवन ऊर्जा चलित और अचल चीजों में एकसमान होती है। सूर्य और चंद्र की शक्तियों में कोई फर्क नही होता। सभी फर्क सिर्फ मानसिक भ्रमणा है। अवकाश आत्मा में है और आत्मा अवकाश में है अर्थात आत्मा और अवकाश एक है। जो लोग आत्मा और अवकाश को एक समजते है वे दिव्य आनंद का अनुभव करते है। ऐसे मनुष्य आनंद कुंडलिनी का ऊच्चतम आनंद प्राप्त करते है। ऐसे लोग आनंद कुंडलिनी का ज्ञान रखते है, वें हरदम प्रयासो से भक्ति और मुक्ति सिद्ध करते है। भक्ति मतलब ईश्वर के लिए निर्मल प्रेम। ऐसे लोग जीवनमृत्यु के चक्र से मुक्त हो जाते है। जीवन मृत्यु को जीतने के बाद

उन्हें ईश्वर सिद्धि भूल जानी चाहिए। उन्हें माया के सत्य स्वरुप को समजना चाहिए। उन लोगो को नित्यानंद की अनुभूति करनी चाहिए। हे मन! यह शाश्वत आनंद को पचा लो! यह शाश्वत आनंद को प्राप्त करो! तारक ब्रह्म के आनंद को पीओ! मस्तिष्क में तारक होने से प्राप्त हो रहा कुंडलिनी का सुख! हे मन! समग्र बाहरी विश्व को तारक में रखो! तारक को ब्रह्मांड में व्याप्त शक्तिओं से भर दो! 'तारक' में जीन लोगोनें यह सुख प्राप्त किया है वे जन्ममृत्यु के बंधनो से दूर हो जाते है। उन्होंने जीवन का लक्ष्य सिद्ध कर लिया है, ईसलिए ही हमें हमारे मन को तारक पर केन्द्रीत करना चाहिए। जागरुकता, स्वप्न और सुषुप्ति। विवेक की शक्ति आत्मज्ञानी की चाबी है। आत्मज्ञान के लिए बुद्धि बहुत ही महत्वपूर्ण है। तीव्र बुद्धि के बिना मनुष्य 'स्व' का मतलब आत्मा का ज्ञान प्राप्त नही कर सकता। तीव्र बुद्धि ताले की चाबी जैसी है और हमे अपने उत्कृष्ट लाभ के लिए उसका उपयोग करना चाहिए। जिस तरह खजाने की चाबी के लिए मनुष्य को सतर्क रहना चाहिए उसी तरह मनुष्य को अपने मस्तिष्क में रही बुद्धि के लिए सतर्क रहना चाहिए। मनुष्य को बुद्धि पर हरदम ध्यान केन्द्रीत करना चाहिए। पानी तब तक ही गर्म रहता है जब तक वह अग्नि पर होता है, जैसे ही उसे भूमि पर रखा जाता है, वह धीरे धीरे ठंडा हो जाता है, उसी तरह जब तक बुद्धि पर ध्यान केन्द्रीत किया जायेगा तब तक ही वह तीव्र और अचूक रहेगी। जैसे ही हम हमारा ध्यान बुद्धि पर से हटा लेंगे तो बुद्धि शिथिल होने लगेगी। मन में रही बुद्धि अग्नि पर रखे गए गर्म पानी की तरह जैसी है। बुद्धि हरदम सतर्क और दोषरहित होनी चाहिए उसी तरह श्रद्धा की अच्छी तरह परवा करनी चाहिए। जीव कमरे में बंधे हुए बछडे जैसा है। बछडे को हरदम कमरे से बाहर जाने की आतुरता

रहती है उसी तरह जीव हरदम ज्ञानामृत पीने के लिए तत्पर होता है। जीव को शिव के साथ एक होने की तत्परता होती है।

257. धारणा एक ऐसा साधन है, जीसके द्‌वारा बुद्धि की विवेक शक्ति बढती है। धारणा मुक्ति का मार्ग है। धारणा परमेश्वर की प्राप्ति का मार्ग है। प्राण मतलब जीवन शक्ति स्थिर हो उसके लिए धारणा एक साधना है। जब जीवन ऊर्जा स्थिर होती है तब मन स्थिर होता है। जब प्राण को ऊर्ध्व दिशा में ले जाते है तब ज्ञान हरएक नाडी में प्रवेश करता है और परिणामस्वरुप शांति सिद्ध होती है। प्रकृति और सूक्ष्म विवेक दोनो अलग होते है। योग-मन की शांति से पैदा होती शक्तियां क्षमा-धैर्य जैसे गुणो का बुद्धि में अनुभव होता है। जो लोग हरदम धारणा का अभ्यास करते है उन्हे सारा विश्व उनके अस्तित्व में समाया हुआ हो ऐसा अनुभव होता है। आत्मा सभी तरह के कर्म और विधि विधानो से परे है। कर्म वही है जो परिणामो के लगाव (अटेचमेन्ट) के बिना किया जाता है। व्यक्ति पापरहित तो ही हो सकता है अगरे निःस्पृहभाव से कर्म करे। कर्म आत्मा के ज्ञान से किया जाता है। आत्मा जो की निष्कर्म और निर्वासनीक है।

स्पष्टीकरणः धारणा (मन की संपूर्ण एकाग्रता) बुद्धि की विवेक शक्ति बढाने का साधन है। मनुष्य की बुद्धि अपना मूलभूत तत्व खो देती है, क्योंकी उसका कर्मयोग विस्तृत और फैला हुआ होता है, लेकिन अगर बुद्धि केन्द्रीत हो तो बुद्धि उसके प्राकृतिक तेज से प्रकाशित होती है। धारणा मुक्ति का मार्ग है। मन को ईश्वर पर केन्द्रीत करो। मुक्ति निश्चिंत तौर पर मिलेगी। धारणा परमेश्वर प्राप्ति का मार्ग है। धारणा जीवन ऊर्जा स्थिर करने का साधन है। जब जीवन ऊर्जा स्थिर हो जाती है तब मन स्थिर और एककेन्द्री हो जाती है। जब प्राण मतलब जीवन ऊर्जा ऊर्ध्वगामी हो

तब ज्ञान में परिवर्तित होती है। यह ज्ञानमृत जैसे जैसे विकसित होता है वैसे वैसे वह शरीर की हरएक नाडी में प्रवेश करता है और व्यक्ति पूर्णरुप से शांति प्राप्त होती है। ऐसी स्थिति में मनुष्य का सामान्य स्वभाव और सूक्ष्म खुद ही अलग हो जाता है। जो लोग हरदम धारणा का अभ्यास करते है उन्हें खुद में ब्रह्मांड को प्राप्त करनेवाले की शक्ति का विकास कर सकता है। अगर मनुष्य का मन एक केन्द्रीत हो तो नित्य मुक्ति का आनंद प्राप्त कर सकता है। आत्मा सभी कर्मो और विधिविधानो से परे है। कर्म वह है जो निःस्पृह तौर पर किया जाता है। हम जो कर्म करते वह भूल जाये तो वह पाप नहीं है। कर्म वह है जो की आत्मा के ज्ञान के साथ किया जाता है। आत्मा वह है जो कर्मरहित और निर्वासनीक (वासनारहित) है।

258. आत्मा को ईन्द्रीयो से नही समज सकते है। उसे बुद्धि से समज सकते है। आत्मा आकार और गुणोवाली चीज की तरह समज नही सकते। जीन लोगो का ध्यान शरीर पर केन्द्रीत हुआ है उन लोगो के लिए शांति सिद्ध करना मुश्किल है। ऐसे लोगो के लिए आत्मा का दर्शन करना भी मुश्किल है। द्रश्य-चीजो पर ध्यान करना चाहिए। अद्रश्य के प्रति प्रेम बढाना चाहिए। जब तक ध्यान द्रश्य बातों में रहेगा तब तक दुःख-आनंद के द्वैत का अनुभव होगा लेकिन जब ध्यान अद्रश्य की ओर जायेगा तब गुणो की अनुभूति अद्रश्य हो जायेंगे।

स्पष्टीकरणः आत्मा को ईन्द्रीयों से नही समज सकते। आत्मा को बुद्धि से ही समज सकते है। आत्मा को आकार या गुणोवाली चीज के तौर पर नही समज सकते है। हमे हमारा ध्यान द्रश्य बातों पर कम करना चाहिए। हमे अद्रश्य बातो पर ध्यान केन्द्रीत करना चाहिए। जगत द्रश्य है और हमे

सांसारिक बातो पर का प्रेम घटाना चाहिए। हमारी ईश्वरप्राप्ति के लिए ईच्छा बढानी चाहिए। जो बातें द्रश्य के साथ जुडी हुई हो वह दुःख और आनंद के साथ जुडी होती है। अद्रश्य बातें दुःख और आनंद से पर होता है। ईश्वर जगत के द्वंद्वो (द्वैत) से परे होता है। जब ईश्वर का साक्षात्कार होता है तब द्वैत भाव भूतकाल की बात बनकर हमारा जीवन लक्ष्य ईश्वर के साथ एक-उसका साक्षात्कार करके हो जाना ही है।

दूसरा विभाग समाप्त

श्रीकृष्णार्पणम् अस्तु

ॐ, ॐ, ॐ, ॐ, ॐ

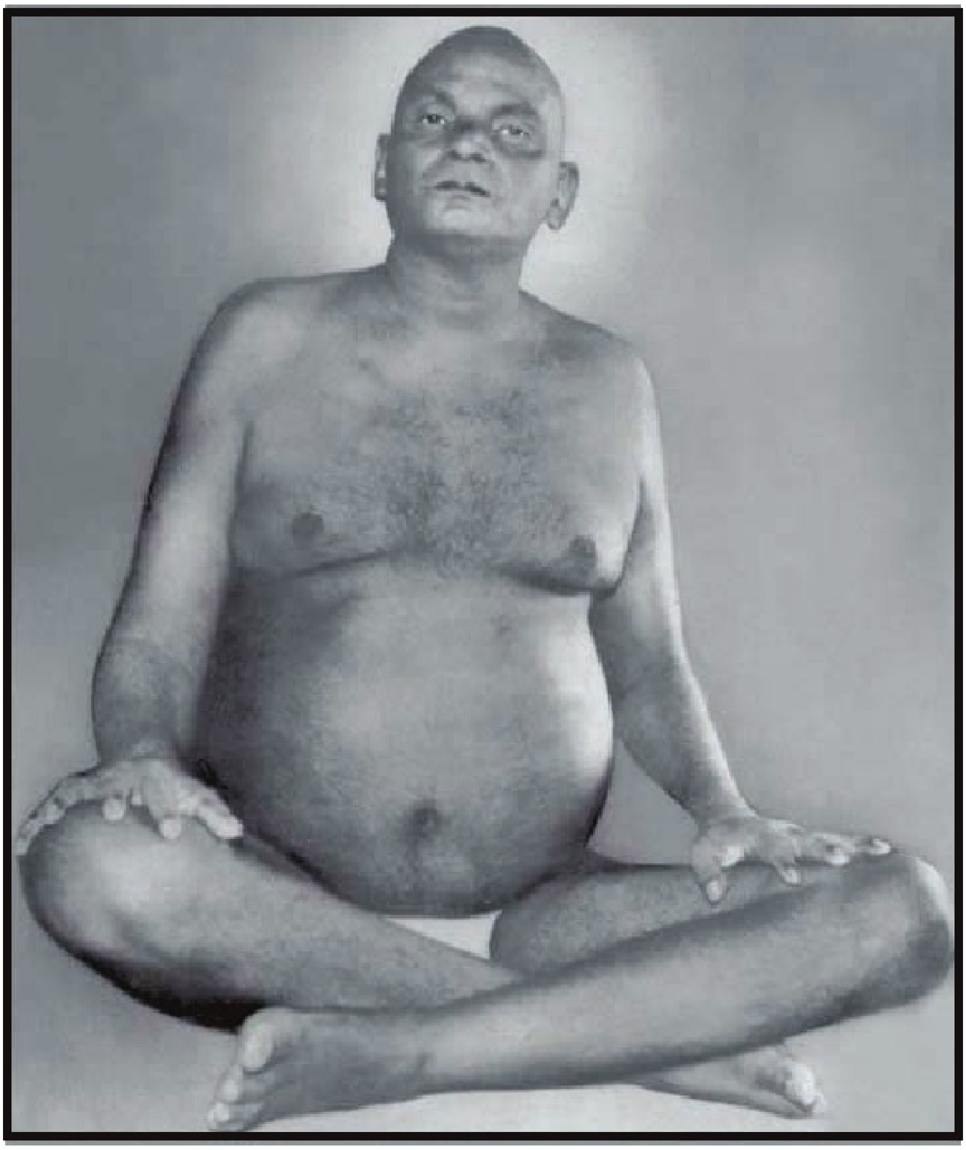

ॐ नमो भगवते नित्यानंदाय

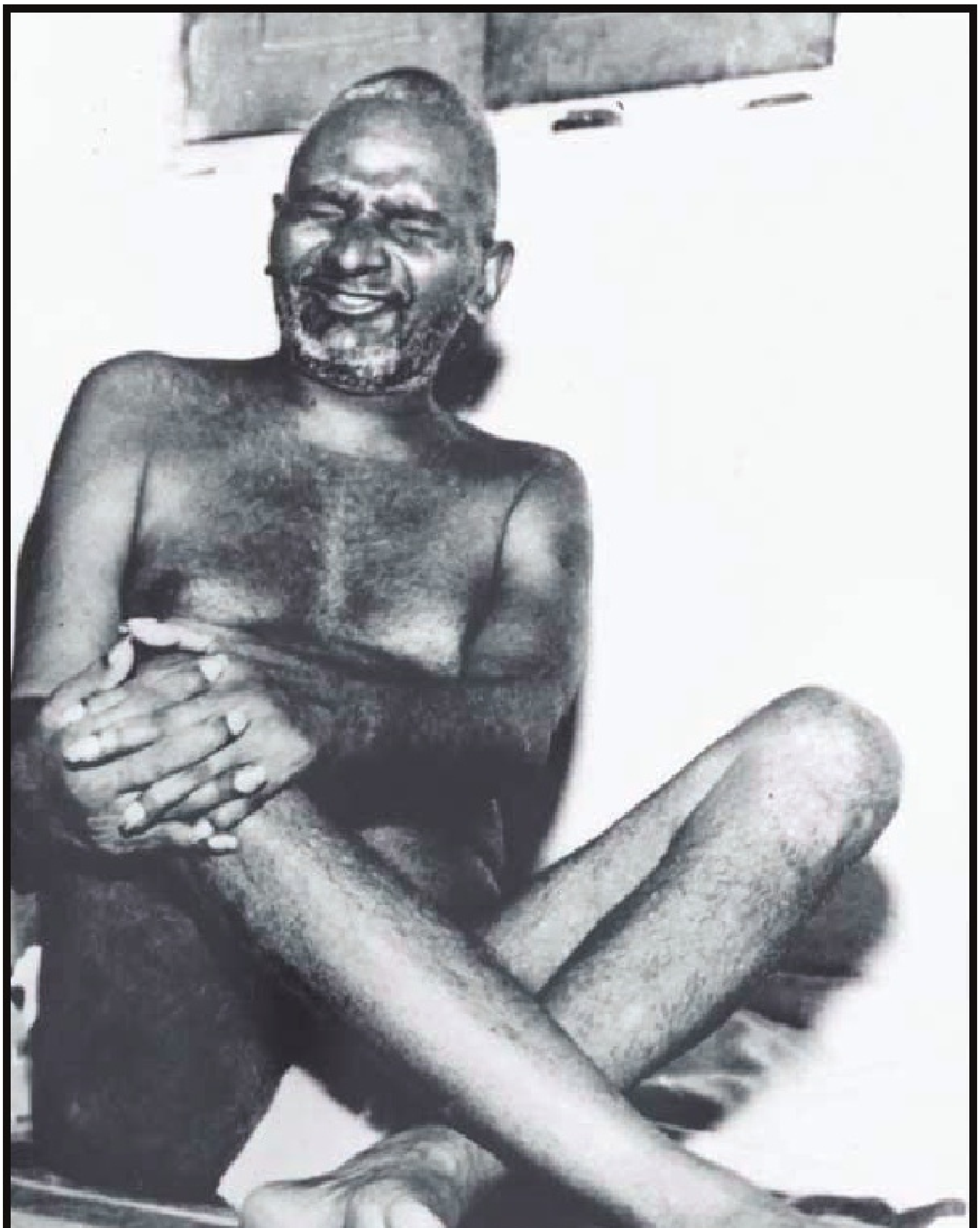

ॐ नमो भगवते नित्यानंदाय

ततीय विभाग

८

259. पवित्र एकाक्षर “ओम्” आकाश में रहनेवाले तुफान की तरह है। ओम का आरंभ नहीं है और अंत नहीं है। ‘ओमकार’ नाटक के ‘मंच प्रबंधक’ जैसा है। वह मनुष्य के शरीर से काम करता है। वह शरीर की जिसमे ओमकार व्याप्त है। यह एकाक्षर हमारे अंदर, हमारे बाहर और सर्वत्र है। वह जगत में जो भी अस्तित्व रखता है उसकी वजह है। हमे उसे कहीं सचेत करने की जरुरत नहीं होती। यह नाद सब में प्रवर्तमान है। हमे स्मृति में अलग तौर पर रखने की आवश्यकता नही रहती। यह शक्ति विभाज्य नही लेकिन अविभाज्य है। यह नाद सर्व प्राणीओं मे होता है। प्राणीओ के द्वारा पैदा होनेवाले कीसी भी तरह की आवाझो में ‘ओमकार’ होता है, जीसे प्रणव कहा जाता है जो और कुछ नही लेकिन ‘ओमकार’ का दूसरा नाम है। जब उसे प्राण के साथ एक किया जाता है और वह शरीर में प्रवर्तमान हो तब उसे प्रणव कहा जाता है, जब प्रकृति और सूक्ष्म (अर्थात भौतिक और आदि भौतिक) (स्थूल और सूक्ष्म) अलग हो तब वह ‘प्रणव’ है लेकिन हम जब दोनो को एक तरह से अनुभव करते है तब ‘एकत्व’ की संवेदना कहते है। यह ‘ओमकार’ समान है। ईस वक्त व्यक्ति ‘एक’ का सर्वत्र दर्शन करता है, जीसे हम श्रद्धा से भजते है वह ‘समस्त’ बन जाता है।

स्पष्टीकरणः ‘ओम’ आकाश में रहनेवाले तुफान जैसा है। ‘ओम’ सारे आकाश में व्याप्त है। ‘ओम’ का आरंभ नहीं है और अंत भी नही है। ‘ओम’ शाश्वत है। ‘ओम’ नाटक के मंच प्रबंधक जैसा है। ओम सृष्टि की वजह है लेकिन फिर भी सृष्टि से परे है। ‘ओम’ सृष्टि से बंधा नहीं है। ओम मनुष्य शरीर के माध्यम से काम करता है – शरीर जीसमें ओम व्याप्त है। ओम

हमारे अंदर है, हमारे बाहर है और हमारे आसपास सर्वत्र व्याप्त है। ओम जगत में जो भी अस्तित्व रखता है उसकी वजह है। 'ओम' को हरदम याद रखने की आवश्यकता नहीं है। जब योग के नवअभ्यासु अध्यात्म के कोई स्तर पर पहुंचता है तब ओम स्वयं खुद उसकी स्मृति में आ जाता है। 'ओम' सर्वत्र व्याप्त है, सर्व में व्याप्त है। ओम का विभाजन नही हो सकता। वह अविभाज्य है। 'ओम' का हरएक प्राणी में अस्तित्व है। प्राणी कीसी भी तरह की आवाझ निकाले तो वह और कुछ नही लेकिन ओमकार है, जीसे 'प्रणव' कहा जाता है वह और कुछ नही 'ओमकार' है। 'ओम' को जब प्रकृति के साथ एकाकार किया जाता है तब और जब वह सारे शरीर में व्याप्त हो तब उसे प्रणव कहा जाता है। जब प्रकृति और सूक्ष्म को 'अलग' तौर पर माना जाये तो तब उसे पर्णव कहा जाता है, जब स्थूल और सूक्ष्म को एक तौर पर अनुभव करे तब 'एकत्व' की अनुभूति कहा जाता है। ईसे ओमकार कहते है। जब 'एकत्व' का भाव मनुष्य प्राप्त करता है तब वह सर्वत्र 'एक' के दर्शन करते है। ऐसे मनुष्य को जगत में सर्वत्र में ईश्वर दिखाई देते है। ब्रह्मांड में भी ईश्वर व्याप्त है, जीसकी श्रद्धा से भक्ति करते हौ वह आपका 'सर्व' बन जाता है।

260. वह शक्ति की जीसे 'ओमकार' कहा जाता है और वह समग्र ब्रह्मांड में व्याप्त है और जो आकारहीन है वह सर्व में प्रकाश है और सर्व का प्रकाश है। अज्ञानता और ज्ञान सिर्फ अभ्यास अर्थात वास्तविक्ता नहीं है। सुख और दुःख ऐसे मनुष्य को कभी स्पर्श नही करते जीन लोगोने 'एक्ता' की भावना का अनुभव किया है।

स्पष्टीकरणः 'ओम' सारे ब्रह्मांड में व्याप्त है। वह आकाररहित है। ओम सभी में शामिल प्रकाश है और सभी का प्रकाश है। अज्ञान और ज्ञान

सिरअफ अेहसास है वह वास्तविक्ता नही है। मनुष्य जब पूर्णत्व को प्राप्त करता है तब दोनो (ज्ञान और अज्ञान) उसे समान लगते है। ऐसा मनुष्य जगत के गुणो से परे हो जाता है। दुःख और सुख ऐसे मनुष्य को कभी स्पर्श नही करते, जीसने परमात्मा का परमसुख प्राप्त किया है।

261. हमारे 'मन' में कुछ हो तो हमे सभी की जरुरत रहती है। हम अगर मन को मार देते है तो हमे कीसी भी चीज की जरुरत नही रहती। हमारे 'मन' में कुछ हो तो ईश्वर हमारे लिए अलग रहते है लेकिन मन और बुद्धि को एक कर दे तो ईश्वर हमसे अलग नही रहता। सब 'एक' ही दिखता है लेकिन ईच्छाएं हो तो अलग ईश्वर जरूरी बनता है क्योंकी ईश्वर की सहाय और कृपा ईच्छआ परिपूर्ण करने के लिए जरुरी बनती है। ऐसी स्थिति में मन ईन्द्रीय तृप्ति की विविध चीजों के पीछे दोडता है और विविध बातो में आशंकाएं खडी करता है। ऐसी स्थिति में एक 'मूर्ति' की आवश्यकता रहती है, वजह और परिणाम दोनो अलग कक्षा में हो जाते है। चित्रपूजा या मूर्तिपूजा 'माया' या अज्ञान की वजह से है।

स्पष्टीकरणः मन और ईच्छाएं सभी की मूल वजह है। जब दोनो का नाश किया जाता है तब सब एक बन जाता है। ऐसी स्थिति में 'अलग' ईश्वर की जरुरत नही रहती। चित्रो या 'मूर्ति' हमारी ईच्छाएं संतुषअट करने के लिए जरूरी है लेकिन अगर ईच्छाओं का नाश हो जाए तो सभी आशंकाएं दूर हो जाती है। वजह और परिणाम अलग होने की वजह कम है। मनुष्य जब माया से परे हो तब वजह और परिणाम दोनो एकसमान दिखाई देंगे। ऐसी स्थिति में सब 'एक' हो जाता है, जीसका कोई पर्याय नही है।

262. 'आकाश' जीसे कहा जाता है वह ऊपर की दिशा में है, जीसे पुरुष कहा जाता है वह 'सूक्ष्म' स्थिति है, जीसे 'नारी' कहा जाता है वह प्रकृति है।

स्पष्टीकरणः उपर जो 'आकाश' शब्द का उल्लेख है वह 'चिदाकाश' के संदर्भ में है। वह मनुष्य के मस्तिष्क में है। चेतना का आकाश मनुष्य के मस्तिष्क में उपर की दिशा में है। जब मनुष्य सूक्ष्म स्थिति में प्रवेश करता है तब ऱ्थात समाधि में हो तब उसे 'नर' पुरुष कहा जाता है लेकिन जब मनुष्य स्थूल में रत होता है तब 'स्त्री' कहा जाता है। वह मनुष्य के दीमाग की आंतरिक स्थिति है। वह मनुष्य को पुरुष या स्त्री बनाती है। बाहरी स्वरुप को मनुष्य की आंतरिक स्थिति के साथ कुछ लेनादेना नहीं है।

263. मनुष्य जीसे ईच्छा नहीं है उसे स्वतंत्र ईश्वर की जरुरत नहीं है। उन लोगो को कुछ भी प्रयास करने की आवश्यक्ता नही है। जब मन ईन्द्रियो के पदार्थो के पीछे दौडता है तब एक केन्द्री करने के लिए अभ्यास जरूरी है। मनुष्य को सांस चल रही हो तब तक बुद्धि पर ध्यान केन्द्रीत करना चाहिए। जीतने समय में सांस-नाडी धबकती रहे तब उतना समय ध्यान केन्द्रीत करना चाहिए। मनुष्य पानी में बह न जाए उसके लिए तैरना सिख लेना चाहिए। माया को महामाया से जीतना चाहिए। माया क्या है? जब मन ईन्द्रियों के विषयो के पीछे दौडता है तब विविध प्रकार की ईच्छाएं उत्पन्न होती है। हकीकत में हम नारियल के वृक्ष को चीपकते है।

नारियल का वृक्ष हमे चीपकता नहीं है उसी तरह माया को हाथ-पग नहीं होते की वह हमे पकड कर रखे?

स्पष्टीकरणः जो मनुष्य को ईच्छाएं नही होती उसे अलग ईश्वर की जरुरत नहीं है। उन लोगो को कुछ सिद्ध करने के लिए प्रयास नहीं करना है। अभ्यास तब तक जरूरी है जब तक मन ईन्द्रियो के विषय के पीछे दौडता है। मन को एकाग्र करने के लिए अभ्यास आवश्यक है। जब तक शरीर में सांसे चल रही हो तब तक मनुष्य को बुद्धि पर ध्यान केन्द्रीत करना चाहीए। मन को ईन्द्रियो से अलग करना चाहिए। हम जो भी कर्म करें तो मन उसमें आसक्त रहना चाहिए। मनुष्य जब पानी में हो तब बह न जाए उसके लिए तैरना सिख लेना चाहिए उसी तरह सांसारिक बातो में रहनेवाले मनुष्य को मानसिक तौर पर दुन्यवी बातो से अलग कैसे रहना है वह सिखना चाहिए। ऐसा होगा तभी मनुष्य जगत के द्वैत में से मुक्त हो सकता है और अनासक्त रह सकता है और तभी माया से पर हो सकता है। माया को महामाया से जीतना चाहिए। ईसका क्या मतलब है? ईस जगत में माया के दो प्रकार है-एक माया जो जगत में है वह जगत के द्वैत को अधीन है। दूसरी माया ईस द्वैतभाव से अलग है। महामाया वह परब्रह्म के साथ की एकात्मक्ता है और ज्ञान स्वरूपिणी है। महामाया की मदद से मनुष्य को जगत की माया को जीतना है। महामाया वह ज्ञान का प्रकाश है और माया वह और कुछ नहीं है लेकिन सांसारिक जीवन की आसक्ति है ईसलिए बर्हम को पहचान कर मनुष्य को जगत को भूल जाना चाहिए और माया से अगल होना चाहिए। जब मनुष्य नारियल के पैड को चीपकता है तब मनुष्य नारियल के पैड को चीपकता है, पैड मनुष्य को नही चीपकता। उसी तरह मनुष्य माया के साथ चीपकता है। माया मनुष्य के साथ

चीपकती नही है। मनुष्य मन है वह सांसारिक बातो के पीछे दौडता रहता है। ईसलिए मनुष्य माया के अधीन रहता है। अगर मन जगत की कीसी चीज में आसक्त न हो तो जगत के दुःख और आनंद मनुष्य को कुचल नही सकते। माया के पास मनुष्य को पकडने के लिए हाथ-पग नही है।

264. उदेशहीनता का सिर्फ सूक्ष्म के स्तर पर अनुभव प्राप्त होता है।

विवेक अर्थात मन और बुद्धि का एक होना। समाधि मतलब एक का दर्शन समष्टि (सभी) में करना। अभ्यास से मनुष्य को शीरर में अपने आत्मा के छः दुश्मनो को जीतने चाहिए अर्थात ईच्छा, क्रोध, काम, मोह, मत्सर, लोभ. साधक मतलब ईश्वर साक्षात्कार के मार्ग पर आगे बढने के लिए ईच्छुक अभ्यासु को दूसरो के लिए बूरा नहीं बोलना चाहिए। अगर वह ऐसा करता है तो उसकी प्रगति अवरुद्ध होती है अर्थात जीस तरह अंकुर पर भारी पत्थर रख दिया जाये उस तरह। साधक को खुद का अभ्यास एक घटिका (24 मिनिट) के लिए भी नही छोडना चाहिए। मन निरंतर अभ्यास में रत रहना होना चाहिए।

स्पष्टीकरणः निर्विकल्प की स्थिति (उद्देशहीनता) का अनुभव सिर्फ सूक्ष्म के स्तर पर होता है – लेकिन स्थूल के स्तर पर नही होता। विवेकबुद्धि अर्थआत मन और बुद्धि का एकाकार हो जाना। समाधि अर्थात एक को सर्वत्र देखना। मनुष्य को अभ्यास से ईच्छआ, क्रोध, मत्सर, काम, लोभ, मोह जैसे शरीर में रहनेवाले षडरिपुओ (छः दूश्मनो) को जीतना चाहिए। योग के अभ्यासु को दूसरो की निंदा नहीं करनी चाहिए। वह अगर ऐसा करता है तो नवपल्लवित अंकुर पर पत्थर गिरने से जैसे उनका विकास अवरुद्ध होता है उसी तरह अभ्यास का विकास अवरुद्ध होता है।

अभ्यासु को अपनी एक पल के लिए अभ्यास में ढीलापन नही रखना चाहिए। मन हरदम अभ्यास में रुका हुआ रहना चाहिए।

265. बहुत ही श्रद्धा से प्राण को ऊर्ध्व दिशा में स्थिर करना चाहिए। वही मुक्ति का मार्ग है। यह शरीर आत्मा की गुफा है और ईस गुफा में शाश्वत आत्मा रहती है। योग मतलब एक होना। जब दो मिटकर एक हो तब योग कहा जाता है। मन और बुद्धि जब एक हो तब योग कहा जाता है। जब जीव बुद्धिमार्ग से आगे बढकर ब्रह्मरंध्र में प्रवेश करते है तब उसे योग कहते है। भक्ति, तर्कबुद्धि और शक्ति तीनो जब एक हो तब ओमकार बनता है। जीस तरह कर्पूर अग्नि में भस्म हो जाये तो उसी तरह मन और बुद्धि एक हो जाती है। बच्चों को झुले में झुलाकर सुला दिया जाता है उसी तरह चित्तने बुद्धि में रखकर 'मैं' क्या है उसका खयाल आता है।

स्पष्टीकरणः प्राण हरदम श्रद्धापूर्वक ऊपर की दिशा में स्थिर करने चाहिए और हरदम शाश्वत ब्रह्म का चिंतन करते रहना चाहिए। ईस बंधन में से मुक्ति का मार्ग है। यह शरीर एक गुफा है, जीसमें आत्मा रहती है। शरीर नाशवंत है। आत्मा अविनाशी है। जब मृत्यु का क्रूर पंजा पडता है तो शरीर नष्ट हो जाता है। आत्मा नये सिरे से नया शरीर प्राप्त करता है। योग अर्थात एक होना। जब दो मिटकर एक हो जाये तब उसे योग कहते है। जब जीव बुद्धि के मार्ग पर आगे बढती है और ब्रह्मरंध्र (दीमाग में रहनेवाला खालीपन) में प्रवेश करता है। उसे भी योग कहा जाता है। योग अर्थात स्थूल और सूक्ष्म का एक होना, द्रश्य और अद्रश्य का एक होना, नाशवंत और अविनाशी का एक होना। भक्ति, तर्कबुद्धि और शक्ति एक हो तब उसे ओमकार कहा जाता है। ओमकार जब सिद्ध हो तब अहं ओमकार में एकाकार हो जाता है। कर्पूर जिस तरह अग्नि में भस्म हो जाता है उसी

तरह अहं ओमकार में मिल जाता है। जब बुद्धि और दीमाग एक हो जाए तो अहं भूतकाल की बात बन जाती है। मनुष्य को 'मैं' क्या है वह समजना चाहिए और उसके लिए बुद्धि को चित्त में अंकुशित करना चाहिए। छोटे बच्चो को झुले में सुला दिया जाता है वैसे मन को भी समाधि में सुला देना चाहिए और उसके लिए मन को वासानाओं से मुक्त करना चाहिए।

266. हे मन! आनंद के घर में प्रवेश करो! जब सारे प्रदेश में पानी भर गया हो तब प्रदेश के कूएं-तालाब को अलग नहीं कर सकते। जहां अंधकार हो वहां प्रकाश की उपस्थिति मान लेनी चाहिए! जब मीठा खाते है तो कडवी चीजो की तैयारी रखनी चाहिए। जीव का स्थान क्या है! अगर जीव को मालूम हो के आत्मा को शरीर नहीं है। ऐसी आत्माओं को अपनी गौरवान्वित स्थिति प्राप्त होती है। मैं और मेरा द्रश्य चक्षुओ से दिखाई नहीं देता। मैं और मेरा नासिका के अग्रभाग से आगे नही है। उसके उपर जो भी है उसे अंत और आरंभ नही है। आत्मा भौतिक आंख से दिखता नही है ईसलिए आत्मा का आरंभ और अंत नही होता। आत्मा की शक्ति कम करना संभव नही है, क्योंकी आत्मा अचल है। जीस तरह अंतरिक्ष हर जगह पर एकसमान होता है वैसे आत्मा भी सार्वत्रिक रुप से समान होता है। मनुष्य का मस्तिष्क सहस्त्र सूर्य के प्रकाश का घर है। आंख बडी या सूर्य? अगर आंख खराब हो तो सूर्य को देखना संभव हो सकता है? ईसलिए आंख महत्वपूर्ण है। सुवर्णमूर्तिओ का आकार मन का सृजन है। जब मनुष्य की तसवीर ली जाती है तब तसवीर बैठे हुए व्यक्ति के अनुसार होती है। तसवीरकार के गुणअवगुण चित्र में दिखते नहीं है।

स्पष्टीकरणः हे मन! शाश्वत आनंद का अनुभव करें! जब सारे प्रदेश में बाढ की स्थिति हो तब हम उस प्रदेश के कूएं-तालाबो को अलग नही कर सकते उसी तरह ईश्वर सारे ब्रह्मांड में व्याप्त हो तो हम उसे निश्चित स्थान में ढूंढ नही सकता। आत्मा यहां है। वहां है और सर्वत्र है मतलब उसे कोई चीज नही मान सकते। वह सभी में है और वही सब कुछ है। अंधकार है ईसलिए प्रकाश है ऐसा अभिप्रेत है। हम जब मीठा खाते है तो कडवी चीजो को खाने की तैयारी भी रखनी चाहिए। उसी तरह जगत नाशवंत और मर्यादित है ईसलिए परमात्मा के अस्तित्व – परमात्मा जो की मर्यादारहित-अविनाशी है उसकी उपस्थिति स्वीकार करनी पडेगी। जगत में सर्वत्र दुःख है। ईसलिए हमे यह चीज समजनी है की एक ऐसा अस्तित्व है जो की परम आनंद देता है। अंध व्यक्ति को सहायक की जीस तरह जरुरत होती है उसी तरह सुख को दुःख की जरुरत रहती है। वे आत्माएं जो अपनी भव्य स्थिति में है जो आत्मा और शरीर अलग बात है। मैं और मेरा ईन्द्रियो को द्रश्यमान नही होते, अहं का पूर्णरुप से नाश कुंडलिनी नासिका के अग्रभाग से आगे बढे तब एक हो जाते है। ईससे उपर है उनका आरंभ और अंत भी नही है। वह एक अविभाज्य है, जो चीजे द्रश्य है वह नाशवंत है। जो अद्रश्य चीजे है वे अविनाशी है। आत्मा भौतिक चक्षुओ को दिखता नही है और आत्मा आदि अंत बिना का है। आत्मा की शक्ति कम करनी संभव नही है क्योंकी आत्मा अविचल है। जीस तरह अवकाश हर जगह पर समान होता है उसी तरह आत्मा भी हर जगह पर एकसमान होता है। मनुष्य का मस्तिष्क सहस्त्र सूर्य के प्रकाश का घर है ईसलिए परम ज्ञान का स्थान है। आंख बडी या सूर्य? हम सूर्य को अच्छी आंखो से देख सकते है। खराब आंखो से नही देख सकते। ऐसे, आंखो का महत्व सूर्य

से भी ज्यादा बढ जाता है। ईसी तरह आत्मा के बिना ईश्वर का साक्षात्कार नही होता और ईसलिए जो आत्मा अति महत्वपूर्ण है। सुवर्ण की मूर्तियों की छवीं एक मन का सृजन है। ईश्वर आकाररहित है। ईश्वर उसके भक्त जैसा चाहे ऐसा स्वरुप प्राप्त करते है। मनुष्य की परछाई ली जाए तो वह परछाई बैठे हुए व्यक्ति की तरह होता है। उसी तरह भक्ति के फल हमें जैसी श्रद्धा होती है ऐसा मिलता है उससे ईश्वर की कृपा या ईश्वर की सर्वज्ञता दिखा नही सकते। हम जैसा बोते है वैसा पाते है।

267. मनुष्य की आंतरिक श्रद्धा अनुसार फल मिलता है। अच्छा-बूरा आत्मा की वजह से नहीं है। आत्मा चीज के प्रतिबिंब जैसी है, जो मनुष्य का मन जीस तरह से चाहे उसी तरह का आकार लेती है। जीव पींजरे में रहनेवाले पक्षी जैसा है। घोंसला खराब हो तो पक्षी प्रभावित नही होता। पक्षी घोंसला छोडकर चला जाता है। पक्षी नया घोंसला बनाकर उसमें छः महिने में, एक साल में पांच मिनट में प्रवेश करता है। ईस बात में गति का आधार पक्षी के प्रयास कैसे है उसके उपर रहते है। ईस स्थान से रेलवे स्टेशन जाना हो तो एक घटिका अर्थात 24 मिनट भी लगते है और एक महिना भी लग सकता है।

स्पष्टीकरणः मनुष्य को परिणाम उसके प्रयासो के अनुसार मिलता है। ईश्वर पुर्णरुप से तटस्थ है। ईश्वर कीसी का पक्ष नही लेते या त्याग नही करते। हमे हमारी श्रद्धा जीतने ही फल मिलते है। शुभ और अशुभ के लिए आत्मा वजह नहीं है। आत्मा दोनो से विभक्त है। आत्मा द्रष्टा है, कर्ता नही है। आत्मा का स्वरुप नही है और गुण भी नहीं है। आत्मा एक चीज के प्रतिबिंब की तरह मनुष्य के मन जैसा है, वह चाहे ऐसा स्वरुप प्राप्त कर सकता है। जीव पींजरे में कैद पक्षी जैसा है। मनुष्य का शरीर पींजर

है। जीस तरह घोंसला खराब हो जाए तो पक्षी नया घोंसला एक दिन में, एक महिने में या थोडे दिनो में बना लेता है लेकिन पक्षी घोंसला खराब होने से प्रभावित नही होता। नया घोंसला बनाने में पक्षी के प्रयास कैसे है उसके ऊपर सब निर्भर रहता है। ईसी तरह आत्मा जब शरीर छोडे तब नया शरीर प्राप्त करती है। कब और कहां वह वही जानती है। मनुष्य परमसुख की प्राप्ति थोडी मिनट या महिने में करता है। अलबत, उसका आधार उसके प्रयास पर निर्भर है। ईस स्थान से रेलवे स्टेशन जाने में मनुष्य को एक घटिका भी लग सकती है और एक मास लेकिन आनेवाले के प्रयास कैसे है उसके ऊपर सब निर्भर करता है।

268. साधना बैराग के लिए और बैराग में स्थिर होने के लिए जरूरी है। वैराग्य द्रढ करने के लिए हमे साधना करनी चाहिए। बैराग को शरीर के साथ संबंध नही है। मन जब आंतरबाहरी बातों में अचल हो-सर्व कारण ओर परिणाम में अचल होते है तब आत्मा का दर्शन हो सकता है। जब ज्ञान और विज्ञान का विचार अद्रश्य हो जाए तब व्यक्ति आत्मा का दर्शन कर सकते है। जब व्यक्ति को मालुम नही है लेकिन उसे पता है की वह भी उस व्यक्ति को मालूम नही हो तब आत्मा के दर्शन होते है। आत्मा का साक्षात्कार करनेवाला व्यक्ति अंध व्यक्ति जैसा होता है। वे बहेरे लोगो की तरह होते है। यह अलग बात है की वे सुन सकते है। जब ईन्द्रीया कार्यरत हो तब आत्मा के साथ उसका जुडना नही होता। ईसलिए ईन्द्रीयों के कार्य उसके लिए अकर्म है। उसके अंदर सृजन का विचार नही होता लेकिन नास्तिक ज्यादा होता है। उनकी भूल जाने की शक्ति ज्यादा होने की वजह से अर्थात त्याग करने की शक्ति ज्यादा होने की वजह से उनके कर्म अकर्म जैसे होते है। उनका ध्यान नारियल की खाल की ओर नही लेकिन

कोपरे पर रहता है (अर्थात आत्मा पर रहता है, शरीर पर नहीं) वे पाप और गुणो से परे होते है। वे पानी में रहनेवाली नांव जैसे होते है। जीस तरह पानी और नांव दोनो अलग होते है उसी तरह वे स्थूल और सूक्ष्म दोनो को अलग समजते है। वे शरीर के कार्य की ओर सचेत होते है लेकिन उनका ध्यान सिर्फ ज्ञान पर केन्द्रीत होता है। वे गन्ने का रसपान करके उसके कूडे को फेंक देते है। गन्ने के रस में से एकबार चीनी बनने के बाद फिर से उसमें से गन्ना नहीं बनता उसी तरह साधना से आत्मा का साक्षात्कार करने के बाद शरीरभाव कभी वापिस नही आता। पुराना बरतन जरूरी मरम्मत के बाद नये बरतन की तरह प्रकाशित होता है उसी तरह बुद्धि, वासनाएं नष्ट होने के बाद सत्यगुण में परिवर्तित की जा सकती है और तभी आत्मसंतोष प्राप्त होगा। उनका ध्यान सांसारिक जीवन की बातो पर नही होता लेकिन शाश्वत परमानंद पर होता है, नाशवंत सांसारिक आनंद पर नहीं। ऐसे लोग पाप और गुणो से परे होते है। ऐसे लोग शरीर के अस्तित्व से अज्ञात होते है और सांसारिक जीवन के कायदे उनको लागु नही होते। वे पानी मे रहनेवाली नांव जैसे होते है। वे दुनिया में रहकर दुनिया के न्यायिक आनंद प्राप्त करते है। उन्हें उनसे लगाव नही होता। जीस तरह नांव और पानी दोनो अलग होते है उसी तरह आत्मा को शरीर से वे पूर्णरुप से अलग समजते है। वे उनके दैहिक कार्य की ओर उदासीन होते है। वे ईश्वर के परमसुख का आनंद प्राप्त करते है और सांसारिक जीवन के नाशवंत आनंद का त्याग करते है। वे गन्ने का सिर्फ रस पीते है और कूडे को फेंक देते है अर्थात दिव्य अमृत को पीते है और सांसारिक जीवन के कूडे को फेंक देते है। एकबार मनुष्य आत्मा का साक्षात्कार करता है बाद में वह शरीर है ऐसा विचार वापिस नही आता। पुराना बरतन जरूरी

मरम्मत के बाद फिर से नये की तरह चमकता है उसी तरह बुद्धि जब वासनाएं नष्ट हो जाए बाद में शुद्ध सत्व गुण में परिवर्तित होती है। बुद्धि को उसमें सत्य स्वरुप से वंचित रखी जाती है। क्योंकी बुद्धि वासना में डूबी हुई है। जब बुद्धि पर की वासना की कालिख दूर की जाये तब वह अपने मूल गुणो को फिर से प्राप्त करती है तभी व्यक्ति को पूर्ण आत्मसंतोष प्राप्त होता है।

स्पष्टीकरणः बैराग को स्थिर और द्रढ करने के लिए साधना जरूरी है। हरदम साधना से हम निरंतर बैराग कायम रख सकते है। बैराग क्या है? वैराग्य शरीर का विषय नहीं है। हम शरीर पर राख लगाए तो उसे बैराग नही कहा जाता। सच्चे बैरागी के लिए सांसारिक चीजो का पूर्णरूप से त्याग और पूर्णरूप से उसमे से अलग हो जाना ये दोनो बातें जरूरी है। जब मन

बाह्य और अंदरूनी वजहो और परिणामो से अविचल रहता है तब मनुष्य आत्मा का दर्शन कर सकता है। मनुष्य आत्मा का साक्षात्कार सिर्फ आंतरदर्शन से कर सकता है। व्यक्ति को सिर्फ सांसारिक बातो पर से ध्यान कम करना चाहिए। आत्मा के साक्षात्कार के लिए व्यक्ति को ज्ञान-विज्ञान दोनो भूल जाने चाहिए। जब व्यक्ति जानता हो तो ही व्यक्ति आत्मा का दर्शन कर सकता है। साक्षात्कार के उच्चस्तर पर पहंचे साधक अंध मनुष्य जैसे होते है। भले ही आंख होती है, बहेरे को कान भी होता है। सुनने के लिए कान होते है। उन्हें सुनने और देखने के लिए अंग तो होते है लेकीन वे अंग काम नहीं करते। सब व्यवहारिक द्रष्टि से वे सांसारिक चीजो के लिए वे मृत है। उनका ध्यान सिर्फ एक स्थिर जीव पर केन्द्रित करना चाहिए। ऐसे साधु खुद क्या कर रहे है उससे अज्ञात होते है। जब उनकी ईन्द्रिया काम करती है तब वे ईन्द्रियो से अस्पृश्य रहते है। उनके

कार्य वास्तव में उनके लिए निष्कर्म होते है। उनमें सृजन-सृष्टि के विचार कम और नास्तिक्ता ज्यादा होती है। उनमें भूल जाने की शक्ति ज्यादा होती है। उनका ध्यान नारियल की खाल पर नही होता लेकीन नारियल के गर्भ में होता है। वे अपना ध्यान अद्रश्य पर केन्द्रित करते है लेकीन द्रश्य पर केन्द्रीत नही करते।

269. बुद्धि की शुद्धता के बीना आत्मसंतोष नही मिलता। बुद्धि शुद्ध न हो तो चित्त स्थिर नही होता। चित्त शुद्ध न हो तो मनुष्य भ्रमणाओ से मुक्त नही हो सकता। बर्फ को पानी में रखी जाये तो दोनो एक हो जाते है उसी तरह आत्मा का साक्षात्कार सिद्ध करनेवाला व्यक्ति आत्मा में एकरूप हो जाता है। जीस तरह नदीयां समुद्र में मिल जाती है उसी तरह आत्मा में वासनाएं मिल जाती है। आत्मा कोई वस्तु नही है, कर्म एक वस्तु है। जहाज सागर में होता है। तट पर खडे जहाज को देखनेवाले व्यक्ति को लगता है की जहाज सागर के पानी को छूता है लेकीन वास्तव में जहाज सागर के जल से अलग होता है। दोनो के बीच कोई संबंध नही होता। ईसी तरह मनुष्य को सांसारिक बातो में भी खयाल रखना है। उसे सांसारिक चीजो में लगाव नहीं होना चाहिए। जीस तरह ब्राह्मिनो खाना परोसा जाये उसकी राह देखते है उसी तरह मनुष्य को मन की शुद्धि और बंधनो में से मुक्ति के लिए राह देखनी चाहिए।

स्पष्टीकरणः बुद्धि शुद्ध हो जानी चाहिए जीससे की हमें आत्मसंतोष प्राप्त हो सके। बुद्धि शुद्ध न हो तो चित्त स्थिर नही होता और मनुष्य शाब्दिक भ्रमणा में से मुकत नही हो सकता। मनुष्य को पूर्णरूप से मौन सिद्ध करने के लिए चित्त का शुद्धिककरण आवश्यक है। आत्मा का साक्षात्कार सिद्ध करनेवाले योगी आत्मा मे बर्फ पानी में पिघलती है उसी

तरह पिघल जाते है और उसी की तरह एक हो जाते है। सब नदीयां सागर में मिलती उसी तरह सभी वासनाएं आत्मा में एकाकार हो जाती है। वासनाए आत्मा से पैदा होती है और आत्मा में प्रवेश करती है। आत्मा वह वस्तु नही है। कर्म वस्तु है। आत्मा अद्रश्य है, कर्म अद्रश्य नही है। मनुष्य को सांसारिक जीवन का लगाव नही होना चाहिए। जहाज को तट पर से देखनेवाले व्यक्ति को जहाज सागर के पानी को छूता है ऐसा लगता है लेकीन वास्तव में वह जहाज पानी को छूता नही है। उसी तरह की जीस तरह जहाज पानी में रहने पर भी अलिप्त रहता है उसीतरह मनुष्य को जगत में रहने पर भी जगत से अलिप्त रहना चाहिए। ब्राह्मिनो खाना परोसे जाने की राह देखते है उसी तरह मनुष्य को मन के शुद्धिकरण और बंधनो से मुक्ति की राह देखनी चाहिए। हम अध्यात्म के उच्चत्तम स्तर को सिद्ध करने के लिए ईमानदारी और निष्ठा से प्रयास न करें तो हम ईच्छित लक्ष्य की प्राप्ति नही कर सकते। ईश्वर सामने से आकर उनके परम सुख का आनंद देते नहीं है। हमे स्वयं उनको ढूंढने जाना पडता है और साक्षात्कार करना पडता है।

270. बिना फल का पैड कोई देखना नही चाहता। मनुष्य को मनुष्य क्यों कहा जाता है, क्योंकी उसके पास मन है मतलब की विचारशक्ति है। ईसलिए उसे मन कहा जाता है और शांति के साथ एकात्मक्ता प्राप्त करनी होती है और ओमकार के साथ एक होना चाहिए। जो मुक्ति चाहे उसे 'मैं शरीर हूं' ऐसा विचार त्याग देना चाहिए। ऐसे लोग ही आत्मा का साक्षात्कार सिद्ध कर सकते है। जो लोग 'मैं शरीर हूं' ऐसा भाव त्याग नही सकते उनके लिए आत्मा के दर्शन करना संभव नहीं है। जो लोग 'मैं और मेरे' विचारो के साथ जूडे रहते है वे अगर हजारो वर्षो तक अभ्यास करे तो

भी शांति का एक अंश भी प्राप्त नही कर सकते। नदी में स्नान करनेवाला ब्राह्मिन हो या शूद्र हौ लेकीन नदी में स्नान करने से उसका शरीर शुद्ध हो जाता है उसीतरह सब मनुष्य का आंतरिक स्तर एकसमान होता है। भले ही उसका बाह्य रंगरूप अलग हो। मिर्ची और कलींगर दोनो एक ही खेत में उगते है फिर भी दोनो का स्वभाव एकदुसरे से अलग होता है। अग्नि की गर्मी का अनुभव अग्नि के पास बैठे व्यक्ति ही प्राप्त कर सकता है लेकीन पानी में बैठा व्यक्ति नही। शांति ठंडे पानी में है। भूख लगने से पहले खाना बनाकर तैयार करना पडता है। उसी तरह गृहस्थ बनने से पहले गृहस्थ के आंतरिक और बाहरी स्वरुप एकदम शुद्ध होने चाहिए। उसे वजह और परिणाम दोनो में पर्क करना आना चाहिए।

स्पष्टीकरणः कीसी भी व्यक्ति बिना फल का पैड देखना अच्छा नही लगता उसी तरह ज्ञानविहीन मनुष्य को कोई सम्मान नही देता।. कोई व्यक्ति ऐसे लोगो पर ध्यान नही देता जो सांसारिक जीवन के आनंदो में मग्न हो। मनुष्य को मनुष्य ईसलिए कहा जाता है क्योंकी उसके पास मन अर्थात सोचने की शक्ति है। हमे हमारी विचारशक्ति का श्रेष्ठ उपयोग करना चाहिए, जीससे की हम शांति प्राप्त कर सके। हमे ओमकार के साथ एक होने का प्रयास करना चाहिए। जो मुक्ति चाहता है उसे अपना शरीरभाव छोड देना चाहिए। उसे सोचना चाहिए की वह आत्मा है। शरीरभाव का पूर्णरुप से नाश करना चाहिए। ऐसे लोग ही आत्मा के साक्षात्कार कर सकते है। जो लोग ऐसे सोचते है की मैं शरीर हूं उनके लिए आत्मा का दर्शन करना कठीन है। जो लोग 'मैं और मेरा' का भाव त्याग नही सकते वे हजारो वर्षो तक अभ्यास करे तो भी शांति का एक अंश प्राप्त नही कर सकते है। अगर मनुष्य नदी में स्नान करे तो उसका शरीर

शुद्ध हो जाता है भले ही वह मनुष्य ब्राह्मिन हो या शुद्र हो अगर मनुष्य साधना करता रहता है तो वह शूद्र हो, ब्राह्मिन हो या बच्चा हो लेकीन वह ईश्वरप्राप्ति के लिए प्रयास करके अध्यात्म के उच्चत्तम स्तर पर पहूंचता है। ईश्वर का साक्षात्कार वह कौनसी जातपात का है उससे बिलकुल स्वतंत्र होता है। उसका आधार वह कीतनी हद तक और कौनसे स्वरुप प्रभु को चाहता है उसके पर होता है। मनुष्य का बाहरी स्वरूप शायद अलग हो सकता है लेकीन अंदरूनी स्वरूप तो एकसमान ही होता है। आत्मा, बुद्धि, चित्त, मन और दूसरे गुण मनुष्यो में एकसमान होता है लेकीन ईन गुणो का बाहरी स्वरूप अलग हो सकता है। बाहरी फरिक की वजह ईन गुणो को वासना वासनामय होने की वजह से पैदा होता है। आत्मा, बुद्धि, मन और चित्त शुद्ध हो तो वे सब मनुष्य में एकसमान होते है। मिर्ची, खरबूजा एक ही भूमि पर पैदा होते है. फिर भी दोनो का स्वभाव परस्पर से अलग होते है उसी तरह गुरु के असंख्य शिष्यों हो लेकीन एक शिष्य दूसरे शिष्य से गुण और प्रकार से अलग होता है। चाहे सभी शिष्योमें गुणो का आरोपण एक ही गुरु करे तो भी उनके स्वभाव अलग होते है। ईसलिए ही एक शिष्य आध्यात्म के उच्च स्तर पर पहुंच जाते है जब दूसरा उससे बिलकुल उलटे प्रकार का होता है। ईस फर्क की वजह उनके अंदरुनी स्वभाव की वजह से होता है। अग्नि की गर्मी अग्नि के पास में बैठते है तब पता चलती है। महात्मा की महानता जो लोग महात्मा को प्रिय है और नजदिक हो उनके द्वारा ही अनुभव की जाती है। उनकी अनुभूति ऐसे लोगो को नहीं होती जो उनसे जुडे हुए नहीं है या तो विरुद्ध में है। शांति वह पानी जैसी शीतलता देती है। शांति से मन पानी की तरह शांत होता है। पानी जिस तरह गर्म चीजो को शीतल करता है उसी तरह शांति भी मन को ठंडा

करता है। मनुष्य को शरीर का त्याग करने से पहले ये जान लेना आवश्यक है की मै कोन हुं? हम शरीर से अस्वस्थ होते है तब आत्मा के साक्षात्कार के लिए प्रयास करना चाहिए। जब वृद्ध और निर्बल होते है तब कुछ नही हो सकता। हम गृहस्थ होते है उससे पहले गृहस्थ का फर्ज़ समजना चाहिए। अगर गृहस्थी का धर्म पता न हो तो वह मनुष्य सही मार्ग प्राप्त नही कर सकता। गृहस्थ का बाहरी और आंतरिक स्वरूप स्वच्छ होना चाहिए। वह वजह और परिणाम का फर्क मालूम कर सके ऐसा होना चाहिए। उसमे क्या सही है और गलत क्या है वह जानने का विवेक होना चाहिए। विवेकबुद्धि गृहस्थ में ज्यादा से ज्यादा और उच्चत्तम स्तर की होनी चाहिए।

271. मनुष्य अश्व के पीछे कीतने भी समय तक निरर्थक दोडता रहे, उसे घुडसवारी सकरने दो। ईसी तरह सांसारिक मनुष्य को अपने मन को ईन्द्रियो के विषय से मुक्त रखना चाहिए। जीस तरह पानी पैड के पत्तो पर से फिसल जाता है उसी तरह मनुष्य को "मै कर्ता हूं' उस भाव का त्याग करना चाहिए। गृहस्थ मंदिर में बलि के पशु समान होना चाहिए। सब कुछ ब्रह्म को अर्पण करना चाहिए फिर भी ऐसा नहीं कहा जा सकता की मनुष्य सब कुछ ब्रह्म को अर्पण करे तो वह ईश्वर से नजदिक है और अगर वह ऐसा न करे तो वह ईश्वर से दूर है। हम अगर हजारो लोगो के सामने रोशनी के लिए दीपक रखते है तो वह सब तक पहुंच जाता है। जहां रोशनी है वहां अंधकार नहीं है। उसे कोई भी ले सकता है। ईसलिए दोनो में से कोई एक ही हो सकता है मतलब या तो रोशनी होती है या तो अंधकार होता है। दोनो एक साथ नहीं हो सकते। हमारा स्वभाव सूर्य के समान होना चाहिए। हमारा मन (चित्त) चंद्र के समान शीतल होना चाहिए।

स्पष्टीकरणः मनुष्य अपनी ईन्द्रियो को संतुष्ट करने के लिए ज्यादा से ज्यादा प्रयास करेगा लेकीन उसे संतुष्टि देना असंभव है। ईन्द्रियो के विषयो के लिए ईच्छा उसे संतुष्टि देने के लिए बढती ही जाती है। ईसका एक ही ईलाज आत्मचिंतन करके ईन्द्रियो को अंकुशित करना है। ईन्द्रियो के पीछे दौडते रहना निरर्थक है। हम जीस तरह अश्व के पैरो को बांधकर उसके उपर सवार होते है उसी तरह ईन्द्रियो के उपर भी सवार हो जाना चाहिए। ताडी के पैड के पत्तो में से बनाये गये छाते पर से पानी फिसल जाता है उसी तरह मनुष्य को कर्ताभाव का त्याग करना चाहिए अर्थात “यह मैने किया” वह भाव त्याग देना चाहिए। मनुष्य को हमेशां सोचना चाहिए की करनेवाला कर्ता ईश्वर है। वह सिर्फ उनके हाथो का एक साधन ही है। एक गृहस्थ को मंदिर के बलि के लिए पशु समान बनना होगा। मंदिर को पेश किया गया पशु अपने अस्तित्व के लिए पूर्णरुप से ईश्वर पर ही निर्भर होता है, उसी तरह मनुष्य को अपने अस्तित्व के लिए ईश्वर पर आधार रखना चाहिए। सब कुछ ब्रह्म को अर्पण करना चाहिए साथ ही हमे ये भी याद रखना है की सब कुछ ब्रह्म को अर्पण न करनेवाला व्यक्ति ईश्वर से नजदिक होता है और सब कुछ ब्रह्म को अर्पण न करनेवाला व्यक्ति ईश्वर से दूर हो ऐसा नही होता है। कुछ लोग खुद के स्वभाव से ही खुद को और अपने प्रयासो के फल को ईस्वर को अर्पण करते है। हम यह नही कह सकते की ऐसे लोगोने आश्वर का साक्षात्कार किया हुआ है। ईश्वर एक सकारात्मक अस्तित्व है और उसके परमसुख का अनुभव स्वप्रयत्न से करना होता है। जो व्यक्ति ईश्वरप्राप्ति के लिए निष्ठा और उत्साह से प्रयास करते है वे अवश्य ईश्वरसाक्षात्कार कर सकते है। ईश्वर पूर्णरुप से तटस्थ है और मनुष्यो को उनके प्रयासो के अनुसार फल देता

है। ईश्वर एक ऐसा दीपक के समान है जो हजारो मनुष्यो के सामने रखे गये है। दीपक का प्रकाश सभी व्यक्तिओ को एकसमान रुप से मिलता है। वह कोई जात-पात का फर्क नही करता। कोई भी व्यक्ति रोशनी का फायदा उठा सकता है। जहां ज्ञान है वहां अज्ञान नहीं है। जहां अज्ञान है वहां ज्ञान नहीं है। जहां रोशनी है वहां अंधकार नही हो सकता और अंधकार जहां होता है वहां रोशनी नही हो सकती। ईश्वर साक्षात्कार के लिए ईच्छा रखनेवाला व्यक्ति जगत की फिक्र नहीं करता उसी तरह सांसारिक जीवन के लिए दौडनेवाला मनुष्य आत्म-साक्षात्कार की ईच्छा नही रखता। दोनो विरोधाभास रखनेवाली चीजे एक स्थान और एक ही समय पर साथ नही रह सकती। हमारा स्वभाव सूर्य के जैसा होना चाहिए अर्थात व्यक्ति का स्वभाव सूर्य की किरनो की तरह सारे ब्रह्मांड पर प्रकाशित हो ऐसा होना चाहिए। व्यक्ति के स्वभाव को “अपनी” अर्थात “आत्मा” की सभी हदें पार करनी चाहिए। जीस तरह सूर्यप्रकाश करता है। हमारा चित्त चंद्र के समान शीतल होना चाहिए अर्थात चित्त हरदम पूर्णरुप से शांतिमय होना चाहिए। पूर्ण शांति की सिद्धि जन्म का लक्ष्य और ईतिश्री (अंत) है।

272. बैराग कपडे को जलाने जैसा होना चाहिए। जब बैराग ज्यादा विकसित हो तब आत्मवैभव दिखेगा। शरीर अचल न हो लेकीन मन अचल होना चाहिए। जीन लोगो के मन शुद्ध नही हुए है उनमे समद्रष्टि नही होती। जीन लोगो में अभ्यास नही होता उनके लिए सत्वगुण प्राप्त करना बहुत ही कठिन होता है। सूक्ष्म बुद्धि का विकास अभ्यास से होता है। जब तक अभ्यास न किया जाये तब तक सांसारिक जीवन के लिए ईच्छा नष्ट नही होती। स्थावर संपति, धन, स्त्री, सुवर्ण के पीछे दौडना वह छोडना बहुत ही मुश्किल है। मनुष्य को क्या सिद्ध करना है? जब मनुष्य का

चित्त सत्व, रजस और तमस से मुक्त हो जाता है उसे पुरुषार्थ कहा जाता है। जीस तरह गंदा वस्त्र साबन के पानी से धोने से शुद्ध हो जाता है उसी तरह चित्त को बुद्धिस्वरुप साबुन के पानी से धोकर शुद्ध कर देना चाहिए और उसे "आकाश" जीतना शुद्ध कर देना चाहिए। जब सीलाई के मशीन पर सीवणकार्य को शीखते है तब शुरु में ध्यान हाथ पर रहना चाहिए, पांव पर नहीं। उसी तरह हम जब बुद्धि पर ध्यान केन्द्रित करते है तब मन को हृदयाकाश में एकाकार कर देना चाहिए और तभी हम चिरंतन शांति सिद्ध कर सकते है, जीसे "नित्यनंद" कहा जाता है।

स्पष्टीकरणः बैराग हरदम बढते रहना चाहिए और कभी घटने की ओर उसका झुकाव नहीं होना चाहिए। वह कपडे के जलाने जैसा है। बैराग जैसे बढता है उसी तरह आत्मवैभव की रोशनी का अनुभव होता है। मनुष्य का मन स्थिर होना चाहिए, शरीर नहीं। शरीर ईश्वरसाक्षात्कार की प्रक्रिया में गौण है। समाधि (समद्रष्टि) सिद्ध करने के लिए मन शुद्ध होना चाहिए। मन की शुद्धि बगैर समाधि सिद्ध नही होती। सत्व गुण का विकास हमारे अंदर करने के लिए अभ्यास आवश्यक है। हम अभ्यास न करे तो सांसारिक जीवन की ईच्छाएं नष्ट नही होती। स्थावर संपति, स्त्री, सुवर्ण के पीछे दौडना बंध करना बहत ही कठिन है वह अभ्यास से ही हो सकता है। मनुष्य को जीवन में क्या सिद्ध करना है। मनुष्य को उसका चित्त तीन घटक – सत्व, रजस, तमस से शुद्ध करना है। चित्तशुद्धि अर्थात ही पुरुषार्थ। चित्त की शुद्धि बुद्धि के साबुन-जल से करनी है। चित्त आकाश जैसा शुद्ध होना चाहिए। यह मनुष्य का परम पवित्र फर्ज है। यह ऐसी बात है जैसे की नौशीखीये दरजी जब सीलाई सीखते है तब सीलाईमशीन पर काम करते वक्त वह अपने हाथ पर ध्यान केन्द्रित करता है, पांव पर

नहीं। उसी तरह हमे हमारा लक्ष्य बुद्धि पर केन्द्रित करना चाहिए और मन को ह्रदयाकाश में एकाकार कर देना चाहिए। यह जब सिद्ध होता है तब हम शाश्वत शांति प्राप्त कर सकते है, जीसे “नित्यानंद” कहते है।

273. जीन लोगो के मन शुद्ध है वे ईश्वर को कीसी भी नाम से पुकार सकते है। प्रकृति रेलवे के डिब्बे जैसी है। उसके अंदर बैठे हुए लोग ज्ञान जैसे है। “चक्रो” रेलवे स्टेशन जैसे है। ईन चक्रो में सूक्ष्म बुद्धि है। “सूक्ष्म” वह ट्युब (नली) मे है। ईस सूक्ष्म नली मे कुंडलिनी शक्ति है। कुंडलिनी ओमकार स्वरुप में है ओर वह सूक्ष्म नलिकाओ में है। ईस बात का पता सूक्ष्म की अनुभूति से ही चलता है।

स्पष्टीकरणः शुद्ध मनवाले मनुष्य ईश्वर को कीसी भी नाम से पुकार सकते है। नाम नही लेकीन भक्त का ईश्वर के लिए भाव महत्वपूर्ण है। रेलवे के डिब्बे और उसके साथ जुडी हुई चीजो का उदाहरण यहां शरीर के विविध आध्यात्मिक सिद्धांतो को समजाने के लिए किया गया है। प्रकृति की तुलना रेलवे के डिब्बे के साथ की गई है। जो लोग उस डिब्बे मे सफर करते है उसे ‘ज्ञान’ कहा जाता है। रेलवे स्टेशन मतलब शरीर के विविध चक्रो है। कुंडलिनी सहस्त्रार तक पहुंचे तब तक उसे ईन चक्रस्वरुप रेलवे स्टेशनो पार करने है। कुंडलिनी की सूक्ष्मशक्ति जो की ओमकार स्वरुप है उसकी रेलवे एन्जिन की नलीओ में रही भांप के साथ तुलना की गई है। एन्जिन की ट्युब्स अर्थात शरीर की नाडियां। ईन नाडीयो में कुंडलिनी शक्ति सफर करके उपर की दिशा में दिमाग में रहने के लिए सहस्त्रार की ओर गति करती है। मनुष्य का सबसे महत्वपूर्ण प्राथमिक अग्रता रखता फर्झ अनुभव से कुंडलिनी शक्ति को सिद्ध करना है।

274. कुछ लोग करोडो रूपयो के स्वामी है। सब लोग एक ही समय पर करोडपति हो ऐसा नही हो सकता। वह उनके अतीत के कर्मो का फल होता है। हर एक व्यक्ति को उसके अधिकार से मिल जाता है। सागर में ढेर सारा पानी होता है लेकीन व्यक्ति को जीतना जल प्राप्त होता है वह व्यक्ति अपने साथ में जीतने आकार का बरतन ले जाता है उसके मुताबिक ही होता है। कर्मफल का आधार व्यक्ति के कर्म की वासना पर निर्भर है। पूर्वजन्म की वासनाओ की वजह से व्यक्ति संतो के प्रवचन सुनने दौडता है। ईन वासनाओ की वजह से मनुष्य को सांसारिक जीवन में आनंद प्राप्त नहीं करता है। जो लोग पूर्वजन्म की वासनाओ से प्रेरित होते है उन्हें नई अलग वासनाओ की आवश्यकता नही होती है। मनुष्य का बैराग भी उनकी पूर्वजन्म की वासनाओ का परिणाम है। ऐसे लोगो के लिए अब मुक्ति के लिए प्रयास करने का समय है।

स्पष्टीकरणः जैसे सभी लोग ईश्वर का सक्षात्कार एक ही समय पर नही कर सकते उसी तरह सभी लोग एक ही समय पर करोडपति नही बन सकते। ईस जगत में सब लोग ईश्वरसाक्षात्कार आज या कल सिद्ध करेंगे। फर्क सिर्फ समय का होता है। हमें ईश्वर का साक्षात्कार हो सके उसका आधार पूर्वजन्म के कर्मो पर है। ईश्वर हमारे कर्मो के अनुसार फल देते है। ईश्वर पूर्णरुप से निष्पक्ष है। सागर में ढेर सारा पानी है लेकीन हम हमारे पात्र के आकार अनुसार उस में से पानी ले सकते है। ईश्वर महान और दयालु है। उनकी महानता और दयाभावना का अनुभव हम हमारी शक्ति के अनुसार कर सकते है। ईश्वर काल, कारण और स्थान से परे है। वे समयमर्यादा से परे है लेकीन मनुष्य का शरीर ईन सभी बातो पर निर्भर होता है। हम ईश्वर का साक्षात्कार हमारी 'ताकत' (शक्ति) के अनुसार कर

सकते है। ईश्वर के लिए भाव मनुष्य के पूर्वकर्म की वजह से होता है और पूर्वजन्म के कर्मो की वजह से मनुष्य को संतो के प्रवचन सुनने की ईच्छा होती है। ऐसे संतो के प्रवचन और सत्संग की वजह से व्यक्ति को सांसारिक जीवन में कुछ भी आनंद प्राप्त नही होता है। बैराग अतीत के कर्मो का फल है। जो लोग पूर्वजन्म के कर्मो की वजह से प्रेरित होते है उन्हें अपनेआप ही बैराग प्रतीत होता है। ऐसे लोगो के लिए अलग बैराग की जरूरत नहीं है। ईन लोगो के लिए मुक्ति मार्ग पर आगे बढने का समय हो गया है।

275. ज्ञान और मुक्ति की सिद्धि के लिए आयु कोई समस्या नही है। ईसी पल में ही ज्ञान और मुक्ति के लिए प्रयास करने का समय है। मनुष्य को भूख लगे तभी खाने का समय होता है। जीन लोगो को भूख न लगी हो उन लोगो को भूख न लगे तब तक ईंतजार करना चाहिए। मनुष्य को भक्ति के लिए तीव्र भूख होनी चाहिए। अग्नि की गर्मी जीतनी ज्यादा उतना पानी ज्यादा उबलता है। श्रद्धा गर्मी है और शांति दिमाग में रहनेवाली बर्फ है। ईसी वजह से आंतरमन भर जाता है और वह परितृप्ति बाहर दिखती है। ऐसा मनुष्य सभी बातो में संतुष्ट होते है और उनका मन शुद्ध होता है। दानधर्म की तरह मनुष्य के मन की शांति के लिए एक भी पैसा खर्च नही करना पडता है, जीसका मन शांत है उसकी शांति का प्रभाव उसके आसपास के लोगो पर भी पडता है। एक व्यक्ति शांत हो उतना ही पर्याप्त है। हजारो में एक व्यक्ति को मन में शांति होती है और उसकी शांति का अंश उनके आसपास के हजारो लोगो को मिलता है। संत जब भी सांसारिक लोगो की टोली मे जाता है तब उसके पास शिकारी शेर के पास जाता है ऐसी शांति होती है ऐसी शांति होनी चाहिए। साधु को दुनिया में

रहना हो तो उसके पास अगाध शांति और धैर्य होना चाहिए। शांति हजारो सांसारिक लोगो के साथ रहने के लिए आवश्यक है।

स्पष्टीकरणः मनुष्य को ज्ञान और भक्ति के लिए आज और आज ही प्रयास करना चाहिए। हमे मृत्यु कब आयेगी उसका पता नही है। ज्ञान और भक्ति प्राप्त करके हमे मृत्यु के सन्मुख रहना चाहिए। ज्ञान प्राप्त करने के लिए कोई वृद्ध या युवा नही होता। ज्ञान कोई भी समय और स्थान को लक्ष में रखे बगैर प्राप्त किया जा सकता है। जब हमारी ज्ञानपिपासा जागरुक हो तब वह समय मुक्ति सिद्ध करने का है। जब हमे बूख लगती है तब वही समय भोजन ग्रहण करने के लिए है। जीन लोगो को ज्ञान के लिए भूख नही है उन्हें मुक्ति के लिए ईंतजार करना पडेगा। तब तक की जब तक उन्हें मुक्ति के लिए भूख जगे। ईसी तरह जीन्हें भूख लगती नही है उन्हें भोजन के लिए राह देखनी चाहिए। हम सब में भक्ति के लिए तीव्र ईच्छा होनी चाहिए। श्रद्धा जीतनी बलवान उतनी भक्ति द्रढ और ज्यादा होती है। अग्नि जीतना ज्यादा उतना ही पानी ज्यादा उबलता है। श्रद्धा गर्मी है और विश्वास उबलता पानी है। शांति वह दिमाग में बर्फ जैसी होती है। शांति हमें हर प्रकार की संतुष्टि प्रदान करती है और बर्फ की तरह हमारे दिमाग को ठंडा रखती है। शांति से पूर्ण संतोष प्राप्त होता है और मन को बर्फ की तरह ठंडा करती है। शांति प्रथम आत्मसंतोष प्रदान करती है और वह बाह्य रूप से प्रकट होता है। जीसने पूर्णरुप से शांति प्राप्त की हैवह पूर्णरुप से संतुष्ट होता है और उसका मन शुद्ध हो जाता है। ईस जगत में शांति से ज्यादा कुछ नहीं है। जीसने शांति प्राप्त की है वह ईच्छाओ से परे होता है। मन की शांति के लिए एक रुपया भी खर्च नही करना पडता। दानधर्म के लिए मनुष्य को खर्च करना पडता है, जो की आवश्यक है। वह

शांति के लिए तीव्र ईच्छा रखनेवाला मन। जब मनुष्य खुद शांति से भरपुर हो तब उसके आसपास के लोग भी शांति का अनुभव करते है। शांति की लहरे चुंबकीय लहेरो की तरह सभी दिशाओं में शांति फैलाते है। एक ही व्यक्ति शांति से भरा हो वह पर्याप्त है। उस व्यक्ति के आसपास के हजारो लोग शांति का अनुभव करते है। हजारो लोगो की भीड में प्रवेश करनेवाले साधु में ऐसी शांति होती होती है जैसे की शेर के पास जानेवाले शिकारी में होती है। सांसारिक लोग ज्ञानी को उनके दुःखो की बाते कहकर दुःख की अनुभूति कराते है लेकीन संत को सांसारिक बातो से बिलकुल विपरित ऐसे लोगो के साथ रहने के लिए धीरज प्राप्त करनी पडती है। संतने जीसका त्याग किया है वह भुगतना पडता है। खास तौर पर अज्ञानीओ के जीवन की बातें। एक साधु को ईस जगत में जीने के लिए बहुत ही शांति और धैर्य की आवश्यकता होती है। सांसारिक लोगो में रहनेवाले साधु के लिए शांति और धैर्य बहुत ही उपयोगी है।

276. मेले में विविध प्रकार की चीजें लाई जाती है उसी तरह शांति का अनुभव विविध प्रकार से करना चाहिए। हम हजारो लोगो की भीड में होते है तब हमे द्रढ निर्धार रखना चाहिए। जब हम गलत तरीके से सोचे की हम हजारो लोगो के बीच में है तब (द्वैत) द्वंद्व का भाव हमारे अंदर पैदा होता है। जीस तरह एरोप्लेन धरती की मदद के बिना उडता है उसी तरह हमे शरीर की मदद के बिना कार्य करना सीखना चाहिए। हमारी द्रढ मान्यता का बीज – मैं यह शरीर नही ऐसा हमारे ह्रदय में स्थआपित कर देना चाहिए। थका हुआ मुसाफिर सूरज के धूप में ज्यादा समय रहने के बाद आश्रय पाने के लिए पहाड की ओर जाता है और पैड के नीचे आराम करता है तब वह थकान भूल जाता है उसी तरह जीनके मन ईश्वर की

शोध में लीन होते है वै सांसारिक जीवन की चिंताओ को भूल जाते है, जीसर तरह सूर्य की गर्मी पैड की छाया में दूर होती है उसी तरह “मेरेपन” का भाव ईश्वर में समाने से दूर हो जाता हैजब हम घर में होते है तब हमे छाते की जरूरत नही होती उसी तरह ईश्वरस्वरुप महल में प्रवेश करने के बाद मनुष्य के घर में मिलनेवाले आनंद की आवश्यकता नही रहती है। जब मनुष्य घर में हो और घर के दरवाजे बंध हो तो उसे सिर्फ घर की चीजें ही दिखती है। घर के दरवाजे खोलकर उसे बाहर आने दो और तभी बाहर क्या चल रहा है वह उसे दिखाई देगा। ईसी तरह हमे ईन्द्रियो के पांच दरवाजे कब खोलने चाहिए और कब बंध करने चाहिए वह जान लेना चाहिए। जब गोदाम के दरवाजे बंध हो तब खरीदने-बेचने की प्रवृति नही हो सकती। जब ईन्द्रियो के दरवाजे बंध किये हो तब बाहरी जगत और “मैं” (मेरेपन) का भेद अद्रश्य हो जाता है। हमे ईन्द्रियो के बारे में सुभान रहना चाहिए। अश्व को जीस तरह लगाम से अंकुशित किया जाता है उसी तरह ईन्द्रियो को विवेकबुध्धि से अंकुशित करनी चाहिए। हमारा ध्यान दीवाल में लगी कील की तरह केन्द्रित होना चाहिए। बुद्धि को मस्तिष्क में केन्द्रित करनी चाहिए। हमारा ध्यान हरदम गले पर रहना चाहिए, गले के नीचे नहीं।

स्पष्टीकरणः हमे जगत की विविध चीजो करने के लिए शांति और धैर्य होना चाहिए। हम शांति विविध प्रकार से प्राप्त कर सकते है। मेले में विविध प्रकार की चीजें होती है उसी तरह शांति प्राप्त कर सके उसके लिए अनेक मार्ग होते है। हमारा निश्चय द्रढ और हिंमत अप्रतीम होनी चाहिए। जीससे हम हजारो लोगो की भीड में आसानी से घूम सकते है। हमारे अंदर नैतिक हिंमत ईतनी होनी चाहिए की वासनाओ के जंगल में हम सफल तरीके से अस्पृश्य रह सके। जब हम हजारो मनुष्यो की भीड में होने का

गलत विचार करते है तो विचार हमारे अंदर प्रवेश कर जाता है। हम अगर ऐसे मान ले की हम भीड से अलग है तो हम और भीड अलग है वर्ना भीड और हम एक हो जाते है। हमे लगता है की हम और भीड दोनो ईश्वर का ही एक हिस्सा है तो द्वैत का विचार हमे आता नही है उसी तरह हमे लगता है की विविध ईच्छाएं और वासनाएं और आत्मा परमात्मा में से उत्पन्न होते है तो ईच्छाओ और वासनाओ का भय नहीं रहेगा। ऐसा हो तो ईच्छाएं और वासनाएं अपना सांसारिक मार्ग बदलकर ईश्वरसाक्षात्कार के मार्ग में सहायक होगा। ईश्वरने हमें ईच्छाएं ईसलिए दी है हम उनकी ईच्छा करें और सांसारिक जीवन में फंसे नहीं। हमे शरीर से स्वतंत्र होने का प्रयास करना चाहिए और स्वतंत्र होना चाहिए। जीस तरह एरोप्लेन पृथ्वी से अलग रहता है। शरीर का अस्तित्व हमे भूल जाना चाहिए। शरीर परछांई जैसा होना चाहिए। मान्यता का बीज की मैं शरीर नहीं हूं वह हमारे हृदय मे द्रढ हो जाना चाहिए। जीस मनुष्य का मन ईश्वर में लीन है वह सभी चिंताओ को भूल जाता है उसी तरह एक मुसाफिर धूप में ज्यादा चलने के बाद पहाड की गोद में पैडो की छाया में सारी थकान भूल जाता है। जब मनुष्य का मन पूर्णरुप से ईश्वर में समा जाता है तब मेरेपन का भाव नष्ट होता है ऐसे की जीस तरह सूरज की गर्मी पैड की छाया में बैठते है तब भूल जाते है। जब हम घर में होते है तब छाते की आवश्यकता नही होती। जब हम घर से बाहर नीकलते है तभी छाते की जरूरत होती है। जब हम ईश्वर के महल में होते है तब सांसारिक जीवन में आनंद की आवश्यक्ता नही होती। ईश्वर का परमसुख सांसारिक जीवन के आनंद से भी कहीं ज्यादा अच्छा है। सांसारिक जीवन का आनंद हमारे लिए ईसलिए जरूरी है की जीससे ईश्वर का परमसुख जो अनंत तौर पर ज्यादा अच्छा है

वह प्राप्त हो सकता है। हम ईश्वर का दर्शन ईसलिए नहीं कर सकते है की हम सांसारिक जीवन की बातो में हमारा ध्यान विकेन्द्रित करते है। हमारी ईन्द्रियो के दरवाजे बंध करेंगे तो आत्मा के दर्शन कर पाते है। हमे ईन्द्रियो के दरवाजे बंध करना और खौलने का काम हमारी ईच्छा और आनंद के हिसाब से सीखना चाहिए। हमारा ईन्द्रियो पर पूर्णरुप से अंकुश होना चाहिए। जब गोदाम के दरवाजे पर ताला लगा हो तब खरीदने-बेचने की प्रवृति रुक जाती है उसी तरह ईन्द्रियो के दरवाजे बंध हो तब सभी प्रवृति रुक जाती है और फर्क शाश्वत जगत और मैं के बीच से अद्रश्य हो जाता है। हमें हमारी ईन्द्रियो के बारे में सतर्क रहना चाहिए। अश्व को जीस तरह लगाम से अंकुशित किया जाता है उसी तरह हमारी ईन्द्रियो को विवेक की लगाम से नियंत्रित करनी चाहिए। दीवार पे लगी हुई किल की तरह हमारा ध्यान ईन्द्रियो पे द्रढता से केन्द्रित होना चाहिए। बुद्धि मस्तिष्क में केन्द्रित रहनी चाहिए। हमारा ध्यान हरदम गले से उपर होना चाहिए। मस्तिष्क मनुष् के शरीर का महत्वपूर्ण हिस्सा है। वह बुद्धि, मन और सहस्त्र पत्तीओवाले कमल-मस्तिष्क (सहस्त्रार) में होता है वही उसका स्थान है। हमारा ध्यान हरदम मस्तिष्क पर रहना चाहिए।

277. जीस तरह सुवर्ण बारबार अग्नि में पीघलकर शुद्ध होता है उसी तरह विवेक का बारबार अभ्यास से सूक्ष्मबुद्धि प्रकाशित होती है। हमे हमारे अंदर रहे जगत को देखना चाहिए। हमारी बुद्धि ही हमारे मोक्ष का साधन है। जीसे “धारणा” कहा जाता है और वह ओर कुछ नहीं लेकीन विषय की स्पष्ट समज है। ईस समज से हम आत्मा के ज्यादा पास आते है। हमे पुस्तक से अनुभव नही मिलता। प्रथम अनुभव और बाद में उस अनुभव के आधार पर किताबे लिखी जाती है। पेड बीज मे है। बीज पेड मे नहीं है।

मनुष्य जगत में नहीं है लेकीन जगत मनुष्य में है। जगत मनुष्य के अधीन है। हमारे मन में हम जो सोचते है वह शब्दो में अभिव्यक्त करते है। ह्रदय दंभरहित होना चाहिए। ह्रदय पूर्णरुप से शुद्ध रहना चाहिए। ह्रदय जो सोचता है वही जिह्वा को बोलना चाहिए। मनुष्य जो सोचता है वही उसे बोलना चाहिए। कीसी के साथ धोखा नहीं करना चाहिए। कीसी का तिरस्कार नहीं करना चाहिए। लोगो के साथ ज्यादा मिलना नही चाहिए।

हमारा मन एककेन्द्री होना चाहिए। जब हमारा ह्रदय धोखेबाज हो तो वह गर्मी दोपहर की धूप जैसी है। सितारा बादल में बाहर नीकलता है और भव्यता से प्रकाशित होता है। थोडी पलो में बादल से ढक जाता है ऐला ही मनुष्य के मन का है। कभी वह एकदम शुद्ध होता है तो पांच मिनट में वासनाओ से घिर जाता है। गर्विष्ठ दीमाग आत्मा में पिघल जाता है जीस

तरह सितारा आकाश से गिरता है। आकाश भौतिक आंखो से दिखता नही है। आकाश वह है जो दिव्य चक्षु से दिखाई देता है। विवेक से विवेक का अनुभव हो सकता है। नाद-नाद द्वारा पहचाना जाता है। मन की समज मन ही प्राप्त कर सकता है।

स्पष्टीकरणः सूक्ष्म विवेक-मनुष्य में रहती सुषुप्त शक्ति की जीसे कुंडलिनी कहा जाता है वह विवेक के बारबार अभ्यास से प्रकाशित होती है। सुवर्ण को बारबार अग्नि में पिघलता है तो शुद्ध होता है। उसी तरह विवेक के बारबार अभ्यास से हम हमारी सूक्ष्म शक्तिओ को प्रकाशित कर सकते है, जीसे स्वंय प्रकाशित कुंडलिनी कहते है। विवेक मतलब सच्चे-जूठे को अलग करने की शक्ति। आत्मा के साक्षात्कार के लिए प्रारंभिक महत्वपूर्ण है। हमे हमारे अंदर ऐसी परम शक्ति का विकास करना है जो ब्रह्मांड को नियंत्रित करती है, जीसे ईश्वरीय शक्ति कहा जाता है। हमे हमारे अंदर

समाए विश्व को देखना है। हमे आत्मा का साक्षात्कार से ब्रह्मांड को नियंत्रित करनेवाली परम शक्ति का अनुभव करना है। मोक्ष सिद्धि के लिए बुद्धि ही एक मार्ग है। बुद्धि ही सिर्फ मार्ग दिखानेवाला मार्गदर्शक है। हमे यह रास्ता हमारे प्रयासो से काटना है। जीसे धारणा कहा जाता है वह ओर कुछ नहीं लेकीन विषय की स्पष्ट समज है। हमारा लक्ष्य हम स्पष्ट तौर पर समज सकें तो आत्मा के नजदिक आ सकते है। धारणा वह आत्मा का ज्ञान प्राप्त करने के लिए साधन है। आत्मा भौतिक आंखो से दिखाई नही पडता। ईसलिए आत्मा कैसा हो सकता है वह समज सकते है। धारणा से हम आत्मा के नजदिक आ सकते है। पैड बीज में होता है। बीज पैड में नही होता। उसी तरह किताबें अनुभव से पैदा होती है, अनुभव किताबो से नही मिलता। प्रथम अनुभव करना चाहिए और बाद में उसमें से किताबें लिखनी चाहिए। मनुष्य जगत में नहीं है लेकीन जगत मनुष्य में है। सूक्ष्म शक्ति जो मनुष्य में है वह जगत में है अर्थात ईश्वर मनुष्य में है। मनुष्य उस ईश्वर का सूक्ष्मातिसूक्ष्म अंश है। मनुष्य सृष्टि में सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण प्राणी है। मनुष्य में रहनेवाली सूक्ष्म शक्ति उस ईश्वर की अद्रश्य शक्ति है जो उसमें समाई हुई है। ईस सूक्ष्म शक्ति से सृष्टि प्रभावित होती है। ईसीलिए ही जगत मनुष्य में है। मनुष्य जगत में नहीं है। मनुष्य जो स्व को अंकुशित कर सकता है तो जगत को नियंत्रित कर सकता है। मनुष्य का मन एककेन्द्री न होने से मनुष्य माया के अधीन रहता है। मनुष्य अपने मन को पूर्णरुप से नियंत्रित करे तो वह अपने ब्रह्मांड को नियंत्रित करनेवाली शकित का विकास कर सकता है। मनुष्य का ह्रदय पूर्णरुप से शुद्ध होना चाहिए। ह्रदय सोचता है वही जिह्वा को बोलना चाहिए। मनुष्य खुद जो सोचे वही उसे सोचना चाहिए। ह्रदय दंभरहित होना

चाहिए। मनुष्य को दंभरहित रखना चाहिए। हमे कीसी को धोखा नहीं देना चाहिए और हमे कीसी का तिरस्कार नही करना चाहिए। हमे लोगो से ज्यादा मिलनाजुलना नही चाहिए। हमारा मन एककेन्द्री होना चाहिए और निरंतर ईश्वर का चिंतन करना चाहिए। हमारा चहेरा हम जो सोचते है उसका प्रतिबिंब है। हमारा हृदय धोखेबाज हो तो हमारा चहेरा बारीश की मोसम में सूरज या चंद्र जैसा होता है बादलो से घिरा हुआ। ईस स्थिति में व्यक्ति के चहेरे पर नैसर्गिक निर्दोषता और तेज नहीं होते। चहेरे पर का दुःख जो सामान्य तौर पर बाहर से देखनेवाले व्यक्ति को दिखाई देता है। जब हमारा हृदय शुद्ध हो तब दोपहर के सूरज की तरह प्रकाशित होता है और चहेरा चारों ओर रोशनी देता हुआ झगमगाता है। हर एक मनुष्य के जीवन में थोडे पल ऐसे होते है जब उसका हृदय पूर्णरुप से शुद्ध होता है। बादल में से नीकला सितारा जीस तरह उसके भव्य तेज से प्रकाशित होता है उसी तरह हमारा हृदय सामान्य समय में उसकी मूलतः ऐतिहासिक भव्यता से प्रकाशित होता है लेकीन थोडे पलो में हृदय वापिस वासनाओ से भर जाता है। आकाश में से गिरा हुआ सितारा कीसी भी आकाश में खो जाता है उसी तरह हमारे मन को पूर्णरुप से आत्मा में एकाकार करना है। जीसे आकाश कहा जाता है वह भौतिक द्रष्टि से दिखता नही है। चिदाकाश (चेतना का आकाश) मस्तिष्क में रहनेवाले दिव्य चक्षुओ से दिखाई देता है। विवेक से ही हम विवेक की अनुभूति कर सकते है। आवाझ की पहचान आवाझ से होती है और मन की गतिविधियां मन को समझ आती है। उसी तरह ईश्वर का साक्षात्कार उनकी कृपा हो तभी हो सकता है। मनुष्य के प्रयास उनके साक्षात्कार के लिए बहुत ही कम है।

278. जीवात्मा में है वह परमात्मा है। परमात्मा आत्मा के गुणो का साक्षी है। जब जीव को अनुभूति होती है की वह परमात्मा से अलग नही है तब उसे नित्यात्मा कहा जाता है। नित्यात्मा मतलब शाश्वत चैतन्य। जब कोमल आम पैड पर हो तब वह पैड के साथ एक हो जाता है। उसी तरह जीवन और परमात्मा एक है जब सत (अस्तित्व), चित (सभानता-चेतना) और आनंद (सुख) तीनो एक हो और तीनो गुण जब सत-चित-आनंद एकरूप हो जाये तभी हम उसे योग (जुड जाना) कहते है।

स्पष्टीकरणः जीवात्मा और परमात्मा एक ही है। परमात्मा जो की मनुष्य के शरीर में व्याप्त है वह जीवात्मा है। परमात्मा सब से उपर है परमात्मा कर्ता नहीं है। परमात्मा परमशक्ति है। जो पूर्णरुप से अकार्यरत है। परमात्मा जीवात्मा के गुणो का साक्षी है। जब जीव को अनुभूति होती है की वह परमात्मा से अलग नही है तब उसे नित्यात्मा कहा जाता है। नित्यात्मा अर्थात शाश्वत चेतना। ऐसी आत्मा स्थान, काल और अवकाश से परे होता है। ऐसी आत्मा शाश्वत होता है, जीवात्मा और परमात्मा दोनो परस्पर एक होते है। ईसकी कोमल आम जीस तरह पैड के साथ एकाकार होता है उसके साथ तुलना कर सकते है। यह एकात्मकता (युनियन) तभी संभव होती जब सत चित (चेतना-सभानता) और आनंद (सुख) एक होते है। यह एकता तभी संभव होती है जब तीनो गुण – सत्व, रजस, तमस सत चित-आनंद में एकरुप होते है। ईसे योग (जुडना) कहते है। ईस स्थिति में जीवात्मा परमात्मा जुडे हुए होते है।

279. कुंडलिनी शक्ति को प्राणायाम से जागृत करनी चाहिए। कुंडलिनी जागरण से मनुष्य को मुक्ति प्राप्त करनी चाहिए। श्रद्धा एक रस्सी जैसी है। वायु एक रस्सा है। हमे वायुरुपी रस्से को मजबूती से

पकडकर रखना चाहिए। श्रद्धा वह ओर कुछ नहीं लेकीन धारणा है। हमारा ध्यान हरदम धारणा पर केन्द्रित होना चाहिए। यह ध्यान श्रद्धा के साथ होना चाहिए। श्रद्धा शरीर की हर एक नाडी में व्याप्त होनी चाहिए। ऐसे लोगो में माया एक अलग ही अस्तित्व नहीं होता। मन ही माया है। वास्तव में मन विचार तरंग पैदा करता है। सभी तरह के रिश्ते, सभी तरह के सृजन, कारण और परिणाम, प्रकाश और ब्रह्मांड, ब्रह्म प्रकाश और परम तेज ये सभी भेद वास्तव में माया अर्थात अज्ञान से होते है। जब यह सत्य समज में आता है तब माया का भय नहीं रहता। ये सभी स्वरूप वास्तव में मेरे स्वरुप है ऐसा प्रज्ञपुरुष को सोचना चाहिए। जब मन ध्यान में एकाग्र हो जाता है और चेतना के आकाश में जब परम ऐक्य का अनुभव होता है तब उसे मोक्ष कहा जाता है। मोक्ष का मार्ग अपने से अलग नहीं है। आंख और कान के बीच का भेद-पाप और पुण्य का फर्क बहुत ही पतला है। यह बुद्धि से पर नहीं है। आनद और दुःख दोनो ऐसी चीजें है जीसे बुद्धि में एकाकार कर देना है। बुद्धि की मदद से मोक्ष को सिद्ध करना है। जब मन आत्मा को स्व में एकाकार कर दीया जाता है और जब ऐक्य सिद्ध हो तब उसे मोक्ष कहा जाता है। ज्ञान आंतरिक है। शुरु में ज्ञान को समज सकते हो लेकीन जैसे जैसे ऐक्य सिद्ध होता है वैसे वैसे यह ज्ञान भी भला दीया जाता है। ईसके बाद कुछ भी सुनने या कहने के लिए बाकी नहीं रहता। सब लोग ब्रह्म है और श्रम ही सर्वस्व है। ईस स्थिति को 'शुभावस्था' की स्थिति कहा जाता है। प्राण एक रस्सा है। जब सांसे अंदर बाहर होती है तब वह संवादिता से गति करता है। प्राण अविभाज्य है। उसे समय का कोई भेद नहीं है। प्राण ईस फर्क का तब अनुभव करता है जब वह स्थुल के साथ होता है। जीव जगत के गुणो में अटका है ईसलिए

अपने ‘सत्य’ को भूल गया है और निम्नस्तर पर पहुंच गया है। उसे बुद्धि की मदद से उपर की ओर आगे बढने दो। प्राण को श्रद्धा की रस्सी से बाँध के रखो। प्राण की उर्ध्वगति से प्राण को ‘मोक्ष’ सिद्ध होने दो। घआस के बंधनो से मुक्ति अर्थात मोक्ष। उसके बाद शांति आती है। हे प्राण! शांतिधाम में प्रवेश करो! ईस जगत और बाद के विश्व दोनो को नियंत्रण में रखो। ऐसी आत्मा सत, चित्त, आनंद सिद्ध करती है। सत अर्थात अस्तित्व-चित्त-ज्ञान और आनंद अर्थात परम सुख। ऐसे लोगो को कर्म के परिणामो के लिए लगाव नही होता। वे लोग निरंतर तौर पर एकाग्र मनवाले होते है। ऐसे लोगो को जीव के गुणो पर विजय प्राप्त किया होता है। जब तक शरीरभाव के बारे में जागरुकता होती है तब तक मुक्ति सिद्ध करना संभव नहीं है। जब तक द्वैतभाव नष्ट नही होता तब तक योग नहीं है और मुक्ति भी नहीं मिलती। ईस तरह से देखें तो हर एक व्यक्ति योगी है लेकीन योग के हर एक प्रकार में कुछ ना कुछ निश्चित हेतु होती है लेकीन जब मूल तत्व में एक हो जाये और जीवन के द्वंद्व भूला दीये जाते है तब एकात्मभाव देख सकते है। सच्चा योग वह है की व्यक्ति हर एक चीजो में से मुक्त रहता है। वह योग है की जीससे मनुष्य ईच्छाओ में से मुक्त हो जाये वह मोक्ष का मार्ग है। शंकाओ का निरसन तब तक नहीं होगा जब तक जीव शिव के साथ मिलकर एक न हो जाये। जब व्यक्ति ऐसा कर्म करे की जो दूसरे को पसंद न आये तो वह व्यक्ति ऐसे कर्म करनेवाले को पागल मानता है लेकीन दोनो एकदूसरे को पागल नहीं समझते। जब दोनो को एक समान कर्म करने में लगाव न हो तब उन्हें उसमें कुछ भी बूरा महसूस नही होता। मनुष्य का मन पवन में रखी रूई जैसा है और ईश्वर की भक्ति रुऊ पर डाले गये पानी जैसा है। ऐसा ही

मन के नाश का है। मनुष्य का मन जो रूई जैसा है उसे ज्ञान के पानी से भीगौना चाहिए और चित्त को ईच्छाओ से मुक्त करना चाहिए। ईसे मोक्ष कहा जाता है। रूई की तरह मनुष्य को मुक्ति प्राप्त करने दीजीए। मनुष्य आत्मा का चिंतन करता है लेकीन विविध कर्म में वह फंसा हुआ रहता है। ईन्द्रियो के विषय हमारी बाहरी ओर है। अंदर की ओर नहीं है। ईसीलिए हम जब विविध कर्म करते है तब बुद्धि की मदद से हमे अपनेआप को अलग रखना चाहिए। जब मोटर का चालक वाहन के स्टीयरिंग पर से अपना हाथ उठा लेता है तो वाहन कीसी भी दिशा में चला जाता है और भयजनक बनता है। मन बुद्धि में रहना चाहिए। हमे मन को भटकने नहीं देना चाहिए। मन को आंतरिक ध्यान पर केन्द्रित करना चाहिए। आत्मचिंतन से मन का विकास करना चाहिए। हे मन! चेतना के आकाश में सूक्ष्म बुद्धि के विकास से प्रवेश क़रें और शरीर की हर एक़ नाड़ी को ईस बुद्धि से भरें दो ! हे मन! हरदम संतुष्ट रहो! हे मन! छायाबिंबो की भ्रमणा से प्रेरीत न हो!

स्पष्टीकरणः प्राणायाम हमारे लिए कुंडलिनी जागरण का एक साधन है। कुंडलिनी जागरण और उसे सहस्त्र पत्तीओवाले कमल-सहस्त्रार की ओऱ मस्तिष्क में प्रेरीत करके मुक्ति प्राप्त करनी चाहिए। ऐसा होगा तभी हमारी ईच्छाएं शांत होगी। जीव शिव के साथ एक हो जायेगा। हमारे अंदर द्रढ श्रद्धा होनी चाहिए और रस्सी जैसे चीपके रहते है उसी तरह श्रद्धा को चिपककर रहना चाहिए। यह द्रढ श्रद्धा धारणा से अर्थात सांस पर ध्यान केन्द्रित करने से प्राप्त किया जा सकता है। यह रस्सा मतलब वायु (हवा) है। ईस वायु को हम चिपककर रहकर ईश्वर में जीवंत श्रद्धा प्राप्त कर सकते है। श्रद्धा अर्थात और कुछ नहीं लेकीन धारणा है क्योंकी श्रद्धा ही

धारणा का परिणाम है। हमारा ध्यान सिर्फ धारणा पर केन्द्रित होना चाहिए। यह ध्यान हरदम श्रद्धा के साथ होना चाहिए। आध्यात्मिक्ता में प्रगति हमारी श्रद्धा के अनुरुप होती है। ईश्वरप्राप्ति हमारी श्रद्धा से ही हो सकती है। श्रद्धा से बडा कोई ईश्वर नही होता। श्रद्धा जगत में सबसे महान चीज है। श्रद्धा हमारे शरीर की प्रत्येक नाडी में होनी चाहिए। हमारा प्रत्येक अणु श्रद्धा से भरपुर होना चाहिए। ऐसे लोग को जीनकी श्रद्धा उच्चतम स्तर की होती है उनके लिए माया का अलग अस्तित्व नही होता। उनके लिए सारा ब्रह्मांड माया का सृजन है। उनके लिए उनके मन ही माया है। वे जो भी अनुभव करते है उनका मन ही हर प्रकार के मानचित्र और विचारो का कारण होते है। उन लोगो का अनुभव होता है की सारे संबंध, सभी सृजन, कारण और परिणाम प्रकाश, ब्रह्मांड, बाहरी प्रकाश, परम तेज यह सब मन के घाट (सृजन) है और अज्ञान की वजह से पैदा होता है। यह रहस्य समज में आ जाये तो माया का भय नहीं रहता। एक प्रज्ञावान व्यक्ति को समजना चाहिए की जगत की विविध बातें अपनी आत्मा का स्वरुप है। ईस तरह सारी बात को देखेंगे तो विविध सांसारिक बातो का लगाव उसे प्रभावित नहीं करेंगे। वह मायारहित हो जायेगा। हमारा प्रथम और सब से जरूरी फर्ज़ है की जीव अपने मूल स्वभाव और स्वरूप प्राप्त करे और उसके लिए बुद्धि की मदद से ऊर्ध्वदिशा में गति करे। श्रद्धा प्राण को ऊर्ध्वदिशा में ले जाने के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है। मोक्ष अर्थात ईन्द्रियो के बंधनो में से मुक्त होना। जब मोक्ष सिद्ध होती है तब शांति प्राप्त होती है। हे प्राण! शांतिधाम में प्रवेश करो! आपके आज और कल दोनो विश्व पर प्रभूत्व प्राप्त करें। ऐसे आत्मा सत-चित्त-आनंद सिद्ध करता है। ऐसी आत्माओ के कर्म के परिणामो का बंधन होता नही। वे शाश्वत प्रकार से

बंधन में से मुक्त होते है। ऐसी आत्माएं शाश्वत प्रकार से एकचित्त होती है। ऐसे आत्माएं त्रिगुण पर विजय प्राप्त किया होता है। जब तक मैं शरीर हुं वह भाव पूर्णरूप से खतम न हो जाये तब तक मुक्ति दूर की बात है। मुक्ति सिद्ध करने के लिए शरीरभाव पूर्णरुप से अद्रश्य हो जाना चाहिए। शरीर एक परछाई जैसा होना चाहिए। द्वैत का भाव जब तक नष्ट नहीं होता तब तक कोई योग नहीं है और मुक्ति नहीं है। योग का अर्थ जीव-शिव में मिलकर एक हो जाये वही है। ईसलिए योग सिद्ध करने के लिए जीव और शिव का फर्क अर्थात द्वैतभाव दूर हो जाना चाहिए। ईस अर्थ में सब लोग योगी है। दुनिया के लोग अपने ईच्छित ध्येय सिद्ध करने के लिए अथाक प्रयास करते है और ऐसा करने में उनका योग भी है लेकीन ये सभी योग ही निश्चित उद्देश से होता है लेकीन हेतुरहित-उद्देशरहित योग सब से उच्चुतम प्रकार का होता है। जब तत्व मूलतत्व के साथ एक हो जाये तब जीव का द्वैतभाव खतम हो जाता है तब उसे 'एकत्व' या योग कहा जाता है। यह सिद्ध हो तब एकत्व सिद्ध होता है। सारा विश्व ईश्वर के दर्शन जैसा लगेगा। सच्चा योग वह है जो और सब से बंधनमुक्त हो जाता है। ऐसा योग की जब व्यक्ति ईच्छा से मुक्त हो जाये तब वह मोक्ष का रास्ता बनता है। शंका का निरसन न हो तब जब जीव निर्विकल्प समाधि प्राप्त करेगा। निर्विकल्प समाधि अध्यात्म अभ्यास की उच्चतम स्थिति है। जब आत्मा ईश्वर के साथ एक हो जाता है जब एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति कोई भी बात कहे तो व्यक्ति ऐसे व्यक्ति को पागल मानती है। लेकीन अगर दोनो एकसमान रुचि वाली बात हो तो वे एकदूसरे को पागल नहीं मानते। ऐसा करने में दोनो कुछ बूरा नहीं लगेगा उसी तरह सांसारिक जीवन में लीन मनुष्य को संसार का पूर्णरूप से त्याग करनेवाला योगी

पागल लगेगा। दूसरी ओर योगी जीससे नाशवंत दुनिया के पाशविक भोग भोगनेवाला मनुष्य पागल लगता है। कभी सांसारिक जीवन के मनुष्य का मन ईश्वर की ओर प्रेरीत होता है। ईसलिए जो योगी भी करता है वह बात उसे भी सच्ची लगती है। मन पवन में रखी रूई की तरह कांपता है। मनुष्य को मन को द्रढ और स्थिर करने के लिए ईश्वर के लिए भावना प्राप्त करनी चाहिए। भक्ति रूई पर डाले हुए पानी जैसी होती है। जीसे वायु उडा नही सकता। जीस तरह रूई पर पानी डालने से उसका उडना बंध किया जा सकता है वैसे मन की चंचलता को ईश्वर पर ध्यान केन्द्रित करने से पूर्णरुप से नष्ट किया जा सकता है। मन को ज्ञान के जप से गिला करना चाहिए जीससे मन और चित्त ईच्छाओ से मुक्त हो जाये। ज्ञान वह मन की ईच्छाओ के विरुद्ध दवा है। ईस जगत में बंधनरहित रहना वह मोक्ष है। ईसलिए हर एक मनुष्य मोक्ष प्राप्त करे वह जरूरी है। मनुष्य को सांसारिक जगत के सभी कर्म करते करते आत्मा का चिंतन करना संभव होता है। यह निरंतर ध्यान सही ध्यान है। अगर मोटर का चालक वाहन के गतिचक्र को छोड देता है तो मोटर किसी भी दिशा में चली जाती है और खतरे का रुप प्राप्त करती है। मोटर के ड्राईवर की तरह जैसे हमारा ध्यान हरदम वाहन के गतिचक्र पर रहता है अर्थात बुद्धि पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। जीससे बुद्धि ईधरउधर न हो जाये। बुद्धि को हरदम आत्मा का विचार करते रहना चाहिए और स्थिर और एक केन्द्री होना चाहिए। मन आंतरिक ध्यान करना चाहिए। आंतरद्रष्टि से सूक्ष्म बुद्धि का विकास होना चाहिए। हे मन! बुद्धि की मदद से चेतना के विश्व में प्रवेश करे ! हे मन! सदाय संतुष्ट रहो! परछाई से कभी भ्रमित न हो! उसमें एकाकार हो जाओ जीसका कोई पर्याय नहीं है।

280. जीन लोगो के मन समाधि में एकाकार हो गये है उनको बाहर का जादुई प्रभाव नहीं होता। वे बिलकुल निर्भय होते है। सिद्धो को दुनिया का भय नहीं लगता। बाघ या विषैला नाग ऐसे व्यक्ति को देखें तो शांत हो जाते है और उनका जुनुन उतर जाता है। ऐसे लोगो के दर्शन हो तो सभी प्राणी शांत हो जाते है। दुश्मन दुश्मनी भूल जाते है और मित्रतापूर्ण बन जाते है। जब वे ऐसे संत को देखे तब वे पत्थर जैसे स्थिर हो जाते है। ईसकी वजह क्या है? ईसकी वजह उनका शंकाशील स्वभाव है। संत के दर्शन से अंधकार दूर होता है। मन स्वयं शुद्ध हो जाते है और सत्वगुण की अनुभूति होती है।

स्पष्टीकरणः द्रढ मन को आसानी से भ्रमित नहीं किया जा सकता। मन की चंचलता ही जादुगरी से मन को भ्रमित होने की वजह है। जो मनुष्य का मन समाधि में एकाकार हो गया हो उसे बाहरी जादुगरी से भ्रमित नहीं किया जा सकता। ऐसे मनुष्य का मन पहाड की तरह शाश्वत आत्मा पर बिराजमान होता है। ऐसे मनुष्य का मन को परम सुख की उच्चतम स्थिति में से सांसारिक जादुगरी से डगा नही सकते। ऐसी उच्चतम दशा को प्राप्त करनेवाले मनुष्य बिलकुल निर्भय होते है। समाधि स्वयं निर्भयता की स्थिति है। जहां सब लोग एक दिखते है और भय द्वंद्व के भाव की वजह से पैदा होता है। जब द्वैत का भाव नष्ट हो जाता है, भय रहता नहीं है और भय दिखानेवाली चीजे रहती नहीं है। हर एक चीज सत्य का एक भाग है। भय और भय दिखानेवाली चीजे एक हो जाती है। सिद्धो जगत से गभराते नहीं है। क्यों उन्हें गभराना चाहिए। उन लोगो को ईस जगत का उद्देश पार करना बाकी है? बिलकुल नहीं! जगत की नियंत्रक ताकात उनमें पूर्णरुप से विकसीत होती है। सारा विश्व उनमें है लेकीन वे

जगत में नहीं है। ऐसे संत को जब शेर, विषैला नाग देखे तो शांत हो जाते है और अपना जुनुन भूल जाते है। ईसी तरह सभी प्राणी ऐसे सिद्ध (संत) को देखकर शांत हो जाते है। सिद्ध लोग अपनी चारो ओर शांति फैलाते है। सिद्धो के आसपास का सारा वातावरण शांतिमय होता है, ईसलिए प्राणी भी उनके तामसी गुण भूलकर शांत हो जाते है। उसी तरह दुश्मनी भी भूल जाते है और मैत्रीपूर्ण बन जाते है। ऐसे लोग साधु (संत) को देखते ही तुरंत ही पत्थर जैसे अचल हो जाते है। ईसकी क्या वजह हो सकती है। ईसकी वजह उनका शंकाशील स्वभाव है। साधु की उपस्थिति में उनकी शंकाओ का निरसन हो जाता है और सत्य समक्ष प्रकाशित हो जाता है। उनको उनके सारे दोष दिखाई देते है और उसीक शर्म महसूस करते है। ईसकी वजह से वे साधु की उपस्थिति में पत्थर की तरह अचल हो जाते है। साधु का दर्शन होते है तब अंधकार नहीं रहता। माया उसकी सभी चित्र-विचित्रताओं के साथ हमें दिखाई देती है। शाश्वत त्य जो मनुष्य के जीवन का लक्ष्य है और अंत है वह हमारे सामने उसकी प्राकृतिक भव्यता के साथ प्रकाशित हो जायेगा। ज्ञानी की उपस्थिति में मन स्वयं शांत हो जाता है और अनुभव करता है की सत्व गुण क्या है।

281. सभी लोगो को एक ही समय पर और एकसमान भूख नहीं लगती। उसी तरह सभी लोगो को एकसमान मुक्ति प्राप्त नहीं होती। फर्क सिर्फ समय का ही रहता है। मनुष्य भाषा के फर्क की वजह से आपस में विवाद करते रहते है। हिन्दुस्तानी भाषा में लोग चीनी को 'मीठा' कहते है। दूसरी भाषाओ में उसे साकर कहते है लेकीन चीनी की उपयोग सभी के लिए एकसमान है। अलबत्त, चीनी का अलग अलग उपयोग हो लेकीन जीस स्थान वहा जाये वह स्थान वही है। मनुष्य ईशअवर के विविध

स्वरुपो में मानने के बजाय एक ही स्वरुप को माने तो वह सही सुख है वह समज में आयेगा। मनुष्य को तभी संतोष मिलता है। जो लोग हजारो ईश्वर के स्वरूपो में माने तो उन्हें संतोष मिलता नहीं है। जब तक आप 'दो' का विचार करें तब तक सुख नहीं मिलता। ईसलिए 'एक' में ही संतोष मानो! ईश्वर एक है कभी दो नहीं होते। जीन लोगो की श्रद्धा ईस प्रकार की है वे स्वयं में ईश्वर में देख सकते है। वे सभी को आत्मा की तरह देख सकते है। यही मोक्षमार्ग है। ऐसे लोगो के कोई दुशअमन नही होते। सभी लोग उनके मित्र होते है। मनुष्य को अपनेआप में मानकर गंदगी करनी नहीं चाहिए। उसे आत्मा का साक्षात्कार एक में मानकर करना है। मनुष्य जहां से आया है वहीं परत जाना है। कारण और परिणाम की समज प्राप्त करके शाश्वत बातो में घूमकर जीस स्थान से प्रारंभ किया वहीं पर पहुंचना है। ईसे मोक्ष (निर्वाण) कहा जाता है। मोक्ष हमे ढूंढते हुए नहीं आयेगा। हमें मोक्ष को ढूढना है और उसमें प्रवेश करना है। मोक्ष क्या है? मोक्ष अर्थात मन के कर्म में से मुक्ति और आंतरिक स्थिति से निःस्पृह रहना वह है। मोक्ष अलग प्रकार के बाहरी रास्ते से सिद्ध करना नही है। मोक्ष क्या है? मोक्ष को अपनेआप से अलग नहीं होना है। हमने मोक्ष के लिए प्रयास नहीं किया है। ईसलिए हम मानते है की मोक्ष हमसे दूर की स्थिति है। मोक्ष वह यहांवहां भटककर सिद्ध करने की बात नहीं है। ईसके लिए अपने ह्रदय में ही खोज करनी पडती है। मन को बुद्धि में एकाकार कर देना है और विवेक की शक्ति से मुक्ति में प्रवेश करना है। ईश्वर अविज्या है। मनुष्य को विविध प्रकार की शंकाओ से ईश्वर का चित्र-प्रतिमाएं बनाई है। जो अज्ञानता (माया) से उसे ईश्वर कहते है। यह जो शंका है वह विवेकबुद्धि के मार्ग पर तचलकर दूर होनी चाहिए। ऐसा करके ही हम जीवनमुक्ति प्राप्त

कर सकते है। जीवनमुक्ति अर्थात अपने जीवनकाल में ही बंधनो से मुक्ति। भक्ति-भावना वह और कुछ नहीं लेकीन मनुष्य एक चीज के लिए प्रेम प्रदर्शित करता है वह है। मनुष्य को मानना चाहिए की वह चीज जीतनी भी महान हो उसकी वजह से उसे लाभ हुआ है। यह मान्यता कभी भी कमजोर नही करनी चाहिए। दुनिया में भक्ति के अलावा कोई चीज या बात नहीं है। सभी प्राणीओ में भक्ति होती है। जीस तरह पानी अलग अलग दिशा में फैलता है उसी तरह भक्ति के अनेक प्रकार है। सभ प्राणीओ को भक्ति का अधिकार है। भक्ति सभी विषयो में है। भक्ति पूर्णरूप से शुद्ध होनी चाहिए। भक्ति का साक्षात्कार चेतना के आकाश में होना चाहिए। भक्ति आंतरिक होनी चाहिए और वह सूक्ष्म के साक्षात्कार में परिवर्तित होनी चाहिए तभी मनुष्य ईच्छारहित बनती है और दुःखरहित बनती है। यही शाश्वत मुक्त है। मुक्ति का प्रवेश सुषुम्ना के मार्ग पर हो!

स्पष्टीकरणः सभी लोग मुक्ति एक ही समय पर प्राप्त नही कर सकते और सभी लोगो को मुक्ति की एकसमान ईच्छा नहीं होती। फर्क सिर्फ समय का होता है। मनुष्य को जन्म अध्यात्म के मार्ग पर हरदम प्रयास करके प्रगति करने के लिए मिला है। कुछ जन्मो के बाद निश्चित तौर पर सभी मनुष्य ईश्वरत्व प्राप्त करेंगे। जीस तरह सभी लोगो को एक समय पर और उतनी हीभूख नहीं लगती उसी तरह सभी मनुष्य मुक्ति एक ही समय पर प्राप्त नही कर सकते और उसी तरह सभी मनुष्यो को मुक्ति प्राप्त करने की उतनी तीव्र ईच्छा भी नही होती। मनुष्यो आपस में ईश्वर के विविध स्वरूपो के लिए विवाद करते है और कोई स्वरूप कोई स्वरुप से महान है ऐसा मानते है। ईश्वरप्राप्ति का कोई रास्ता दूसरे रास्तो से ज्यादा आसान और परिणाम देनेवाला है। ये सब झगडे-मतमतांतर या विवाद का

कोई मतलब नहीं है। जरूरी वह है की मनुष्य आत्मशुद्धि करे और परमात्मा के परमसुख का आनंद प्राप्त करे। यही मनो-परमचेतना का स्वरुप है। जो मनुष्य हरदम अभ्यास से प्राप्त करता है और वही महत्वपूर्ण है। उसे प्राप्त करने के साधन महत्वपूर्ण नहीं है। हम चीनी को हिन्दुस्तानी भाषा में 'मीठा' कहते है और कन्नड में 'साकर' कहते है वह कम और महत्वहीन है। जरूरी वह है की वह चीनी हमारे पास होनी चाहिए। उसको कोई भी नाम दे। चीनी कीसी भी तरह चीनी ही रहती है। ईसी तरह ईश्वर का सुख सभी बातो में एक समान है। चीनी का विविध उपयोग किया जाये तो भी एक ही स्थान-मुंह के पास पहुंचती है। उसी तरह कोई भी रास्ता चूनो, अंत में तो 'एक' की प्राप्ति ही होती है, जो की सर्वत्र प्रवर्तमान है। मनुष्य को एक ही ईश्वर में मानना चाहिए, हजारो ईश्वर में नहीं। हम अनेक ईश्वर के स्वरुपो में माने तो हमारे प्रेम और संवेदना उनके विविध स्वरुपो के लिए बट जाते है। परिणामस्वरुप उनकी एक के लिए भक्ति ईतनी शुद्ध और एक ध्यान जैसी होनी चाहिए उतनी नही होगी। भक्ति एक ईश्वर के विविध स्वरुपो में बट जायेगी और परिणामस्वरुप हम परमात्मा के परमसुख प्राप्त नही कर सकेंगे। मनुष्य को सुखी होने कते लिए एक ईश्वर में मानना चाहिए, दो ईश्वर में नहीं। जीनको ईश्वर के एक ही स्वरुप में है और ईश्वर के दर्शन अपनेआप में ही करते है। ऐसे लोगो के लिए सभी ब्रह्मा है और ब्रह्म ही सब कुछ है। ईसे हम मोक्ष कह सकते है। जीन लोगो में ऐसी समद्रष्टि होती है उसके लिए कोई दुश्मन नही होता। सभी लोग उसके मित्र होते है, क्योंकी सब के लिए वह ब्रह्म है। मनुष्य को अपनेआप में दोष ईश्वर के दो स्वरुपो को त्याग कर पैदा नही करना चाहिए। मनुष्य को मुक्ति सिर्फ एक ईश्वर को मानकर प्राप्त करनी

चाहिए। ईश्वर सिर्फ एक ही है, दो नहीं। मनुष्य का प्राथमिक महत्वपूर्ण फर्झ यह है की वह जहां से आया है वहां वापिस जाने के लिए प्रयत्न करता रहे। मनुष्य के जीवन का अंत वहां वापिस जाने में है। जहां से उसका उद्गम हुआ है। ईस जगत में होने की वजह से कारण-परिणाम की समज होने से और वही शाश्वत बात के लिए खेल रहे है ईसलिए हमे जहां से हमने शुरुआत की वहां पर पहुंचना चाहिए। हम ईश्वर से दूर होने की वजह क्या है और परिणाम क्या है वह समजते नहीं है। हम ईस रहस्य को समज सके तो ईश्वर के ज्यादा नजदिक रहते है। ईश्वर ही सृष्टि की वजह है और सृष्टि उनका प्रभाव है। हमे ईस सूक्ष्म रहस्य को समजना चाहिए और ईसे जानते ही ईस जगत में रहते है फिर भी और ईसी शाश्वत बात में प्रयास करते करते ईस रहस्य को समजने का प्रयास करना चाहिए। यह मोक्ष की स्थिति है। मोक्ष हमे नहीं ढूंढेगा। हमको मोक्ष को ढूंढना चाहिए और उसमे प्रवेश करना चाहिए। मोक्ष क्या है? मनुषअय के मन को कर्म से मुक्ति और आतंरिक स्थइति से निःस्पृह रहना अर्थात मनुषअय मोक्ष तभी सिद्ध कर सकता है जब अपनी आंतरिक स्थिति से अलग रह सकता है। ईश्वर कर्ता नहीं है और वे कर्म करवाते भी नहीं है। ईश्वर परमशक्ति है। निष्कर्म के उच्चतम स्तर पर होते है। ईसलिए ही मोक्ष की स्थिति में ईश्वर की तरह मनुष्य अपनी आंतरिक स्थिति से अलग हो सकती है। मोक्ष वह बाहरी रास्तो से प्राप्त करने की स्थिति नहीं है। मोक्ष सिर्फ आंतरदर्शन से ही प्राप्त हो सकता है। मोक्ष क्या है वह अपनेआप से अलग नहीं है। हमने मोक्ष के लिए प्रयास नहीं किये है। ईसलिए हम मानते है की मोक्ष हमसे दूर है। मोक्ष ऐसी स्थिति नहीं है की यहांवहां घूमने से प्राप्त हो सके। मोक्ष तरह तरह के तीर्थधामो की यात्रा से नहीं मिलता। मोक्ष के लिए

आत्मखोज करनी पडती है। मन को बुद्धि में एकाकार कर देना चाहिए और विवेक के मार्ग पर मुक्ति में प्रवेश करना चाहिए। ईश्वर अविभाज्य एक है। मनुषअय को अपनी शंकाओ की वजह से विविध छाया अपने ह्रदय में पैदा की है और उसे ईश्वर के स्वरुप घोषित किया है औऱ अज्ञान की वजह से ही उसे ही ईशअवर मानते है। ये शंकाए विवेकबुद्धि से दूर करनी चाहिए। ऐसा करने से मनुष्य जीवनमुक्ति सिद्ध कर सकता है। जीवनमुक्ति अर्थात अपने ईस जीवनकाल कै दौरान बंधनो से मुक्ति। भक्ति वह और कुछ नहीं लेकीन एक चीज के लिए प्यार है। भक्ति शुद्ध प्रेम है। मनुषअय को मानना चाहिए की वह चीज जीतनी भी महान हो लेकीन उसकी श्रद्धा की वजह से उसे अनन्य लाभ प्राप्त हुआ है। यह मान्यता उसे जरा भी शिथिल नहीं करनी चाहिए। जीस तरह पानी विविध दिशा में फैलता है लेकीन ईच्छारहित भक्ति जो है वह उच्चुतम प्रकार की होती है। अपेक्षारहित सभी प्राणीओ को भक्ति का अधिकार है। भक्ति विश्वव्यापक है। भक्ति की गंगा जातपात या मान्यताओ से पर होती है और सब उसमें स्नान कर सकते है। वह शूद्र या ब्राह्मिन हो फिर भी। भक्ति सब में होती है। भक्ति पूर्णरुप से शुद्ध होनी चाहिए। भक्ति की अनुभूति चिदाकाश में होनी चाहिए। भक्ति आंतरिक होनी चाहिए और भक्ति में सूक्ष्म का साक्षात्कार करना चाहिए। मनुष्य ईस स्थिति में ईच्छारहित बनता है और दुःखरहित बनता है। यह स्थिति शाश्वत मुक्ति की है। हम सब उसे सिद्ध करने का प्रयास करें। हमे उसके लिए कुंडलिनी जागृत करके शरीर की सुषुम्ना नाडी के मार्ग पर सहस्त्रार की ओर उसे प्रेरीत करनी चाहिए।

282. कुंडलिनी की गुढशक्ति को बुद्धि के मार्ग से समजने का प्रयास करना चाहिए। विवेक और श्रद्धा से प्राण को सुषुम्ना नाडी में उबलते दूध

की तरह गर्म करना चाहिए और मस्तिष्क में सहस्त्रार की ओर प्रेरीत करनी चाहिए। कुंडलिनी जब हमारे शरीर के विविध चक्रो को भेदती है तब हमारे शरीर के गुणो मे परिवर्तन आता है। एक गुण में परिवर्तन अर्थात एक जन्म में परिवर्तन। जब प्राण को विविध चक्रो के द्वारा ऊर्ध्व गति की जाती है तब मन की शांति और क्षमा के गुण जरूरी है। पांच चक्र और पांच घर (पंचभूतो) पार करके छठ्ठे चक्र तक पहुंचना चाहिए। छ गुणो पर

विजय प्राप्त करने के बाद सत, चित्त, आनंद में प्रवेश करना चाहिए। आज्ञा चक्र को प्रकाशित करने के बाद आकाश (अंतर) और अग्नि मंडल (अंतर-अग्नि) सिद्ध करनी चाहिए। शक्ति और शिव दोनो एक होने चाहिए। वर्तमान, भूत और भविष्य ये तीनो का स्थान बिंदु है। बिंदु में ज्ञानाग्नि है। ईस बात में चिंतन करना चाहिए और प्राण लिंग में प्रवेश करना चाहिए।

प्राण को शिव में एक हो जाने दो! योग और मंत्र पर विजय प्राप्त करो। अंतर आकाश में से बुद्धि-चेतना के आकाश में जाने दो और आत्मा के प्रकाश के साथ एक होने दो। कर्म के गुणो को त्याग करके आकाश के मार्ग पर जीव को परमात्मा के साथ एक होने दो। जीव को सुषुम्ना के उपर पहुंचने दो। जो उसका सही घर है। मेरे और आपकी संवेदनाएं अद्रश्य होने दो। जीव के सब गुण एक होने दो और मनुष्य को साध्य होने दो और निर्भय होने दो। आत्मा का मार्ग जाननेवाले, हे मन! अध्यात्म का खुराक अन्य में वितरित करे। हे मन! जन्म और मृत्यु से मुक्त हो जाओ। हे मन! शाश्वत शांति का आनंद लो! जब बुद्धि में प्रकाश हो तब मनुष्य को अपनी क्षति और गुणो का ख्याल आता है। खुद के दर्पण में दिखनेवाले प्रतिबिंब की तरह मन की ईच्छाएं बुद्धि को दिखेगी। स्थुल और सूक्ष्म आकाश के स्वच्छ पानी में रखनेवाले प्रतिबिंब की तरह अलग दिखेंगे। यह

अनुभव जीन्होंने आत्मा का साक्षात्कार किया हो उन्हें होगा। मनुष्य की आंतरिक स्थिति पानी में डूबी हूई चीज जैसी होती है। सबसे पहले कुंडलिनी को छः चक्र पसार करने पडते है। ये छः चक्र अर्थात मूलाधार, मूलपद्म स्वाधिनष्ठान, मणिपुरा, अनाहत – विशुद्धा-अग्न और सहस्त्र पत्तीओवाले दिमाग में रहनेवाले सहस्त्रार। जब कुंडलिनी हमारे शरीर में विविध चक्र पार करते है तब मानसिक गुणो में परिवर्तन आता है। हमारा मन शुद्ध होता है और हम सत्व गुण सिद्ध कर सकते है। सामान्य तौर पर मनुष्य को सारा आयुष्य अच्छे, गुणात्मक परिवर्तन के लिए चाहिए। ईसलिए हमारे शरीर में कुंडलीनी के जागरण से गुणो में होते परिवर्तन एक जन्म के समान कह सकते है। प्राण की ऊर्ध्वगति की वजह से क्षमा और मन की शांति जैसे गुण आवश्यक बनेंगे। पांच चक्र अर्थात मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुरा, अनाहत, विशुद्धा कुंडलिनी से पार होने चाहिए और 'अग्न' तक पहुचना चाहिए। जब कुंडलिनी अग्न में स्थिर हो तब मनुष्य को सत चित्त आनंद क्या है उसका खयाल आता है। मनुष्य में रहनेवाले छः गुणो – ईच्छा, क्रोध, वासना, ईर्ष्या, दंभ और लोभ को जीतना चाहिए और सत चित्त आनंद में प्रवेश करना चाहिए। अग्न चक्र के प्रकाश के बाद का कदम शाश्वत आकाश और अग्नि मंडल में पहंचना है। जब कुंडलिनी अग्न चक्र में पहुंचता है तब चिदाकाश हमारी सूक्ष्म्ड्र द्रष्टि को दिखाई देता है। सूक्ष्म द्रष्टि अग्नि मंडल पर स्थिर हो जाती है। ईडा और पिंगला अग्न में मिलती है और अग्न चक्र में प्रकाश फैलाती है। ईडा और पिंगला शरीर में धन और ऋण ध्रुवो – बीजली की तरह काम करता है। जब हकारात्मक और नकारात्मक द्धंद्धो के संपर्क में आता है तब प्रकाश पैदा होता है। ऐसा ही मनुष्यशरीर का होता है। जब कुंडलिनी अग्न चक्र को पार करता है तब

मन समाधि की स्थिति में प्रवेश करता है, जहां जीव और शिव एक हो जाते है। आत्माबिंदु का शाब्दिक अर्थ आत्मकेन्द्र है। आत्माबिंदु ऐसा स्थान है की जहां भूत, वर्तमान और भावि का ज्ञान स्मृति में आता है। बिंदु में ही ज्ञान का अग्नि है। आत्माबिंदु का ध्यान करना चाहिए और कुंडलिनी सहस्त्रार के मार्ग से दिमाग में प्रवेश करनी चाहिए। सभी स्वरुपो में एक का दर्शन होता है। ईसलिए ही ज्ञान में जल में डूबे रहो। मन की ईच्छाओ की आत्मा की गंगा में धो डालो। ईस तरह आनंद प्राप्त करो-उसका साक्षात्कार करो। मुक्ति में प्रवेश करो। हे मन! बैठते, सोते, लैटते, हिलते-डूलते मुक्ति के मार्ग पर चालो और मुक्ति में प्रवेश करो। मुक्त सिद्ध करने के लिए कोई निश्चित समय बताया नहीं गया है। आप जब अन्य के साथ चलो तब आपका मन चेतना के आकाश में विहार करता रहे। श्रद्धा से भरा हुआ मन मुक्ति का अमृतपान करे। भक्ति और मुक्त एक है ऐसा समजकर ओमकार में एकाकार हो जाओ। शरीर की दस ईन्द्रिया बुद्धि की दासी बनी रहे, जीस तरह पंख बिना का पक्षी। प्राण जो दस दिशा में विहार करता एक दिशा में ही गति करे। यह सब आंतरिक तौर पर करना है। प्राण को चिदाकाश में प्रवेश करने दो। आंतरिक शांति प्राप्त करो। समद्रष्टि में मुक्ति प्राप्त करो। मुक्ति सिद्ध करने के बाद सारा ब्रह्मांड बंधनो में से मुक्त हो गया है वैसे ही मनुष्य का शरीर एन्जिन है। ज्ञान की जीसका चालक बल ऐसी भांप है। विवेक उसकी गति है। श्रद्धा उसके पट्टे है। यह सब जानकर रेलगाडी को चलने दो। बुद्धि चालक है। बोईलर उसकी पाचन पद्धति है। मज्जातंतु उनके स्क्रू है। यह सब समजते समजते आत्मा में बुद्धि सूक्ष्म मार्ग से प्रवेश करे। शांति प्राप्त करे। जीस तरह

रेलगाडी पटरी पर चलती है उसी तरह विवेक को भी बुद्धि के सूक्ष्म मार्ग पर चलना है।

स्पष्टीकरणः कुंडलिनी की सूक्ष्म शक्तिओ को बुद्धि की मदद से जागृत करनी चाहिए और दिमाग में रहनेवाले सहस्त्रार की ओर प्रेरीत होनी चाहिए। विवेक और श्रद्धा से प्राण को सुषुम्ना नाडी में उबलते दूध की तरह गर्म करनी चाहिए और उर्ध्व दिशा मे प्रेरीत होनी चाहिए। जब नया अभ्यासु विविध आध्यात्मिक कसरत से अभ्यास करते है तब ज्ञान का अग्नि उसमें जागृत होगा और परिणामस्वरुप सारा अग्नि उसमें जागृत होगा और परिणामस्वरुप सारा शरीर गर्म हो जाता है। ऐसी स्थिति में कुंडलिनी सुषुप्तावस्था में से जागृत होती है और सहस्त्रार की ओर गति करती है। सहस्त्रार में प्रवेश करे तब प्राण शिव के साथ एक साथ हो जाना चाहिए। हमे यंत्र और मंत्र दोनो विजय प्राप्त करके दोनो से उपर उठना चाहिए। यंत्र अर्थात स्थुल विश्व और मंत्र दोनो पर विजय प्राप्त करके दोनो से उपर उठना चाहिए। यंत्र अर्थात स्थुल विश्व और मंत्र सूक्ष्म जगत। हमे स्थुल और सूक्ष्म दोनो से उपर उठना चाहिए। बुद्धि को आंतर आकाश में से चेतना के आकाश के केन्द्र में ले जाने के बाद आत्मा के उजास मे मिल जाने दो। बुद्धि को आत्मा की भव्यता में उसका परिचय भूल जाने दो। आत्मा और बुद्धि को को एक होने दो। कर्म का नाश करके हमे आंतरिक शुद्ध आकाश के मार्ग पर परमात्मा के साथ एक हो जाने दो। जीव को सुषुम्ना के उपर पहुंचने दो और उसे दिमाग में रहनेवाले सहस्त्रार बिंदु जो की उसका सही घर है तब पहुंचने दो। मेरे और आपकी संवेदनाओ को अद्रश्य होने दो। जीव के सब गुण के साथ एक हो जाने दो और मनुष्य को सिद्ध होने दो। मनुष्य को निर्भय होने दो। यह सब उच्चतम सिद्धिओ के

परिणाम है। हे मन! आत्मा के मार्ग को पहचानकर अध्यात्म का खुराक सभी लोगो को वितरीत करो। ईस शरीर का उद्देश क्या है? अगर वो अन्य को काम न आये तो? हे मन! आत्मा का साक्षात्कार करके और जन्म-मृत्यु का जय करो! हे मन! जन्ममरण के चक्र से छूट जाओ! हे मन! शाश्वत शांति का आनंद लो। जब बुद्धि प्रकाशित हो तब हर एक मनुष्य को अपनी त्रुटीयो का खयाल आता है। मनुष्य को आरसी में जीस तरह अपने प्रतिबिंब दिखता है उसी तरह स्थुल और सूक्ष्म दोनो अलग दिखेंगे। विवेकबुद्धि हमे पूर्णरुप से विकसीत होगी। जीससे हमे कारण और परिणाम अलग कर सकते है। हमे हमारी त्रुटीयां और गुणो का खयाल नहीं आता क्योंकी हमारे अंदर विवेक की शक्ति सुषुप्त होती है। विवेकबुद्धि सामान्य मनुष्य में उसके प्राकृतिक तेजवाली नहीं होती। मनुष्य की आंतरिक स्थिति को दिव्यता के जल में डूबो देनी चाहिए। सूक्ष्म चक्षु से 'एक' के दर्शन सर्वत्र करना चाहि। मन की ईच्छआए आत्मा की गंगा में धो डालो। आत्मा गंगा है। आत्मा के साक्षात्कार से हमे मन की ईच्छाए भूल जानी चाहिए। ईसी तरह हे मन! आनंद का अनुभव करो! मुक्ति का साक्षात्कार करे! हे मन! जब बैठे, सोए, चले, मुक्ति के मार्ग पर आगे बढे और उसमें प्रवेश करें! हे मन! शाश्वत तौर पर आत्मा का विचार करे! मुक्ति प्राप्त करने के लिए कोई निश्चित समय नहीं होता! मुक्त के लिए हर एक पल पवित्र और महत्वपूर्ण है। मुक्तिप्राप्ति के लिए समय बिगाडना नहीं चाहिए। जब अन्य के साथ हम आगे बढ रहे है तब हमे हरदम आत्मा का विचार करते रहना चाहिए। श्रद्धासभर मन को मुक्ति का अमृत पीने दो! भक्ति और मुक्ति दोनो को एक समजकर मन को ओमकार में एकाकार होने दो। पराभक्ति और मुक्ति में कोई फर्क नहीं होता। पराभक्ति अर्थात ईश्वर के साक्षात्कार

के बाद निःस्वार्थ भावना। पराभक्ति के बिना मुक्ति संभव नहीं है। ईसलिए एक वह दूसरा है। दस ईन्द्रियो-पांच ईन्द्रियो शरीर की और पांच ज्ञान की होती है उसे बुद्धि की गुलाम बनने दो। बुद्धि को उसका मालिकभाव प्राप्त करने दो। दस ईन्द्रियो को बिना पंख के पंछी की तरह बनने दो। ऐसे पंछी उड नही सकते। उसी तरह ईन्द्रियां अपने कार्यो आत्मा के हुक्म के बिना नही कर सकती। जब सिद्ध हो जाये तब हम शाश्वत के साथ एकाकार हो जाते है। प्राण जो की दसो दिशाओं मे फैलता है उसे एक दिशा में जाने दो। यह सब आंतरिक तौर पर होना चाहिए। प्राण को ईश्वर सन्मुख होने दो। ऐसे प्रेरीत करके प्राण को चिदाकाश में प्रवेश करने दो। समद्रष्टि में आंतरिक शांति सिद्ध होने दो। (सभी में एक देखना) ईस ब्रहमांड में होनेवाला सबकुछ ईश्वर की करनी है वैसे आपको समज में आयेगा। मुक्ति सिद्ध करने के बाद सारा ब्रहमांड बंधनो से मुक्त हो गया है ऐसा लगेगा। हमें ऐसा सोचने की जरूरत नही है की सारा ब्रहमांड बंधनो से मुक्त हो गया है और सारा ब्रहमांड उसमें है। हम अगर ऐसा मानने लगेंगे तो हमारे अंदर गलत खयाल की हम दुसरो से अच्छे है वह पैदा होगा और निरर्थक घमंड पैदा होगा। ईसलिए हम ईस भय से मुकत होने के लिए सारे ब्रहमांड को अपनेआप जैसा समजकर, उसका स्वीकार करके बंधनो से मुक्त करना चाहिए। मानवशरीर एक एन्जिन जैसा है। ज्ञान भांप है। विवेक गति है। श्रद्धा पटरी है। बुद्धि चालक है। पाचन प्रणाली बोईलर है। नाडीयां स्क्रू है। यह सब जानकर ट्रेन को चलने दो। ईस रहस्य को समजकर जीव को सूक्ष्म बुद्धि के मार्ग पर शइव को साक्षात्कार करने दो। आप शांति प्राप्त करो! जीस तरह ट्रेन पटरी पर चलती है वैसे सूक्ष्म विवेक क सूक्ष्म बुद्धि के मार्ग पर यात्रा करने दो। शरीर की एन्जिन के साथ तुलना की जाती है। एन्जिन

ट्रेन का स्थुल भाग है उसी तरह शरीर आत्मा के लिए स्थुल भाग है। ज्ञान भांप है। भांप ट्रेन की सूक्ष्म शक्ति है। जो प्राण को दिमाग में रहनेवाले सहस्त्रार की ओर प्रेरीत करती है। विवेक गति है। श्रद्धा रेल की पटरी है। पटरी के बिना ट्रेन चल नही सकती। श्रद्धा के बिना मुक्ति सिद्ध न हो सके। ड्राईवर (चालक) और बुद्धइ है। जीस तरह ट्रेन का ड्राईवर गति को नियंत्रित करके दिशा देता है उसी तरह मानवशरीर में बुद्धि प्राण को सहस्त्रार जो दिमाग में है उसकी ओर प्रेरीत करती है। ईसलिए बुद्धइ ड्राईवर है। जीस तरह बोईलर बडे तौर पर पानी भांप पैदा करने के लिए ग्रहण करता है उसी तरह मनुष्यशरीर में पाचन प्रणाली आहार ग्रहण करती है। जीससे शरीर सक्षम रह सके। ईसलिए पाचन प्रणाली बोईलर है। एन्जिन में विविध स्क्रू होते है उसी तरह मानवशरीर में विविध असंख्य नाडीया होती है। ईसलिए नाडीयां स्क्रू है। ये सब समजकर आत्मा को सूक्ष्म बुद्धि के मार्ग पर शाश्वत शआंति सिद्ध करने दो। ट्रेन जीस तरह पटरी पर चलती है उसी तरह विवेक को सूक्ष्म बुद्धि के मार्ग पर आगे बढने दो। विवेक को बुद्धि का मार्गदर्शन मिलते रहना चाहिए।

283. हम रेलगाडी की पटरी और डिब्बे को देखे तो दोनो एकदूसरे के साथ जुडे हुए दिखेंगे लेकीन वास्तव में रेलगाडी की पटरी और चक्र दोनो अलग है। रेलगाडी की पटरी स्थुल मार्ग है लेकीन ट्रेन की गति भांप की शक्ति में से आती है। ऐसा ही संबंध शरीर और आत्मा में है। उसे सूक्ष्म बुद्धइ से चलानी है और शाश्वत शांति प्राप्त करनी है। जीस तरह ट्रेन के डिब्बे झंझीर से बंधए हुए होते है वैसे ही जीव और परमात्मा को बंधने दो। शारीरिक गुणो को समद्रष्टि से विच्छेदित करना चाहिए। जीव को मुक्त प्राप्त कर लेनी चाहिए। जो उसका अंतिम शाश्वत आवास है।

स्पष्टीकरणः शरीर और आत्मा प्राथमिक द्रष्टि से तीन तरह से जुडे है। गहराई से चिंतन करने से वे अलग है ऐसा महसूस होगा। आत्मा को शरीर के साथ कोई संबंध नहीं है। हमारा अज्ञान जीसे माया कहा जाता है वह अयोग्य अर्थघटन करता है। जीस तरह बाहरी तौर पर रेलवे की पटरी और डिब्बे द्रढता से जूडे होते है लेकीन वास्तव में वे अलग है उसी तरह शरीर और आथ्मा अलग है। रेलगाडी की पटरी एक स्थुल रास्ता है उसी तरह मानवशरीर भी। रेलवे पटरी पर चलती है लेकीन उसका चालकबल भांप है उसी तरह मनुष्यशरीर में कुंडलिनी गति प्राण की सूक्ष्म शक्ति से होती है। हमे हमारा शरीर और आत्मा द्रढता से जूडे है वह विचार मन से निकालकर शाश्वत शांति प्राप्त करनी चाहिए। जीव और शिव के साथ ट्रेन के डिब्बे एकदूसरे से झंझिर से बंधे हुए होते है उसी तरह जोडकर रखने चाहिए। शरीर के गुणो को समद्रष्टि से विच्छेदित कर देने चाहिए। ईस तरह मुक्ति प्राप्त करनी चाहिए। जो जीव का अंतिम (शाश्वत) घर है।

284. ध्यान, मन और श्रद्धा को एकाकार कर दो। प्रकाश का सूक्ष्म केन्द्र भ्रमर के बीच प्रकाशित करके एकात्मकता प्राप्त करो। ओमकार में, शुद्ध चित्त में प्राप्त करो। उसके लिए सूक्ष्म बुद्धि के मार्ग को अनुसरो। धारणा और समाधि में स्थिर करके मन को स्थिर करो। मन को एककेन्द्री करो। आकाश में चित्त को स्थापित करने के लिए समाधि के सिवा दूसरा ओर कोई साधन नहीं है। हे जीव, तुम तुम्हारे आकाश में प्रवेश करो। जीव जीसने आकाश में प्रवेश किया है उसके लिए ईस जगत में अलग अस्तित्व नहीं है। हे मन! शरीर के भाव से मुक्त हो। चित्त को मक्कम (स्थिर) करना साधना के बिना कठिन है। जो लोग समाधि में मग्न हो उनके लिए शरीर का अस्तित्व परदेशी है। ऐसे लोगो के लिए स्थुल और सूक्ष्म आम के

बीज एवं गुटली की तरह अलग हो जाते है। जो लोग सदैव सोचते है की मैं शरीर नहीं हूं। उनके लिए अलग समाधि की जरूर नहीं है। वे शाश्वत समाधि का आनंद लेते है। पूर्ण समाधि-शिवांत समाधि-मनोलया समाधि। ऐसे लोग जो हरदम ज्ञान की साकर में पीघल गये है उनके लिए साकर अलग चीज नहीं रहती। ऐसे लोग बाहरी कार्य और बाहरी विशअव से अलग है और उसकी ओर निश्चिंत होते है।

स्पष्टीकरणः निरंतर अभ्यास से ध्यान, मन, श्रद्धा को एकाकार कर दो। सतत अभ्यास से द्वैत भाव अद्रश्य हो जाता है। हरदम ध्यान से दोनो भ्रमरो के बीच प्रकाश का सूक्ष्म बिंदु प्रकट होने दो। जीव को शिव के साथ कुंडलिनी को सहस्त्रार की ओर मस्तिष्क मे एक होने दो। सूक्ष्म बुद्धि और विवेक का रास्ता प्राप्त कर ओमकार में चित्त को स्थिर करो। धारणा में स्थिर और समाधि के परमसुख का आनंद प्राप्त करते रहे। मन को एककेन्द्री करके आत्मा का भव्यता का सतत विचार करते रहे। चित्त को चेतना के आकाश में स्थिर करने के लिए समाधि एकमात्र साधन है। हे जीव! चेतना आकाश में प्रवेश करे! बंधनो से मुक्त हो जाओ। उसके लिए ईस जगत का अस्तित्व नहीं है। वह सारे विश्व को खुद में देखता है और सारे विश्व में वह खुद को देखता है। उसके लिए खुद और जगत एकसमान है। उसके लिए जगत का अस्तित्व उससे अलग नहीं है। हे मन! शरीरभाव से मुक्त हो। चित्त को साधना के सिवा स्थिर करना मुश्किल है। अभ्यास चित्त को पहाड जैसा अडग करने के लिए और खास तौर पर सांसारिक बातो के बीच अचल रहने के लिए जरूरी है। जो लोग सदैव समाधि में रहते है वे शरीर का अस्तित्व पूर्णरुप से भूल जाते है। ऐसे लोगो के लिए स्थुल और सूक्ष्म का भेद सुखे आम की गुटली और बीज मध्य में पतले

अवकाश से भेद बनता है उसी तरह है। जो लोग सदैव समाधि में रहते हो उनको स्थुल और सूक्ष्म, शरीर और आत्मा दोनो अलग दिखते है। जीस तरह व्यक्ति अपने परढाई से अज्ञात होता है उसी तरह वे अपने शरीर से अज्ञात होते है। जो लोग अपने शरीर को नहीं समजते उनके लिए अलग से समाधि नहीं होती। समाधि अर्थात स्थुल को पूर्मरुप से भूल जाना। ऐसे लोग शाश्वत समाधि में मस्त रहते है। पूर्णरुप से समाधि-शिवांत समाधि, मनोलया (मन का नाश) समाधि. जो लोग हरदम ज्ञान में एकाकार हुए है उनके लिए ज्ञान अलग बात नहीं है। ऐसे लोगो जो की सक्कर में पीघल गये हौ उनके लिए सक्कर का अलग अस्तित्व नहीं रहता। ऐसे लोग बाहरी जगत की ओर निश्चिंत बन जाते है। वे जगत के लिए मृत है और शआशअवत सत्य के लिए जीवित होते है।

285. ओमकार की शक्ति पानी की खान के जैसी है। वह सभी दिशा में फैलती है। ईस तर्क के स्वरुप से हमारे अंदर और बाहर दोनो ओर फैलते है। वह चेतनाहीन, सर्जक, धारक, संहारक सर्व के लिए बनता है। ओमकार में संमिलित हो जाता है। ओमकार कारण के साथ एक हो जाता है। ओमकार जगत के साथ एक हो जाता है। आकाश ओमकार के साथ एक हो जाता है। अविनाशी कारण के साथ एक हो जाता है। अविनाशी और ज्ञान कारण के साथ एक हो जाता है। कारण आत्मा के साथ एक हो जाता है। आत्मा के कारण के साथ एक हो जाते है। स्वरुपभेद आत्मा के साथ बुद्धि के मार्ग पर एक हो जाते है। कारण और परिणाम आत्मा के साथ एक हो जाते है। अज्ञान और ज्ञान को आत्मा के साथ बुद्धि के मार्ग पर एक होने दो। शांति जीसे कहा जाता है वह आकाश की तरह शुद्ध होती है। शांति को शुद्धता या अशुद्धता की असर नही होती। शांति मूलभूत तौर पर

अर्थात शाश्वत तौर पर शुद्ध है। शांति आकाररहित, परिवर्तनरहित है। शांति में आकार और परिवर्तन बुद्धि के साथ एकाकार होने से बदल जाता है लेकीन वे सभी दिशा में होती है और समरस होकर फैली होती है। उसका उद्देश कुछ भी नहीं होता और उसे कोई उद्देश के साथ जूड़नी चाहिए। यह बिलकुल अलग रहनी चाहिए। शांति की स्थिति उच्चतम है। बुद्धि के मार्ग पर वह यह जगत और बाद के जगत के मार्ग से अलग रहती है। उसे दुःख और आनंद का प्रभाव नहीं होता। जब बुद्धि को अनुभव होता है की आत्मा एक है और वही सर्व है तब यह स्थिति को शांति कहा जाता है। यह शांति सच्ची शांति है। यही शांति हमे यहा और बाद के जगत में शांति देंगे। यह वेद का आखरी शब्द है अर्थात वेद का आकरी शब्द शांति, शांति, शांति। यही संत के लक्षण है। यही मनुष्य की जन्मसिद्धि है। यह मुक्ति मनुष्य के जन्म की सिद्धि है। यह सत्य है। यही परम स्थिति है। यही सर्व है। यह ईच्छारहित भक्ति है। ईच्छारहित भक्ति अर्थात ईच्छारहित दशा। ईच्छारहित रहना अर्थात चिंतारहित रहना। चिंतारहित रहना वही आत्मा का सही ज्ञान है। हे मन! यह वस्तु और उस चीज की ईच्छा का त्याग करके आत्मा के लिए सदैव सेवक रहो। आत्मा के साथ आत्मिक तौर पर रमण करो। सत अर्थात शुद्धता जीव के साथ स्थापित हो गई है। हे मन! उसके साथ शाश्वत तौर पर रमण करो और बुद्धि-विवेक का उपयोग करो। हे मन! उसके साथ शाश्वत तौर पर रमण करो और बुद्धि-विवेक का उपयोग करो। हे मन! दिन-रात भूलकर, बुद्धि प्रकाशित हो। सारे ब्रह्मांड में आत्मा व्याप्त है ऐसा अनुभव करो। चेतना, स्वप्न, सुषुप्ति तीनो को आत्मा में एकरुप होने दो। आत्मा के साथ एक होकर महाशांति प्राप्त करो और उसका शाश्वत तौर पर गुणगान करो। मानस को बुद्धइ से सत्य समजने दो। सत्य

शिक्षण दे सके ऐसा धर्म नहीं है। अपनेआप में विचार करो। सत्य को ओमकार की तरह विकसीत होने दो। चित्त (मानस) को पूर्णरुप से शांत होने दो। सत्य की अनुभूति चिदाकाश में होने दो। चेतना के आकाश मे एकाकार होकर सारे ब्रह्मांड को समद्रष्टि से देखो। 'मैं और आप' की संवेदनाओ को अद्रश्य होने दो। शाश्वत सत्य को समद्रष्टि से पहचानो। ऐसा हरदम समजो की सत्य से बडा अस्तित्व कोई नहीं है। ईसे ही सत-चित-आनंद कहा जाता है। सृष्टि के प्रारंभ में और अंत में सत्य है। दो की अनुभूति वह शंका है। एक के सत्य को ह्रदय में सतत पुनःपुनः ध्यान करके स्थापित करो। सत्य परम सिध्दि है। सत्य ही सक्कर है। ईस सक्कर फल का ऐसा रस है जो की निर्विकल्प (ईच्छारहित) दशा में पैड पर ऊगते है। शुभ ईच्छाओ का फल अर्थात ज्ञानरस। ज्ञान का रस वही योग का रस है। योगरस-शरीर के सभी गुणो को परिवर्तित करता है. और उसे ऊर्ध्वगामी करता है। हे मन! ऊर्ध्वमार्ग से शरीर के सभी गुण अंदर-बाहर व्याप्त हो! शिवगंगा में स्नान करके सभी शंकाओ का निरसन करो। शिवशक्ति को ओमकार के साथ एक होने दो! दिव्य चक्षु से जगत के रुपो और गुणो का अनुभव करो। मन की शंकाए खाक में परिवर्तित होने दो! शरीर के छः दुश्मन (षडरिपु) को जलाकर खाक बना दो! ईस खाक को शरीर पर लगाओ। ईस तरह शिव में प्रवेश करो ! आप शिव बनो! शिव आप ही हो ! आपके और शिव के बिच का भेद पांच ईन्द्रियो के अग्नि में जलकर भस्म हो। सभी शंकाओ की हार्दिक तौर पर ईस अग्नि में जलकर आहुति दो। हे जीव, रवि, रजस और तमस गुणो की आहुति देकर प्रायश्चित करो। ईच्छारहितता के मार्ग द्वारा अमृतपान करो। जब आपने सत्य को सिद्ध किया होगा तब आपको मृत्यु का भय नहीं रहेगा। सत्य सिद्ध करने के बाद

मैं और मेरे मृतप्राय हो जाते है। मृत्यु का भय सदा के लिए नष्ट हो जाता है। यह ईश्वरप्राप्ति के मार्ग में अवरोध है। जब सत्य सिद्ध हो तब मृत्यु बाहरी परिस्थिति बन जाती है। जैसे की बाहरी विश्व भूलकर निद्राधीन हो गये हो। यह स्थिति आंतरिक परिस्थिति से अलग नहीं है। ईन्द्रियां आंतरमुख हुई ईन्द्रियां मैं और मेरा सूक्ष्म अणु जैसा हो जाता है और परम में एकाकार हो जाता है। जब जीव आकस्मिक तौर पर निद्रा में से जागृत होता है और बाहरी जगत से ज्ञात होता है तभी निद्रा के सही स्वरूप का खयाल आता है। यह ज्ञान की स्थिति है। जन्म-मृत्यु का कारण ईच्छाएं है। यह ईच्छाओ की वजह से परछाई वास्तविक दिखती है। यह ईच्छाए मनुष्य के अंकुश में रहती है। जो लोग की विवेकबुद्धि जागृत है उन्हें मृत्यु का भय नहीं होता। मन का अंकुश ईच्छाओ द्वारा होने से हमे आनंदो और मुश्किलो के लिए आसान कर देता है लेकीन अगर ईच्छाओ को मनुष्य नियत्रित करते है तो आनंद और दुःखो के घटनाक्रम मे पडता नहीं। मन ईच्छाओ के अधीन होने से मनुष्य को ईच्छातृप्ति के लिए बाहरी मदद की आवश्यक्ता होती है। जब मनुष्य कुछ आदतो का गुलाम बन जाता है तब वह निम्न स्तर के जन्मो की वजह बनता है। ईसलिए मनुष्य को अपनी आदतो के प्रति निश्चिंत रहना चाहिए। ईसके लिए द्रढ निर्धार जरूरी होता है। तरंग-कल्पना पर निर्भर कार्य निरंतर नही होते। विवेकबुद्धि से हुए कार्य लंबे समय तक अर्थात देह टिके तब तक टिकता है। संकल्प हरदम नही होता। संकल्प बुद्धि से निम्न स्तर है। संकल्प तर्जनी अंगुली जैसा है। बुद्धि मध्यमा अंगुली जैसी है। वासना अर्थात निश्चित बात के लिए गहरा आकर्षण। यह वासना का जन्म की वजह है। वासनाएं जो शरीर के साथ जूडी हूई है वह पानी के बुलबुले की तरह द्रश्य और अद्रश्य होती है। शरीर

एक प्रकृति है। कुछ बातो के लिए प्रेम होने की वजह से – जीसे वासना कहा जाता है। हमे पुनःजन्म वेना पडता है। वासना का एक विशेष स्वरुप है। जो आतंरिक बातो में परिवर्तित होता है। यह शरीर स्वरुप से कुछ खास परिवारो में दिखता है। ऐसी वासनायुक्त मनुष्य कोई भी काम करता है तो शरीर से करता है। उसकी वासना अलिप्त रहती है और वासना के हिसाब से शरीर पैदा होता है। शरीर के लिए वासना तृप्ति करनी असंभव है। ईसलिए ही शरीर कीसी रोग से पीडित होता है और बाहर जानेवाला प्राण उसके मृत्यु के बाद कोई शरीर प्राप्त करता है। यह शरीर चला जाता है और नया शरीर आता है। यह जन्म उस निश्चित वासना तृप्ति के लिए होती है बाद में फिर से जन्म होता है वह वासना स्वरुप का होता है। उदाहरण के तौर पर जब मनुष्य चलता हो तब दोनो पांव पृथ्वी के उपर एकसाथ उठा सके? एक के बाद दूसरा पांव उठाकर ही मनुष्य चल सकता है। ऐसा ही पूर्वजन्म की वासना की है। यह सिद्ध करने के लिए मनुष्य की द्रढ ईच्छा जरूरी है। जब मनुष्य कुछ आदतो का गुलाम बन जाता है। यह निम्न कोटि के जन्म की वजह होता है। मनुष्य को मानव बनने के लिए अपनी आदतो को अंकुशित करनी चाहिए। कल्पनाओ पर आधारित कर्म निरंतर या स्थायी नही हो सकते। विवेकबुद्धि से हआ कार्य शरीर रहे तब तक रहता है। ईच्छाए स्थायी-निरंतर नहीं है। ईच्छाएं बुद्धि के निम्न स्तर पर आती है। ईच्छाएं तर्जनी अंगुली जैसी है। बुद्धि मध्यमा अंगुली है। तर्जनी अंगुली मध्यमा अंगुली के हिसाब से छोटी होती है उसी तरह संकल्प बुद्धि के हिसाब से छोटा स्तर है। वासना क्या है? वासना ओर कुछ नहीं लेकीन कीसी चीज के लिए प्रेम है। यह वासना जन्म का कारण है। शरीर की वासना पानी के बुलबुले जैसी है। जो आती है फिर जाती है।

अभी-बाद में पानी में बुलबुले दिखते है और अद्रश्य होते है उसी तरह आना जाना उसका रहता है। वे स्थिर नहीं है लेकीन आत्मा के साथ जूडी वासनाएं स्थायी है। शरीर प्रकृति को अधीन है लेकीन आत्मा नही है। हमारी वासनाओ के लिए हमे दूसरा जन्म लेना पडता है। वासना का विशेष स्वरुप होता है। यह स्वरुप आंतरिक तौर पर व्यक्त होता है। वह खास परिवार में शरीर के स्वरुप में व्यक्त होता है। ऐसी वासनायुक्त व्यक्ति जो कुछ कर्म करे उसमे सिर्फ शरीर ही काम करता है। ऐसी वासनाएं अलिप्त रहती है और वासना अनुसार का शरीर पैदा होता है। शरीर के लिए वासनाओ की तृप्ति करना असंभव है। जब एक वासना की परितृप्ति होती है तब उसकी जगह पर असंख्य वासनाओ के जाले पैदा होते है और ईसलिए वासनाओ के अनंतकाल तक संतुष्ट करने के लिए शरीर को टीके रहना पडता है लेकीन यह बात शरीर को प्रभावित नही करती। यह शरीर ब्रह्मांड के नियम अनुसार मर्यादित समय के लिए रहती है। जो मनुष्य की समज के बाहर है। पृथ्वी पर के अस्तित्व के मर्यादित समय में शरीर के मन की ईच्छाए परिपूर्ण करने का कार्य असंभव है।

स्पष्टीकरणः ओमकार सारे नीरभ्र आकाश में व्याप्त है। ओमकार पानी की खाई जैसा है। ओमकार झरने के पानी की तरह सभी दिशाओ में फैलता है। ओमकार हमारी आंतर और बाहरी दोनो ओर फैलता है और उसका स्वरपु तर्क (कारण) होता है। ओमकार ब्रह्मांड का सृजन, लालनपालन और नाश करता है। ओमकार पूर्णरुप से विराम में होता है। क्योंकी वह आंदोलनरहित है। ऐसा ज्ञानी जीसने परमतत्व को सिद्ध किया है अर्थात जो ईशअवर के साथ एकाकार हो गया है उसके लिए ओमकार ही सर्वस्व है। उसके लिए सृष्टि का उदगम स्थआन ओम है और ओम में सृष्टि विलीन

हो जायेगा। ऐसे ज्ञानी के लिए ओम ही सर्वस्व है और सृष्टि का अंत है ईसके लिए आंदोलनरहित ओमकार कारण के साथ एक हो जाता है। जगत ओमकारमय बन जाता है। जगत और ओमकार के साथ एकाकार हो जाता है। अविनाशी कारण के साथ एकाकार हो जाता है। अविनाशी और ज्ञान कारण के साथ एक हो जाता है। कारण आत्मा के साथ एक हो जाता है। स्वरुपभेद बुद्धि के मार्ग पर आत्मा के साथ एक हो जाता है। कारण और परिणाम आत्मा के साथ एक हो जाता है। बुद्धि के मार्ग पर ज्ञान और अज्ञान आत्मा के साथ एक हो जाता है। ज्ञानी आत्मा का दर्शन सर्वत्र करता है। सर्व में करता है। ज्ञानीओ के लिए ब्रह्मांड में आत्मा के सिवा ओर कुछ नहीं है। आत्मा सर्वत्र ब्रह्मांड में व्याप्त है। आत्मा ज्ञानीओ के लिए सब कुछ है। शांति नीरभ्र आकाश जैसी शुद्ध है। शांति को शुद्ध और अशुद्ध का प्रभाव नहीं होता। वह गुणातीत है। शांति शाश्वत है। शांति स्वरुपहीन है-परिवर्तनरहित है। उसका ईन्द्रिय से अनुभव नहीं हो सकता। शांति में स्वरुप-परिवर्तन दोनो बुद्धइ के साथ एक हो जाता है। शांति ईस दिशा में है। वह सर्व में और सर्वत्र है। शांति का कोई उद्देश नहीं है और कोई उद्देश के साथ उसे जोडना नहीं चाहिए। शांति सिर्फ शांति की प्राप्ति के लिए सिद्ध करनी चाहिए। शांति अलिप्त रहनी चाहिए। शांति परम स्थिति है। सब कुछ जो किया जाता है वह शांति प्राप्ति के लिए है।। शांति वह साधना का परिणाम है। बुद्धि के मार्ग पर शांति ईस जगत और बाद के जगत दोनो से अलग रहता है। शांति को दुःख और आनंद का प्रभाव नही होता। शांति जगत के द्बंद्बो से पर है। वास्तव में शांति तभी प्राप्त होती है जब द्बैतभाव नष्ट हो जाता है। जब बुद्धि ऐसा अनुभव करे की आत्मा एक है और सभी में एकसमान है तब उसे शांति कहा जाता है। यह शांति सही

शांति है। यही शांति हमे ईस जगत में एवं बाद के जगत में भी शांति देती है। यही वेदो का अंतिम शब्द है। (शांति शांति शांति) यही संत का सच्चा चरित्र है। यही मनुष्यजन्म की सिद्धि है। यही मुक्ति है और मनुष्यजन्म की कृतार्थता है। यही सत्य है। यही ईच्छारहित भक्ति है। ईच्छारहित भक्ति हीईच्छारहित दशा है। ईच्छआरहित दशा ही चिंतारहित दशा है। हम आजीवन चिंताओ से घिरे रहते है क्योंकी हमे बहुत सी ईच्छाएं फलीभूत करनी होती है। अगर ईच्छा न हो तो ईस जीवन में कुछ सिद्ध करने को कुछ रहता नहीं है। ईसलिए ही पूर्णरुप शांति ईच्छारहित मनुष्य में व्याप्त होती है। चिंतारहित दशा वही आत्मा का सही ज्ञान है। सत-चित-आनंद (शाश्वत आनंद) आत्मा के ज्ञान से प्राप्त होगा। हे मन! यह चीज और वो चीज के साथ रमण करो। जगत के पीछे दोडो नहीं सत (शुद्धता) को जीव के साथ जोडकर, हे मन! उसके साथ शाश्वत रमण करो। बुद्धि का उपयोग करके रमण करो। सत्य को चित्त से सिद्ध करो और दोनो एक में एकाकार हुए है। ईसलिए आनंद प्राप्त करो। हे मन! दिन-रात भूलकर बुद्धि को प्रकाशित करने दो ! हे मन! बाहरी जगत पर ध्यान दो। सारा ब्रह्मांड आत्मा से व्याप्त है ऐसा समजो। एक का दर्शन सर्वत्र करो। चेतना, सुषुप्ति और स्वप्नावस्था तीनो को एक में एकाकार होने दो। जगत समस्त को महाशांति का ज्ञान होने दो और उसकी भव्यता का ज्ञान करने दो। मन को सत्य (जगत) की समज बुद्धि के मार्ग से होने दो। सत्य शीखाने का धर्म नहीं है। सत्य हमारे स्वप्रयत्नो से सिद्ध करना है। ईसलिए अपने हिसाब से सत्य के बारे में सोचते रहो। अपनेआप में खुद को ढूंढो। सत्य हमसे बाहर नहीं है। ईस सत्य को ओमकार स्वरुप से प्रकाशित होने दो। स्मृति को बुद्धि समक्ष त्याग दो। सिर्फ सत्य को रहने दो ! मन को पूर्णरुप

से शांत होने दो। यह सत्य चिदाकाश में सिद्ध होगा। चेतना के आकाश के साथ एकाकार होने की वजह से ब्रह्मांड को समद्रष्टि से देखो। अध्यात्म की उच्चतम स्थिति यही है। ऐसे, अनुभूति ककरने से मैं और मेरे की संवेदना अद्रश्य हो जायेगा। ईस शाश्वत सत्य को समज लो की सत्य से दूसरा कोई अस्तित्व नहीं है। ईसे सत-चित-आनंद कहा जाता है। सृष्टि के प्रारंभ और अंत में सिर्फ सत्य है। अंदर और बाहरी सर्वत्र सत्य है। एक की अनुभूति ही सत्य है। बुद्धि से यह निरंतर याद रखना चाहिए। दो का भाव ही शंका की वजह है। हम ब्रह्मांड से अलग अस्तित्व है। वही शंका है। सृष्टि का सर्जनहार है और मनुष्य एक ही है। ह्रदय में निरंतर चिंतन करके एकत्व की अनुभूति करो। सत्य परम सिद्धि है। सत्य हमारे प्रयासो का परिणाम है। सत्य सक्कर जैसा है। सक्कर गन्ने का रस है और उसी तरह सत्य भी निर्विकल्प समाधि की स्थिति ऐसी है की जहां शरीर की सभी ईच्छाएं अंतिम अणु तक नष्ट हो जाता है। अध्यात्म में ईससे ज्यादा ऊंची स्थिति नहीं है। शुभ ईच्छाओ का रस ज्ञानरस है। ज्ञान का रस योगरस है। ज्ञान सिर्फ योग से प्राप्त हो सकता है। वह राजयोग, भक्तियोग या कुछ भी सकता है। योग का रस शरीर के सभी गुणो को परिवर्तित करता है। वह प्राण को ऊर्ध्वमार्ग की ओर मोडता है। मनुष्य में रहनेवाला शैतान नष्ट हो जाता है। उसमे रहनेवाली दिव्यता प्रकाशित होती है। हे मन! ऊर्ध्व रास्ते से शरीर के गुणो को व्याप्त करो। शिवगंगा में स्नान करके सभी शंकाओ का निरसन करो। शिव की तुलना यहां गंगा के साथ की गई है। शिव के साथ एकरूप होकर हमे हमारे शरीर में से सभी शंकाए दूर होनी चाहिए। जीस तरह हमारे शरीर के सभी अंगो की सफाई करने के लिए गंगा में स्नान करते है। शिव और जीव को ओमकार में

एकरूप होने दो। जीव और शिव का मिलन ओमकार में होने दो। हे मन! तृतीय चक्षु से जगत के गुणो और स्वरुपो को देखो। हे मन! (दिव्य) जगत की चीजो को ईश्वर त्याग की तरह देखो। हे मन! प्रभु को उनकी सृष्टि में देखो। मन की शंकाओ को खाक में परिवर्तित होने दो! शरीर के षडरिपुओ को जलाकर खाक कर दो। ईस खाक को शरीर पर लगा दो। पूर्णत्याग आपके चरणो में होना चाहिए। ईसी तरह शिव में प्रवेश दिव्य चक्षुओ से करो। आप शिव और शिव आप बन जाओ। शिव और हमारा भेद पांच ईन्द्रियो के पांच अग्नि के मध्य में डाल दो! सभी शंकाओ को ह्रदयपूर्वक ईस अग्नि में डाल दो! सत्व, रजस, तमस के गुणो को डालकर प्रायश्चित करो। ईच्छारहित-शंकारहित होकर मुक्ति का अमृत पीओ तब जब आप सत्य को सिद्ध करोगे तब आपको मृत्यु का भय नही रहता। सत्य एक शाश्वत अस्तित्व है। जीसुका कोई पर्याय नहीं है। ईश्वर एक ही सत्य है। दूसरा सब कुछ मिथ्या है। जब ईश्वर का साक्षात्कार होता है। जब तक सत्य को सिद्ध करोगे तब जीवन-मरण के चक्रो नष्ट हो जाते है। सत्य का साक्षात्कार होने के बाद मै और मेरे का भेद दुसरा कुछ नहीं लेकीन मृत्यु का भेद है। जब ये अनुभूति अस्तित्व में होती है तब व्यक्ति द्रव्यो से उपर नहीं होता। ईसलिए मृत्यु से पर नहीं है। ये सब संवेदनाए ईश्वर के साक्षात्कार मे अवरोध है। जब सत्य का साक्षात्कार होता है तब मृत्यु एक बाहरी स्थिति बन जाती है जैसे की आप बाहरी जगत को भूलकर सो गये है! मनुष्य का आत्मा अविनाशी है उसी तरह अनुभव होता है और मृत्यु से सिय्प शरीर में परिवर्तन आता है। आत्मा सदैव एक ही है। यह शरीर प्रति उदासीनता की स्थिति को आंतरिक जीवन कहा जाता है। ईन्द्रियो को आंतरमुख कर दिया जाता है। जब ईन्द्रियां आंतरिक दिशा में जाती है तब

मैं और मेरे का भेद अंतिम अणु के साथ नष्ट हो जाता है और वह व्यक्ति परमात्मा में एकाकार हो जाता है। जीव आकस्मिक तौर पर निंद में से जागे तब बाहरी जगत से ज्ञात होता है और नींद के सही स्वरूप से ज्ञात होता है। ज्ञान की यही स्थिति है। जब व्यक्ति परमतत्व मे एकाकार हुआ है तब वह मनुष्य कोई चीज से ज्ञात नहीं होता और अपनेआप से भी अज्ञात हो जाता है। यह कुछ नमक की प्रतिमा जैसा है। जो समुद्र की गहराई नापने के लिए समुद्र में कुदता है। जैसी मूर्ति समुद्र के पानी के संसर्ग में आता है। मूर्ति का नमक और समुद्र का पानी एक हो जाता है। मूर्ति की अलग तसवीर समुद्र के पानी में विलीन होती है उसी तरह जीव जब शिव का साक्षात्कार करते है तब जीव शिव में मय हो जाते है। जीव अपना अलग अस्तित्व भूल जाता है। जन्म और मरण की वजह ईच्छआएं है। ईच्छाओ की वजह से परछाई एक हकीकत लगती है। जब मनुष्य ईच्छारहित हो तब सब कुछ उसे असुरी लगता है। ईच्छारहित दशा अध्यात्म में सिद्ध करे की स्थिति है। ईच्छाओ मनुष्य के अंकुश में होती है। जीन लोगोने विवेकबुद्धि से ईच्छआओ को नियंत्रित की हो उन्हें जन्ममरण का भय होता नहीं। मन ईच्छाओ से बंधा होने से हमे जगत के विरोधभास के युगलो के अधीन रहते है। जब ईच्छाओ का नाश किया जाता है तब आनंद और चिंताओ हमे परेशान नही करती। उसके बाद हमे असके लिए बाहरी मदद की जरूर ईच्छआतृप्ति के लिए रहती नहीं है। मनुषअय को अपनी आदतो के प्रति उदासीन रहना चाहिए। इसलिए समजदार मानवी कहते है की ईच्छाओ का नाश करो और बंधनो से मुक्त हो। क्योंकी मनुष्य मन की सभी ईच्छाओ परिपूर्ण नहीं कर सकते। शरीर मन की ईच्छाओ परिपूर्ण कर सकता नहीं है, ईसलिए नष्ट होकर पुनःजन्म

प्राप्त करते है, जीससे नये जन्म में अधूरी वासनाओ संतुष्ट की जा सकती है। प्राण मृत्यु के बाद नया शरीर धारण करते है, जीससे विविध वासनाएं तृप्त की जा सकती है। नया जन्म उसकी वासना के अनुसार होती है। जब मनुष्य चलता है तब एकसाथ दोनो पांव पृथ्वी परसे उठआकर चल सकती नहीं लेकीन चलने के लिए एक के बाद पांव उठाकर चलना पडता है उसी तरह हमारी सभी वासनाएं एक शरीर में तृप्त नही कर सकते। हमे अलग वासनाए तृप्त करने के लिए अलग शरीर धारण करना पडता है। जीस तरह हमारे शरीर को चलाने के लिए एक के बाद पांव चलाना पडता है उसी तरह हमारी विविध वासनाएं संतुष्ट करने के लिए अलग अलग जन्म लेने पडते है। पूर्वजन्म की वासनाएं जीस तरह दाहिना पांव बायें पांव के बाद तुरंत चलते समय उसका अनुसरण करता है वैसे बाद के जन्म का अनुसरण करता है।

286. ईच्छारहित भक्ति सांसारिक जीवन के सुखो के लिए नहीं है। ईस भक्ति प्रकृति के साथ जूडी नहीं है। यह भक्ति कोई मुश्किलो से मुक्ति प्राप्त करने के लिए नहीं है। भक्ति और कष्टो के बीच कोई संबंध नहीं है। कषअट आये तो भक्ति के मार्ग से चलित नहीं होना चाहिए। उन्हें भक्ति के मार्ग पर आगे नही रहना चाहिए। छिपकली जैसे किल्ले की दिवार पर चीपक जाती है उसी तरह ईच्छारहित भक्ति ह्रदयकमल को अचल तौर पर चीपकी रहनी चाहिए। भक्तिने युक्ति के मार्ग पर शक्ति के साथ एक होना चाहिए। ऐसी भक्ति से ह्रदय शुद्ध होना चाहिए और सभी उपाधिओ से मुक्त होना चाहिए। ऐसी भक्ति ईच्छा से पूर्णरुप से मुक्त होनी चाहिए। ईच्छारहित दशा ज्यादा से ज्यादा बलवान बनने दो। ईन्द्रियो को शांत होने दो। शांति का दाता देव ओमकार है। भक्ति यह परम शांति

देनेवाले में अचल बनने दो। यही सही भक्ति है। यही शाश्वत शांति है। यही स्वप्रकाशित भक्ति है। ईसे सत कहा जाता है। ईस प्रकार की भक्ति ईस जगत और बाद के जगत दोनो से उपर है। यह भक्ति अर्थात शाश्वत आनंद से भरा मन। शाश्वत आनंद से भरा मन सभी चीजो का बीज है। शाश्वत आनंद से भर मन सभी चीजो का सूक्ष्म बीज है। ईसका विकास विवेक बुद्धि से करना चाहिए। शाश्वत आनंद से भरा मन गुणोरहित होता है। वह गुणोरहित है ओर अखिल ब्रह्मांड की वजह है। ईसे सर्जक कहा जाता है। वह सारे घटनाक्रम का साधन है। ईस जगत के लिए एक सत्य है, यही एक है। जो आंतर और बाहर दोनो विश्व में व्याप्त है। वह ज्ञान उच्चतम और निम्न कक्षा का है। उच्च कक्षा का अर्थात अध्यात्मिक और निम्न अर्थात लौकिक बातो का ज्ञान। वह पापरहित आत्मा है। वह जगदगुरु है। वह ब्रह्मप्रकाश है। वह जगत माता और पिता है। वह ओमकार में रहा बिंदु है। वह मां, ओम महान है। वह चल और देख सके ऐसा होता है। ओम एक अर्क है। संतो उसे सत्य कहते है। ओम! ओम!

स्पष्टीकरणः भक्ति वह स्वयं लक्ष्य है, लक्ष्यसिद्धि का साधन नहीं है। भक्ति सिर्फ भक्ति के लिए की जाती है। ईच्छारहित भक्ति सांसारिक भोगो के लिए नहीं है। यह ईच्छारहित भक्ति जीसे आध्यात्मिक परिभाषा में पराभक्ति कहा जाता है वह प्रकृति के साथ जूडती नहीं है। वह प्रकृति के नियमो से पर है। यह भक्ति जगत के कष्टो से मुक्ति प्राप्त करने के लिए नही है। भक्ति और जगत के कष्टो के बीच कोई संबंध नहीं हो। कष्ट आये तो व्यक्ति को भक्तिमार्ग में से गिर नहीं जाना चाहिए। लेकीन उस मार्ग पर आगे बढना चालु रखना चाहिए। जीसतरह छीपकली किल्ले की दिवार से चीपककर रहती है और छोडती नही है उसी तरह हमारे

हृदयकमल को ईच्छारहित भक्ति से द्रढता से चीपककर रहना चाहिए। भक्ति युक्ति-कौशल्य के मार्ग पर शक्ति के साथ एक हो जाना चाहिए। भक्ति वह शर्मशक्ति के साथ – वह परमशक्ति जो की ब्रह्मांड को नियंत्रित करती है उसके साथ कौशल्य से एक हो जानी है। ऐसी भक्ति से हृदय को शुद्ध करके उसे वासनाओ से उसे मुक्त करना चाहिए। ऐसी भक्ति ईच्छाओ से मुक्त होनी चाहिए। ईस ईच्छारहितता अतिद्रढ होनी चाहिए। ईन्द्रियां शांत हो जानी चाहिए। शांति के दाता-ब्रह्मांड के अधिष्ठाता-ओमकार है। यह भक्ति शांतिदाता देव ओमकार में अचल रहो। यही सही भक्ति है। यही शाश्वत शांति है। यह भक्ति स्वयं प्रकाशित है। ईसे सत-सत्य कहा जाता है। यह भक्ति ईस जगत से और बाद के जगत से उपर के स्तर पर है। यह भक्ति ओर कुछ नहीं लेकीन शाश्वत आनंद से भरा मन है। जीसे सदानंद कहा जाता है। भक्ति के ईस स्तर पर पहोंचने के बाद शाश्वत आनंद स्वयं पैदा होता है। शाश्वत आनंद से भरा मन उन सभी बातो का बीज है। ईस प्रकार का मन परमात्मा के साथ एकाकार हो जाता है। जो परमात्मा सृष्टि का सृजनकर्ता है। मन जगत की सभी बातो का सूक्ष्म बीज है। जीसे विकास विवेक से होने देना चाहिए। शाश्वत आनंद से भरा मन गुणो के बिना का होता है। वह रोगरहित होता है। वह वैश्विक वजह है। वह सृजनकर्ता है। वह सभी का साक्षी है। वह यह और बाद के जगत के लिए एक ‘सत’ है। वह ‘एक’ है जो आंतर और बाहरी जगत में व्याप्त है। वह उच्चकक्षा का और निम्न कक्षा का ज्ञान है। उच्च कक्षा का अर्थात आध्यात्मिक बातो और बंधनो से पर होता है। वह कारण और परिणाम है। वह वैश्विक साक्षी है। वह पापरहित आत्मा है, जो सर्व का साक्षी है। वह जगतगुरु है। वह ब्रह्मप्रकाश है। वह जगत-पिता और माता

है। वह ओमकार में रहा बिंदु है। वह मा-ओम है। ओम चंचल है। ओम जो द्रश्य है। ओम अर्क है। संतो है। ओम अर्क है। संतो से जीसे ‘सत’ कहा जाता है। ओम. ओम.

स्वामि श्री नित्यानंद

ॐ कार बिन्दु संयुक्तं
नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ।
कामदं मोक्षदं चैव
ॐ काराय नमो नमः ॥

http://slidepdf.com/reader/full/chidakash-gita-hindi